लेखक
डा० राजेंद्र सिंह,जलपुरुष
संपादक
डा. भरत राज सिंह, पर्यावरणविद

बमाया एवं कोटवाली नदी पुनर्जीवन

लेखक
डा० राजेंद्र सिंह, जलपुरुष
संपादक
डा. भरत राज सिंह, पर्यावरणविद

बमाया एवं कोटवाली नदी पुनर्जीवन:
भारतीय वैदिक ज्ञान, जल विज्ञान, पर्यावरण, एवं नदी पुनर्स्थापन

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

तरुण भारत संघ, अलवर, राजस्थान
व
वैदिक विज्ञानं केंद्र व सी. वी. रमन अनुसंधान एवं नवाचार केन्द्र
स्कूल ऑफ़ मैनेजमेंट साइंसेज, लखनऊ

बमाया एवं कोटवाली नदी पुनर्जीवन: भारतीय वैदिक ज्ञान व जल विज्ञान, पर्यावरण, एवं नदी पुनर्स्थापन

प्रकाशित: अगस्त 2026
संस्करण: प्रथम
ISBN: 978-93-6581-244-2

विवरण:
यह पुस्तक **बमाया और कोटवाली नदी पुनर्जीवन-** जल संरक्षण, भू-जल पुनर्भरण और नदी पुनर्जीवन पर आधारित एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें भारतीय जल संस्कृति, आधुनिक जल विज्ञान तथा सामुदायिक सहभागिता के समन्वय से नदियों को पुनर्जीवित करने की वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक विधियों का सरल वर्णन किया गया है। बमाया और कोटवाली नदी के सफल पुनर्जीवन को प्रेरणादायक केस स्टडी के रूप में प्रस्तुत करते हुए यह पुस्तक जल संरक्षण के प्रति जन-जागरूकता और सतत विकास का संदेश देती है।

लेखक:
डा.राजेन्द्र सिंह, जलपुरुष
तरुण भरत संघ, जयपुर, राजस्थान
व
संपादक:
प्रोफ.(डा.) भरत राज सिंह, पर्यावरणविद व महानिदेशक,
वैदिक विज्ञानं केंद्र व सी. वी. रमन अनुसंधान एवं नवाचार केन्द्र ,
स्कूल ऑफ़ मैनेजमेंट साइंसेज, लखनऊ – 226501

पुस्तक मूल्य: भारत ₹**499;** USD $**5.25**
Copyright: © 2026 Rajendra Singh, Bharat Raj Singh
अस्वीकरण:
पुस्तक में निहित विषयवस्तु, तथ्य, विचार अथवा विश्लेषण के लिए उसके लेखक पूर्ण रूप से उत्तरदायी हैं। इसके समस्त अधिकार भी लेखक व संपादक के पास सुरक्षित हैं। प्रकाशक की विषयवस्तु के प्रति सहमति और उत्तरदायित्व नहीं है। पुस्तक या उसके किसी भी अंश का पुनर्प्रस्तुतिकरण किसी भी माध्यम से स्वीकार्य नहीं होगा। चाहे यांत्रिक माध्यम हो या इलैक्ट्रॉनिक; जानकारी का संचयन लिखित आज्ञा लिए बिना नहीं किया जाना चाहिए। केवल एक समीक्षक को समीक्षा में आंशिक उदधृत करने की छूट रहेगी।

प्रकाशक:
NATALS **Natals Publication.**
UDYAM-DL-02-0037614
Chhatarpur, SouthWest Delhi-110074,India
E-mail:natalspublications@gmail.com

Copyright © 2026 natals.in

संदेश

सं०:- 612/सी.एम.प्र.पी.(आर)/2026

योगी आदित्यनाथ

मुख्य मंत्री
उत्तर प्रदेश

लोक भवन,
लखनऊ - 226001

दिनांक : 30-08-2026

जल जीवन का आधार ही नहीं, हमारी सभ्यता, संस्कृति और समृद्धि की निरंतरता का भी मूल तत्व है। भारतीय परंपरा में नदियों को जीवनदायिनी और पूज्य मानते हुए उनके संरक्षण को सामाजिक दायित्व के रूप में स्वीकार किया गया है। आज जब जल-सुरक्षा और पर्यावरण संतुलन वैश्विक चिंता का विषय हैं, तब हमारी प्राचीन जल-दृष्टि को आधुनिक विज्ञान और जनभागीदारी से जोड़ते हुए जलस्रोतों के पुनर्जीवन के प्रयास अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि स्कूल ऑफ मैनेजमेंट साइंसेज, लखनऊ के अंतर्गत संचालित वैदिक विज्ञान केंद्र एवं सी.वी. रमन अनुसंधान एवं नवाचार केंद्र द्वारा प्रसिद्ध जलपुरुष डॉ. राजेंद्र सिंह 'तरुण भारत संघ', अलवर के लेखन तथा प्रो. (डॉ.) भारत राज सिंह के संपादन में 'बमाया एवं कोटवाली नदी पुनर्जीवन' नामक ग्रंथ का प्रकाशन किया जा रहा है। यह ग्रंथ केवल दो नदियों के पुनर्जीवन की यात्रा का दस्तावेज नहीं है, बल्कि जल संरक्षण, भूजल पुनर्भरण, पर्यावरण संतुलन तथा समाज की सामूहिक शक्ति के समन्वय का प्रेरक उदाहरण प्रस्तुत करता है।

बमाया और कोटवाली नदियों के पुनर्जीवन का अनुभव यह संदेश देता है कि इच्छाशक्ति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और समाज की सक्रिय भागीदारी के साथ सूखती नदियों को भी पुनः प्रवाह और जीवन दिया जा सकता है। ऐसे प्रयास जल संरक्षण के प्रति जनचेतना को व्यापक बनाने के साथ आने वाली पीढ़ियों के लिए जल-सुरक्षित भविष्य की नींव भी मजबूत करते हैं।

उत्तर प्रदेश की जल-संपदा, भूजल और पर्यावरण संरक्षण के प्रति समाज में जागरूकता बढ़ाने तथा जल संरक्षण को जनभागीदारी से जोड़ने की दिशा में ऐसे ज्ञानपरक प्रयासों का विशेष महत्व है। भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक विज्ञान के समन्वय से तैयार यह ग्रंथ विद्यार्थियों, शोधार्थियों, नीति-निर्माताओं तथा जल संरक्षण के क्षेत्र में कार्य करने वाले लोगों के लिए उपयोगी एवं प्रेरणादायी सिद्ध होगा।

मुझे विश्वास है कि 'बमाया एवं कोटवाली नदी पुनर्जीवन' जल संरक्षण को जन-अभियान का स्वरूप देने में प्रेरक भूमिका निभाएगा और समाज को यह विश्वास दिलाएगा कि सामूहिक संकल्प, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा सतत प्रयासों से प्रकृति के पुनर्जीवन का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।

इस महत्वपूर्ण ग्रंथ के प्रकाशन के लिए प्रो. (डॉ.) भारत राज सिंह तथा समस्त सहयोगी संस्थाओं को मेरी हार्दिक शुभकामनाएं। मैं आशा करता हूं कि यह प्रयास जल संरक्षण, पर्यावरण संवर्धन और भावी पीढ़ियों के लिए जल-सुरक्षित भविष्य के निर्माण की दिशा में व्यापक जनचेतना का आधार बनेगा।

(योगी आदित्यनाथ)

दूरभाष : 0522-2289017 / 2289010 / 2289167 **फैक्स** - 0522-2239234 **ईमेल** - cmup@nic.in

दो-शब्द

जल - प्रकृति का अमूल्य उपहार है और समस्त सृष्टि के अस्तित्व का आधार भी। पृथ्वी पर जीवन की कल्पना जल के बिना संभव नहीं है। मानव सभ्यता का विकास सदैव नदियों के तटों पर हुआ है और इतिहास साक्षी है कि जहाँ जल उपलब्ध रहा, वहीं संस्कृति फली-फूली, कृषि समृद्ध हुई, व्यापार विकसित हुआ तथा ज्ञान-विज्ञान का विस्तार हुआ। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जल केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि हमारी सभ्यता, संस्कृति, आस्था और जीवन-दर्शन का अभिन्न अंग रहा है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में जल को जीवनदायिनी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। भारतीय परंपरा में नदियों को माता का स्वरूप प्रदान किया गया, क्योंकि उन्होंने सदैव मानव जीवन का पालन-पोषण किया है।

वर्तमान समय में तीव्र औद्योगिकीकरण, अनियोजित शहरीकरण, बढ़ती जनसंख्या, वनों की अंधाधुंध कटाई, भू-जल का अत्यधिक दोहन तथा प्राकृतिक संसाधनों के प्रति घटती संवेदनशीलता के कारण जल संकट एक गंभीर वैश्विक चुनौती बन चुका है। अनेक नदियाँ, जो कभी बारहमासी थीं, आज मौसमी बनती जा रही हैं। भू-जल स्तर निरंतर नीचे जा रहा है, जल स्रोत सूख रहे हैं और जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा का स्वरूप भी अनिश्चित होता जा रहा है। ऐसी परिस्थितियों में जल संरक्षण, भू-जल पुनर्भरण तथा नदी पुनर्जीवन केवल पर्यावरण संरक्षण का विषय नहीं रह गया है, बल्कि यह मानव अस्तित्व, खाद्य सुरक्षा, पारिस्थितिक संतुलन और भावी पीढ़ियों के सुरक्षित भविष्य का प्रश्न बन गया है।

इसी व्यापक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए **"बमाया और कोटवाली नदी पुनर्जीवन"** ग्रंथ का निर्माण किया गया है। यह पुस्तक केवल दो नदियों के पुनर्जीवन का विवरण नहीं है, बल्कि जल संरक्षण के वैज्ञानिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं व्यावहारिक पक्षों का एक समग्र अध्ययन है। इसमें भारतीय जल संस्कृति, वैदिक जल विज्ञान, पंचमहाभूतों की अवधारणा, जल चक्र, वर्षा विज्ञान, भू-जल पुनर्भरण, जलागम प्रबंधन, आधार प्रवाह (Base Flow), सामुदायिक सहभागिता, पारंपरिक जल संरचनाओं तथा सतत विकास के सिद्धांतों का विस्तृत एवं प्रमाणिक विवेचन किया गया है। साथ ही, बमाया एवं कोटवाली नदी के पुनर्जीवन को एक व्यवहारिक अध्ययन (Case Study) के रूप में प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि वैज्ञानिक सिद्धांतों और जनसहभागिता के समन्वित प्रयासों से सूखी नदियों को पुनः जीवंत बनाया जा सकता है।

इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि इसमें सिद्धांत और व्यवहार का उत्कृष्ट समन्वय देखने को मिलता है। एक ओर आधुनिक जल विज्ञान, भू-जल विज्ञान (Hydrogeology), जल संतुलन सिद्धांत (Water Balance), डार्सी का नियम (Darcy's Law) तथा नदी–भू-जल अंतःक्रिया (River–Aquifer Interaction) जैसे वैज्ञानिक सिद्धांतों का सरल एवं प्रामाणिक विवेचन किया गया है, वहीं दूसरी ओर राजस्थान सहित देश के विभिन्न भागों में किए गए सफल नदी पुनर्जीवन अभियानों के अनुभवों को भी समाहित किया गया है। इससे पाठक केवल सिद्धांतों को समझता ही नहीं, बल्कि यह भी जान पाता है कि इनका व्यवहारिक अनुप्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है।

यह पुस्तक यह संदेश देती है कि नदी पुनर्जीवन केवल सरकारी योजनाओं से संभव नहीं है। इसके लिए स्थानीय समाज, ग्राम समुदायों, स्वयंसेवी संस्थाओं, शिक्षण संस्थानों, वैज्ञानिकों, अभियंताओं, नीति-निर्माताओं तथा प्रत्येक नागरिक की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है। जब समाज जल को केवल उपभोग की वस्तु न मानकर जीवन का आधार समझता है, तब जल संरक्षण एक जन-आंदोलन का रूप ले लेता है। यही जनभागीदारी किसी भी नदी पुनर्जीवन अभियान की वास्तविक शक्ति होती है।

मैं इस अवसर पर विशेष रूप से **जल पुरुष, डॉ. राजेन्द्र सिंह** के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा एवं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। जल संरक्षण के क्षेत्र में उनका चार दशकों से अधिक का समर्पित जीवन भारत ही नहीं, विश्व के लिए प्रेरणास्रोत है। उन्होंने अपने अथक परिश्रम, दूरदर्शी नेतृत्व, वैज्ञानिक सोच और जनसहभागिता आधारित कार्यपद्धति से यह सिद्ध कर दिया है कि यदि समाज संगठित होकर प्रकृति के साथ कार्य करे, तो सूखी नदियाँ पुनः प्रवाहित हो सकती हैं, भू-जल स्तर में उल्लेखनीय वृद्धि हो सकती है और जल संकट से जूझते ग्रामीण क्षेत्रों में पुनः समृद्धि लौट सकती है। उनके अनुभव, मार्गदर्शन, विचार और कार्य इस ग्रंथ की प्रेरणा तथा इसकी अमूल्य बौद्धिक धरोहर हैं। जल संरक्षण को जन-आंदोलन बनाने में उनका योगदान भारतीय पर्यावरण इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय है।

मैं इस ग्रंथ के सभी सह-लेखकों, विद्वानों, शोधकर्ताओं, विषय-विशेषज्ञों, संपादकीय सहयोगियों तथा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग देने वाले सभी व्यक्तियों, संस्थाओं एवं समुदायों के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। उनके सामूहिक ज्ञान, अनुभव, परिश्रम और समर्पण के कारण यह ग्रंथ एक उपयोगी, प्रामाणिक तथा शोधपरक संदर्भ पुस्तक के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हो सका है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों, शोधार्थियों, शिक्षकों, अभियंताओं, भू-जल वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों, प्रशासनिक अधिकारियों, नीति-निर्माताओं तथा जल संरक्षण के क्षेत्र में कार्यरत स्वयंसेवी संस्थाओं के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी। साथ ही, यह पुस्तक जल संसाधन प्रबंधन, नदी पुनर्जीवन तथा सतत विकास के क्षेत्र में कार्य करने वाले सभी व्यक्तियों के लिए एक प्रेरक मार्गदर्शिका का कार्य करेगी। मुझे आशा है कि यह ग्रंथ समाज में जल के प्रति संवेदनशीलता, प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व तथा सामुदायिक सहभागिता की भावना को और अधिक सुदृढ़ करेगा।

यदि इस पुस्तक से प्रेरित होकर प्रत्येक नागरिक वर्षा की प्रत्येक बूंद के संरक्षण, भू-जल पुनर्भरण, स्थानीय जल स्रोतों के संरक्षण तथा अपनी नदी को पुनर्जीवित करने का संकल्प ले, तो यही इस ग्रंथ के प्रकाशन की सबसे बड़ी सफलता होगी। जल संरक्षण केवल वर्तमान पीढ़ी का दायित्व नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के प्रति हमारा नैतिक उत्तरदायित्व भी है। आइए, हम सब मिलकर जल को बचाने, नदियों को पुनर्जीवित करने और प्रकृति के साथ संतुलित विकास की दिशा में एक सामूहिक संकल्प लें। यही भारत की जल सुरक्षा, पर्यावरणीय समृद्धि और सतत विकास का सबसे सशक्त मार्ग है।

— संपादक
प्रो. भरत राज सिंह
महानिदेशक (तकनीकी)
स्कूल ऑफ मैनेजमेंट साइंसेज़,
लखनऊ

प्रस्तावना

तरुण भारत संघ का चम्बल के दस्युओं को खेती के काम में लगाना पिछले चार दशक से लक्ष्य रहा है। इस काम को यहाँ की महिलाओं ने सफलतापूर्वक पूर्ण किया है। अभी तक लगभग 6500 से अधिक दस्यु बाग़ीपन छोड़ कर खेती-किसानी करने लगे हैं। इस क्षेत्र की छोटी-छोटी 23 नदियाँ, जो सूख कर मर चुकी थी, उनके पुनर्जीवित होने से ही यह सम्भव हुआ है।

तरुण भारत संघ ने बाग़ियों की पत्नियों के साथ मिलकर, उनकी खेती व पशु-पालन हेतु पोखर, पगारे, जोहड़ी, जोहड़, बाँध, चैकडैम, एनीकट आदि जल संरक्षण के काम किये । इन कामों से इनकी जमीन खेती के योग्य हुई, तो महिलाएँ और उनके बच्चों ने खेती करना शुरू कर दिया। पैदावार बढ़ी, तो बच्चे स्कूल जाने लगे। तब बाग़ियों की पत्नियाँ अपने-अपने पतियों से सवाल-जवाब करने की स्थिति में आ गईं।

वे अपने- अपने पतियों से कहने लगीं, कि *''आपने पूरा जीवन बन्दूक के सहारे ही बीहड़-जंगल में काटा है, परिवार के लिए कुछ नहीं किया। हमने तो दो-तीन सालों में ही पानी बचा कर खेती कर अनाज पैदा कर लिया और भैंस पाल कर दूध का उत्पादन भी कर लिया। जिससे परिवार का पालन-पोशण करते हुए अपने बच्चों को भी पढ़ाने लगी हैं। इसलिए, बन्दूक छोड़ो, पानी रोको और अपनी खेती करो।''*

इस प्रकार जब इन महिलाओं ने अपनी मेहनत से यह सब करके दिखा दिया तो उनके बाग़ी पतियों के लिए भी पत्नियों की बात मानना मज़बूरी बन गया था। बाग़ियों ने भी सहमति देते हुए कहा कि हाँ, हम भी यह पानी का काम करेंगे, पर पुलिस-अदालत से कौन मुक्ति दिलायेगा। महिलाओं ने कहा कि पुलिस-अदालत से भी वही ''पानी वाला बाबा''(जल पुरुष) ही मुक्ति दिलायेगा। आप पक्का होकर तैयार हो जाओ, जैसे हम पानीदार बने हैं, वैसे ही आप भी बन्दूक छोड़ कर पुलिस-कचहरी से मुक्ति पाकर इज्जतदार बन जायेंगे।

अब यह सब बातें मुझ पर ही आ पड़ीं, तो मैंने भी उनकी मदद के लिए कमर कस ली। क्योंकि सत्य को स्वीकार लेने से मुक्ति जल्दी मिलती है, इसलिए मैंने इनसे सत्य स्वीकार करा के उन्हें पुलिस-कचहरी से मुक्ति दिलाई। अब मुक्त आकाश, मुक्त जीवन में न ही डरना और न ही डराना, जब इनके व्यवहार में आने लगा तो इनके जीवन में शान्ति कायम होने लगी। ''बाग़ी से किसानी'' की इस प्रक्रिया ने मुझमें भी बहुत विष्वास पैदा कर दिया।

यह प्रक्रिया पास के तरुण भारत संघ के काम देख कर ही ''भमाया'' और ''कोटवाली'' नदियों के काम ने भी खड़ा किया। चम्बल क्षेत्र की पुरानी नदियों- महेष्वरा, तेवर, नेहरो, सैरनी, बद्दह आदि के कामों से आये बदलाव व क्रान्ति ने बाग़ियों के मन को बदला। बस! फिर तो भमाया और कोटवाली के नदी जलागम क्षेत्र में भी यही कार्य दिखाई देने लगा। अभी तक उक्त नदी क्षेत्रों का जीवन बदल चुका है, इन सब नदियों की पुनर्जीवित सभ्यता और संस्कृति पर भी पुस्तकें प्रकाषित हो चुकी हैं।

दैनिक भास्कर, जयपुर के वरिष्ठ पत्रकार व पूर्व सम्पादक श्री राजेश रवि ने भी ''बाग़ी से किसानी'' पुस्तक लिखी है, जो बहुत पढ़ी गई है। अब आपके हाथों में नई पुस्तक ''भमाया और कोटवाली नदी'' पुस्तक है। इसे भी आप पढ़ेंगे तो आपको यह बहुत अच्छे से समझ अयेगा कि पुनर्जीवित सरिताएँ, सभ्यताओं को कैसे पुनर्जीवित करती हैं। इससे आपका मन भी जल संरक्षण से विष्व षान्ति के काम करने का बनेगा और आप भी जल संरक्षण के काम में जुटेंगे। नदी केवल जल-धारा नहीं है, यह तो प्रकृति और संस्कृति से जोड़ने वाली जीवन-धारा, जीवन का प्रवाह है।

यह पुस्तक पंचमहाभूतों, प्रकृति और संस्कृति का जीवन्त योग दुनिया को बनाने वाली, जल का प्रवाह और जीवन ''पृथ्वी'' पर नदी ही है। जल विद्या और विज्ञान का इतिहास के साथ-साथ भारतीय जल विद्या और विज्ञान में अन्न उत्पादन हेतु वर्षा का पूर्वानुमान में वराह मिहिर के अनुसार वर्षा का पूर्वानुमान कभी गलत नहीं होगा, यह सब प्रमाण सहित प्रस्तुत करती है।

जल से नदी की व्यवहार विद्या के साथ-साथ भारत की विविध रूपा नदियों को जानना सरल नहीं, परन्तु असम्भव नहीं है। नदियों के वर्गीकरण द्वारा जानना सरल है। हमारे परिवेश में नदी जल प्रवाह का महत्त्व है। नदियों से पूर्व पृथ्वी बनी है। पृथ्वी पर जन्म पाने हेतु से ऋग्वेद में अग्नि से प्रार्थना की जाती है। महासागरों में ज्वालामुखी विस्फोट से पृथ्वी निर्माण के साथ खनिज प्राप्त करने की प्रार्थना भी है।

पृथ्वी निर्माण में ऋग्वेद के अनुसार अग्नि की भूमिका। पृथ्वी पर सरिताएँ और सभ्यताओं को प्रेम व अहिंसा का पाठ पढ़ाती हैं। ये भू-जल पृथ्वी का पेट पानी से भरने पर ही पुनर्जीवन पाती हैं। चम्बल नदी पृथ्वी का एक शृंगार है। यह अरावली पर्वत से षुरू होकर विन्ध्याचल पर्वत के साथ रिष्ता बना कर यमुना में मिलती है।

इसको स्वस्थ रखने हेतु इसकी छोटी-छोटी सभी नदियों को पुनर्जीवित करना होगा। क्योंकि इन सभी छोटी-छोटी सरिताओं ने सम्पूर्ण चम्बल की सभ्यता और संस्कृति

को पुनर्जीवित कर दिया है। तरुण भारत संघ ने चम्बल नदी के बाग़ीपन संकट को किसानी में बदल कर समाधान किया है।

तरुण भारत संघ के कार्यों का लेखा-जोखा एवं पर्यावरणीय प्रभाव की जल संरक्षण संरचनाओं की अभियान्त्रिकी एवं प्रोयोधिगिकी के पूर्व मुख्य अभियन्ता, हरियाणा श्री राजीव वंसल द्वारा स्वतन्त्र मूल्यांकन रपट भी प्रस्तुत है। भमाया-कोटवाली जैसी 23 नदी बहिनों और चम्बल के लोगों का घोषणा-पत्र पुनर्जीवित भमाया और कोटवाली नदी की अनुभूति है। दुनिया का जल संकट और संघर्ष इसका समाधान निजीकरण नहीं, सामुदायीकरण है। तरुण भारत संघ के 50 वर्षों का सफरनामा।

इस पुस्तक का संपादन स्कूल ऑफ मैनेजमेंट साइंसेज, लखनऊ के महानिदेशक प्रो. भरतराज सिंह द्वारा अत्यंत परिश्रम, गहन अध्ययन तथा विषय के प्रति पूर्ण समर्पण के साथ किया गया है। उन्होंने न केवल इस ग्रंथ की विषयवस्तु को वैज्ञानिक, प्रामाणिक एवं व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया है, बल्कि इसे इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि यह शोधकर्ताओं, विद्यार्थियों, नीति-निर्माताओं तथा सामान्य पाठकों सभी के लिए समान रूप से उपयोगी और प्रेरणादायक बन सके।

मैं प्रो. भरतराज सिंह के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। साथ ही, संस्थान के मुख्य कार्यकारी अधिकारी श्री शरद सिंह तथा स्कूल ऑफ मैनेजमेंट साइंसेज, लखनऊ के सभी सहयोगियों का भी हृदय से धन्यवाद करता हूँ, जिनके सहयोग, प्रोत्साहन और सतत प्रयासों से इस ग्रंथ का प्रकाशन संभव हो सका। उनके सामूहिक योगदान ने इस पुस्तक को और अधिक प्रभावी, उपयोगी तथा व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मेरा विश्वास है कि यह पुस्तक केवल पढ़ने के लिए नहीं, बल्कि समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने की प्रेरणा देने वाला एक सशक्त माध्यम सिद्ध होगी। जो भी पाठक इस ग्रंथ का अध्ययन करेगा, उसके मन में जल संरक्षण, नदी पुनर्जीवन, पर्यावरण संवर्धन तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण हेतु सक्रिय योगदान देने की प्रेरणा अवश्य जागृत होगी। यदि इस पुस्तक के माध्यम से समाज में जल के प्रति संवेदनशीलता, जनसहभागिता और संरक्षण की भावना विकसित होती है, तो यह हमारे प्रयासों की सबसे बड़ी सफलता होगी।

अंततः मैं सभी पाठकों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। मेरा दृढ़ विश्वास है कि उनके सहयोग, जागरूकता, सकारात्मक दृष्टिकोण एवं सक्रिय सहभागिता से जल संरक्षण का यह अभियान और अधिक व्यापक, प्रभावी तथा जन-जन तक पहुँचने वाला जनआंदोलन बनेगा। प्रत्येक नागरिक का छोटा-सा प्रयास भी

जल संसाधनों के संरक्षण, संवर्धन एवं उनके विवेकपूर्ण उपयोग में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है। यदि हम सभी सामूहिक उत्तरदायित्व का निर्वहन करते हुए जल के प्रति संवेदनशील एवं सजग बनें, तो आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित, स्वच्छ और पर्याप्त जल उपलब्ध कराना संभव होगा। निस्संदेह, इसी सामूहिक संकल्प और सतत प्रयास के बल पर भारत जल-सुरक्षा, पर्यावरणीय संतुलन, सामाजिक समरसता, शांति तथा सतत समृद्धि की दिशा में निरंतर अग्रसर होगा।

— लेखक
डा. राजेन्द्र सिंह,
जलपुरुष
तरुण भारत संघ, अलवर,
राजस्थान

आभार

किसी भी ग्रंथ का निर्माण केवल लेखक अथवा संपादक के प्रयासों का परिणाम नहीं होता, बल्कि यह अनेक व्यक्तियों, संस्थाओं, समुदायों तथा प्रकृति के प्रति समर्पित सहयोगियों के सामूहिक ज्ञान, अनुभव और परिश्रम का साकार स्वरूप होता है। ***"बमाया और कोटवाली नदी पुनर्जीवन"*** भी इसी सामूहिक चेतना, जनसहभागिता तथा जल संरक्षण के प्रति समर्पित प्रयासों का विनम्र दस्तावेज है।

सर्वप्रथम हम परमपिता परमेश्वर, प्रकृति तथा पंचमहाभूतों के प्रति अपनी श्रद्धा एवं कृतज्ञता व्यक्त करते हैं, जिनके संतुलन से पृथ्वी पर जीवन संभव है। जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि और आकाश के समन्वय से ही समस्त सृष्टि का संचालन होता है तथा नदियाँ जीवन की आधारशिला हैं। इस ग्रंथ के माध्यम से हमें प्रकृति के प्रति अपने दायित्व को पुनः स्मरण कराने का अवसर प्राप्त हुआ है।

हम भारत की समृद्ध वैदिक परंपरा, ऋषि-मुनियों, आचार्यों तथा उन महान वैज्ञानिकों और चिंतकों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने जल, वर्षा, नदियों, भू-जल, कृषि तथा प्रकृति के संबंध में अमूल्य ज्ञान प्रदान किया। विशेष रूप से महर्षि वराहमिहिर तथा भारतीय जल विज्ञान की प्राचीन परंपरा इस ग्रंथ की वैचारिक प्रेरणा का महत्वपूर्ण आधार रही है।

हम **उत्तर प्रदेश के यशस्वी मुख्यमंत्री, पूज्यनीय योगी श्री आदित्यनाथ जी महाराज** के प्रति हृदय से आभार एवं धन्यवाद व्यक्त करते हैं, जिन्होंने अपने आशीर्वचनों के माध्यम से पुस्तक में उठाए गए गंभीर एवं महत्वपूर्ण विषयों की सराहना की तथा चंबल के बीहड़ों में निवास करने वाले लोगों को मुख्यधारा से जोड़ने और नदियों के पुनर्जीवन हेतु किए जा रहे प्रयासों को प्रोत्साहित करते हुए अपना शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

हम सभी ग्रामवासियों, किसानों, जल-सैनिकों, स्वयंसेवकों एवं स्थानीय समुदायों के प्रति हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने जल संरक्षण और नदी पुनर्जीवन में योगदान दिया। बमाया, कोटवाली एवं चम्बल क्षेत्र की नदियों का पुनर्जीवन जनसहभागिता की शक्ति का प्रमाण है।

तरुण भारत संघ, अलवर के कार्यकर्ताओं एवं सहयोगियों का विशेष आभार, जिन्होंने जल संरक्षण को जन-आंदोलन बनाया। जल संरक्षण में अग्रणी भूमिका निभाने वाली महिलाओं को हम श्रद्धापूर्वक नमन करते हैं।

इस पुस्तकीय ग्रंथ को समृद्ध बनाने वाले विद्वानों, वैज्ञानिकों, अभियंताओं, विशेषज्ञों, शोधकर्ताओं एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं का हार्दिक धन्यवाद। सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं के सहयोग से यह पुस्तक अधिक प्रामाणिक, उपयोगी एवं शोधपरक बन सकी है।

हम **स्कूल ऑफ मैनेजमेंट साइंसेज़, लखनऊ** के प्रबंधन, विशेष रूप से सचिव व मुख्य कार्यकारी अधिकारी श्री शरद सिंह के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं, जिनके सहयोग एवं प्रोत्साहन से इस ग्रंथ का संपादन एवं प्रकाशन सफलतापूर्वक सम्पन्न हो सका। संस्थान के सभी सहयोगियों का भी हम धन्यवाद करते हैं, जिनके सहयोग से यह कार्य सुचारु रूप से पूर्ण हुआ।

संपादन, भाषा-संशोधन, तकनीकी परीक्षण, संदर्भ-संकलन तथा चित्रों, मानचित्रों और अन्य सामग्री के संकलन में सहयोग देने वाले सभी सहयोगियों के प्रति भी हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। उनके परिश्रम ने इस ग्रंथ को अधिक व्यवस्थित, वैज्ञानिक और पठनीय बनाया है।

हम शोधकर्ताओं, विद्यार्थियों, शिक्षकों तथा सभी पाठकों के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करते हैं, जिनकी जिज्ञासा और सकारात्मक सुझाव हमें निरंतर बेहतर कार्य करने की प्रेरणा देते रहे हैं। हमें विश्वास है कि यह ग्रंथ जल संरक्षण, नदी पुनर्जीवन, पर्यावरणीय संतुलन तथा सतत विकास के क्षेत्र में ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ जन-जागरण का प्रभावी माध्यम भी सिद्ध होगा।

अंत में, हम उन सभी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोगियों के प्रति हृदय से कृतज्ञ हैं, जिनका योगदान इस ग्रंथ के लिए अमूल्य रहा है। हमारा विश्वास है कि वर्षा जल संचयन, भू-जल पुनर्भरण, नदी संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग के सामूहिक प्रयासों से भारत जल-सुरक्षित, पर्यावरण-संतुलित एवं सतत विकास का सशक्त उदाहरण बन सकता है। यही इस पुस्तक की सार्थकता और हमारी सबसे बड़ी सफलता होगी।

— लेखक
डॉ. राजेन्द्र सिंह
जलपुरुष
तरुण भारत संघ, अलवर, राजस्थान
— संपादक
प्रो. (डॉ.) भरत राज सिंह
पर्यावरणविद व महानिदेशक (तक.)
स्कूल ऑफ मैनेजमेंट साइंसेज़, लखनऊ

अनुक्रमणिका

अध्याय		भूमिका / विवरण	पृष्ठ सं०
		सन्देश	v
		दो-शब्द	vii
		प्रस्तावना	xi
		आभार	xv
		अनुक्रमणिका	xvii
अध्याय-1		**विषय परिचय**	**1-6**
	1.1	जल, नदी और सभ्यता का पुनर्जागरण	1
	1.2	भारतीय ज्ञान परम्परा और जल विज्ञान	1
	1.3	नदी केवल जलधारा नहीं, जीवनधारा है	2
	1.4	बमाया और कोटवाली नदी का पुनर्जीवन : जनशक्ति का अद्‌भुत उदाहरण	3
	1.5	जल संरक्षण : विज्ञान और समाज का समन्वय	3
	1.6	डॉ. राजेन्द्र सिंह का योगदान	4
	1.7	यह पुस्तक क्यों महत्वपूर्ण है?	4
	1.8	भविष्य की दिशा	5
	1.9	इस ग्रंथ का उद्देश्य	5
अध्याय-2		**जल, पृथ्वी और पंचमहाभूत का वैदिक एवं वैज्ञानिक आधार**	**7-32**
	2.1	पंचमहाभूतों का योग : सृष्टि, पृथ्वी एवं नदी	7
	2.2	जल (अप्) का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक स्वरूप	10
	2.3	पृथ्वी का स्वरूप एवं महत्त्व	17
	2.4	पृथ्वी निर्माण में अग्नि की भूमिका (ऋग्वेद के अनुसार)	22
	2.5	हमारा पृथ्वी पर जन्म हो – ऋग्वेद में अग्नि से प्रार्थना	27
	2.6	समुद्र एवं महासागरों में ज्वालामुखीय क्रियाएँ, धरती निर्माण तथा खनिज संपदा	29

	2.7	पृथ्वी को उपजाऊ बनाने हेतु अग्नि से प्रार्थना	30
अध्याय-3		**भारतीय जल विद्या एवं वर्षा विज्ञान**	**33-50**
	3.1	जल विद्या और विज्ञान का इतिहास	33
	3.2	भारतीय जल विद्या एवं विज्ञान की परंपरा	39
	3.3	कृषि एवं अन्न उत्पादन हेतु वर्षा का पूर्वानुमान	42
	3.4	वराहमिहिर के अनुसार वर्षा का पूर्वानुमान	44
	3.5	प्राचीन भारतीय मौसम विज्ञान एवं आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण	46
अध्याय-4		**नदी विज्ञान एवं नदी व्यवहार**	**51-80**
	4.1	नदी की व्यवहार विद्या	51
	4.2	भारत की विविधरूपा नदियाँ : स्वरूप एवं विशेषताएँ	57
	4.3	नदियों का वर्गीकरण	61
	4.4	भारतीय परिवेश में नदी जल प्रवाह का महत्त्व	70
	4.5	पृथ्वी निर्माण और नदियों का विकास	71
	4.6	नदी, प्रकृति एवं मानव सभ्यता का संबंध	73
	4.7	सरिताएँ : प्रेम, शांति एवं अहिंसा की संवाहक	76
अध्याय-5		**नदी पुनर्जीवन एवं जल संरक्षण**	**81-130**
	5.1	भू-जल पुनर्भरण द्वारा नदियों का पुनर्जीवन	81
	5.2	छोटी नदियों के पुनर्जीवन की आवश्यकता	102
	5.3	जल संरक्षण की भारतीय परंपरा	105
	5.4	जल संरचनाओं का स्थान चयन	108
	5.5	बजट, कार्य संचालन, उत्तरदायित्व एवं जनभागीदारी	113
	5.6	पर्यावरणीय प्रभाव एवं मूल्यांकन रिपोर्ट	117
	5.7	तरुण भारत संघ का जल संरक्षण	124

		मॉडल	
	5.8	जल संरक्षण के पर्यावरणीय प्रभाव	127
अध्याय-6		**चंबल नदी – पुनर्जीवन का राष्ट्रीय मॉडल**	**131-150**
	6.1	चंबल नदी : पृथ्वी का एक "शृंगार"	131
	6.2	चंबल नदी का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व	134
	6.3	पुनर्जीवित सरिताएँ एवं चंबल की शांतिमय सभ्यता	137
	6.4	चंबल नदी का संकट	140
	6.5	चंबल संरक्षण के समाधान	145
	6.6	23 नदियों की बहनों एवं चंबल क्षेत्र का घोषणापत्र	148
अध्याय-7		**बमाया नदी – इतिहास, भूगोल एवं नदी तंत्र**	**151-186**
	7.1	बमाया नदी का इतिहास	151
	7.2	बमाया नदी का भूगोल	155
		7.2.1 थाने का पुरा	156
		7.2.2 मथारा	160
		7.2.3 बिदरपुर	164
		7.2.4 बिरजा	167
		7.2.5 पावेश्वर	170
		7.2.6 धौंध	172
		7.2.7 सोनी	175
		7.2.8 गुढ़ा	178
		7.2.9 बटीकरा	181
अध्याय-8		**कोटवाली नदी – इतिहास, भूगोल एवं नदी तंत्र**	**187-220**
	8.1	कोटवाली नदी का इतिहास	187
	8.2	कोटवाली नदी का भूगोल	188
		8.2.1 जंजारीपुरा	189
		8.2.2 जमूरा	191
		8.2.3 कोड़ापुरा	195
		8.2.4 बाजना	198
		8.2.5 परौगा	201
		8.2.6 ओखरलियापुरा	204

		8.2.7 खेरटपुरा	206
		8.2.8 खड़ैयापुरा	208
		8.2.9 झाझरपुरा	211
		8.2.10 नयापुरा	214
		8.2.11 वेदपुरा	217
अध्याय 9		**भारतीय जल संस्कृति का भविष्य**	**221-236**
	9.1	भविष्य की जल नीति	221
	9.2	नदी पुनर्जीवन की राष्ट्रीय रणनीति	223
	9.3	जनभागीदारी एवं जल प्रबंधन	226
	9.4	जल, पर्यावरण एवं सतत विकास	229
	9.5	निष्कर्ष	232
परिशिष्ट		**सन्लग्नक**	**237-254**
	I.	जल संचयन के पारम्परिक संसाधन चित्र 5.5 (अ), (ब) व (स)	237-239
	II.	आयतन व लागत निकालने की विधि चित्र 5.7 (अ), (ब) व (स)	240-242
	III.	संदर्भ /पुस्तकें	243-244
	IV.	शब्द-कोष	245-253

1.
विषय-परिचय

1.1 जल, नदी और सभ्यता का पुनर्जागरण

"जल ही जीवन है"—यह कथन केवल एक लोकप्रिय उक्ति नहीं, बल्कि मानव सभ्यता के विकास का मूल सिद्धांत है। पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति, मानव बस्तियों का विकास, कृषि का विस्तार, व्यापार की समृद्धि तथा सांस्कृतिक उत्कर्ष—इन सभी का आधार जल और विशेष रूप से नदियाँ रही हैं। विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ—सिंधु, गंगा, नील, टाइग्रिस-यूफ्रेटीस और ह्वांगहो—सभी नदियों की गोद में विकसित हुईं। भारतीय संस्कृति में तो नदियों को माता का स्थान दिया गया है। हमारे वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत तथा लोक परम्पराएँ नदियों को केवल जलधारा नहीं, बल्कि जीवन, धर्म, संस्कृति, कृषि, अर्थव्यवस्था तथा प्रकृति के समन्वित स्वरूप के रूप में स्वीकार करती हैं।

आज जब सम्पूर्ण विश्व जलवायु परिवर्तन, भू-जल के तीव्र दोहन, वर्षा की अनिश्चितता, बढ़ते प्रदूषण, सूखती नदियों तथा जल संकट जैसी गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब भारत की प्राचीन जल संस्कृति और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समन्वय अत्यंत आवश्यक हो गया है। यही इस ग्रंथ की मूल प्रेरणा है।

"पुनर्जीवित बमाया और कोटवाली नदी**"** केवल दो नदियों के पुनर्जीवन का इतिहास नहीं है, बल्कि यह भारतीय जल-दर्शन, पर्यावरणीय पुनर्जागरण, सामाजिक चेतना तथा सामुदायिक सहभागिता का एक जीवंत दस्तावेज है। यह पुस्तक प्रमाणित करती है कि यदि समाज, विज्ञान, प्रशासन और जनसंगठन एक साझा उद्देश्य के साथ कार्य करें, तो मृतप्राय नदियों में भी पुनः जीवन का संचार किया जा सकता है।

1.2 भारतीय ज्ञान परम्परा और जल विज्ञान

भारतीय मनीषियों ने हजारों वर्ष पूर्व जल को पंचमहाभूतों में एक अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार किया। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा अनेक वैदिक ग्रंथों में जल के स्वरूप, वर्षा चक्र, नदियों, समुद्र, भू-जल तथा पर्यावरण के संरक्षण का अत्यंत वैज्ञानिक वर्णन मिलता है। आधुनिक जल विज्ञान जिन सिद्धांतों की वैज्ञानिक पुष्टि आज कर रहा है, उनके मूल संकेत भारतीय ऋषियों ने सहस्रों वर्ष पूर्व प्रस्तुत किए थे।

इस पुस्तक को 9-अध्यायों में बाटा गया है –

1- विषय परिचय
2- जल, पृथ्वी और पंचमहाभूत का वैदिक एवं वैज्ञानिक आधार
3- भारतीय जल विद्या एवं वर्षा विज्ञान,
4- नदी विज्ञान एवं नदी व्यवहार,
5- नदी पुनर्जीवन एवं जल संरक्षण,
6- चंबल नदी – पुनर्जीवन का राष्ट्रीय मॉडल,
7- बमाया नदी – इतिहास, भूगोल एवं नदी तंत्र,
8- कोटवाली नदी – इतिहास, भूगोल एवं नदी तंत्र और
9- भारतीय जल संस्कृति का भविष्य

जिसमें भारतीय जल विज्ञान, पंचमहाभूत, पृथ्वी की उत्पत्ति, वर्षा विज्ञान, नदी व्यवहार विज्ञान, जल चक्र तथा भारतीय वैदिक साहित्य में उपलब्ध वैज्ञानिक प्रमाणों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करता है। यह भाग केवल ऐतिहासिक जानकारी नहीं देता, बल्कि यह स्पष्ट करता है कि भारत की वैज्ञानिक परम्परा प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व पर आधारित रही है। पुस्तक में यह भी दर्शाया गया है कि जल संरक्षण केवल तकनीकी विषय नहीं, बल्कि नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक उत्तरदायित्व भी है।

1.3 नदी केवल जलधारा नहीं, जीवनधारा है

किसी नदी का अस्तित्व केवल उसके प्रवाहित जल तक सीमित नहीं होता। उसके साथ जुड़ा होता है सम्पूर्ण जलागम क्षेत्र, भू-जल, वनस्पति, जैव-विविधता, कृषि, पशुपालन, स्थानीय अर्थव्यवस्था तथा मानव जीवन। जब कोई नदी सूखती है, तब केवल जल समाप्त नहीं होता, बल्कि उसके साथ समाज की आजीविका, पर्यावरणीय संतुलन, सांस्कृतिक परम्पराएँ और भविष्य की संभावनाएँ भी प्रभावित होती हैं।

भारत के अनेक भागों में पिछले कुछ दशकों में अनियंत्रित भू-जल दोहन, वनों की कटाई, पारम्परिक जल संरचनाओं की उपेक्षा तथा वर्षा जल के अपर्याप्त संरक्षण के कारण छोटी नदियाँ और जल स्रोत समाप्त होने लगे। परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन प्रभावित हुआ, भू-जल स्तर निरंतर नीचे गया तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था संकटग्रस्त होती चली गई।

ऐसी परिस्थितियों में नदी पुनर्जीवन केवल पर्यावरण संरक्षण का कार्य नहीं, बल्कि ग्रामीण विकास, खाद्य सुरक्षा, जैव विविधता, सामाजिक समरसता तथा सतत विकास का आधार बन जाता है।

1.4 बमाया और कोटवाली नदी का पुनर्जीवन : जनशक्ति का अद्भुत उदाहरण

इस पुस्तक का प्रमुख विषय बमाया और कोटवाली नदी का पुनर्जीवन है। इन दोनों नदियों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि यदि स्थानीय समुदाय स्वयं अपने प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा का संकल्प ले, तो बड़े से बड़ा परिवर्तन संभव है।

नदी पुनर्जीवन केवल मशीनों अथवा सरकारी योजनाओं का परिणाम नहीं होता। इसके लिए आवश्यक है—

- जलागम क्षेत्र का वैज्ञानिक विकास,
- वर्षा जल संचयन,
- भू-जल पुनर्भरण,
- छोटी-छोटी जल संरचनाओं का निर्माण,
- वनों का संरक्षण,
- सामुदायिक श्रमदान,
- स्थानीय नेतृत्व, तथा
- जन-जागरूकता।

बमाया और कोटवाली नदी का अनुभव बताता है कि जब समाज स्वयं अपने जल संसाधनों के प्रति उत्तरदायित्व स्वीकार करता है, तब सूखी नदियाँ पुनः प्रवाहित होने लगती हैं, भू-जल स्तर बढ़ता है, कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था में स्थायी परिवर्तन दिखाई देता है।

1.5 जल संरक्षण : विज्ञान और समाज का समन्वय

आज जल संरक्षण के क्षेत्र में केवल इंजीनियरिंग समाधान पर्याप्त नहीं हैं। वैज्ञानिक तकनीकों के साथ सामाजिक सहभागिता, स्थानीय ज्ञान, पारम्परिक अनुभव तथा पर्यावरणीय संवेदनशीलता का समन्वय आवश्यक है।

इस पुस्तक में जल संरक्षण की विभिन्न तकनीकों, भू-जल पुनर्भरण, जलागम प्रबंधन, लघु जल संरचनाओं, सामुदायिक सहभागिता तथा पर्यावरणीय प्रभावों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि जल संरक्षण एक बहुआयामी

विषय है, जिसमें भू-विज्ञान, जल विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, कृषि विज्ञान, समाजशास्त्र तथा प्रबंधन सभी की महत्वपूर्ण भूमिका है।

1.6 डॉ. राजेन्द्र सिंह का योगदान

भारत में नदी पुनर्जीवन की बात होती है तो *भारत के जलपुरुष* डॉ. राजेन्द्र सिंह का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। उन्होंने जल संरक्षण को केवल एक तकनीकी कार्यक्रम तक सीमित न रखकर जन-आंदोलन का स्वरूप प्रदान किया तथा सामुदायिक सहभागिता के माध्यम से जल प्रबंधन की नई दिशा स्थापित की।

राजस्थान सहित देश के अनेक क्षेत्रों में हजारों पारम्परिक जल संरचनाओं का पुनर्निर्माण, सूखी नदियों का पुनर्जीवन, भू-जल स्तर में उल्लेखनीय सुधार तथा ग्राम समुदायों को जल प्रबंधन में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित करना उनके जीवन का महान कार्य है। उनके मार्गदर्शन, अनुभव और जल संरक्षण की समग्र दृष्टि से प्रेरित होकर इसी वर्ष **2026** में **बमाया एवं कोटवाली नदियों** का सफल पुनर्जीवन भी संभव हो सका, जो जनसहभागिता और वैज्ञानिक जल प्रबंधन का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

इस पुस्तक में प्रस्तुत अनुभव इसी विश्वास को सुदृढ़ करते हैं कि यदि समाज संगठित होकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण और स्थानीय संसाधनों के समन्वय से कार्य करे, तो सूखी नदियों को पुनः जीवन प्रदान किया जा सकता है।

1.7 यह पुस्तक क्यों महत्वपूर्ण है?

यह ग्रंथ अनेक दृष्टियों से विशिष्ट है—

- यह भारतीय जल संस्कृति और आधुनिक जल विज्ञान का समन्वित अध्ययन प्रस्तुत करता है।
- इसमें नदी पुनर्जीवन के सफल व्यावहारिक अनुभव सम्मिलित हैं।
- पुस्तक जल संरक्षण के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक पक्षों का संतुलित विश्लेषण करती है।
- इसमें पर्यावरण संरक्षण को सतत विकास के साथ जोड़ा गया है।
- यह नीति-निर्माताओं, शोधकर्ताओं, अभियंताओं, पर्यावरणविदों तथा विद्यार्थियों सभी के लिए उपयोगी संदर्भ सामग्री प्रदान करती है।

यह पुस्तक केवल पढ़ने के लिए नहीं, बल्कि समाज में जल संरक्षण के प्रति नई चेतना उत्पन्न करने के उद्देश्य से तैयार की गई है।

1.8 भविष्य की दिशा

वर्तमान शताब्दी को जल संकट की शताब्दी भी कहा जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र सहित अनेक अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ जल संरक्षण, भू-जल पुनर्भरण, जल सुरक्षा तथा जलवायु परिवर्तन को मानवता की सबसे बड़ी चुनौतियों में मानती हैं। भारत जैसे विशाल कृषि प्रधान देश के लिए यह चुनौती और भी महत्वपूर्ण है।

यदि हमें भविष्य की पीढ़ियों को सुरक्षित जल उपलब्ध कराना है तो प्रत्येक नागरिक, प्रत्येक ग्राम, प्रत्येक नगर तथा प्रत्येक संस्था को जल संरक्षण का दायित्व स्वीकार करना होगा। वर्षा की प्रत्येक बूंद को संचित करना, भू-जल का संतुलित उपयोग करना, नदियों के प्राकृतिक प्रवाह को सुरक्षित रखना तथा पारम्परिक जल संरचनाओं का संरक्षण करना आज समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

1.9 इस ग्रंथ का उद्देश्य

इस ग्रंथ का उद्देश्य केवल जल संरक्षण, भू-जल पुनर्भरण एवं नदी पुनर्जीवन से संबंधित तथ्यों और वैज्ञानिक सिद्धांतों की जानकारी प्रदान करना मात्र नहीं है, बल्कि समाज में जागरूकता, उत्तरदायित्व और सकारात्मक परिवर्तन की भावना का संचार करना भी है। यह पुस्तक पाठकों के मन में प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने तथा जल को केवल एक प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि जीवन, संस्कृति और सभ्यता के आधार के रूप में समझने की प्रेरणा देती है। यह ग्रंथ इस विश्वास को सुदृढ़ करता है कि नदी पुनर्जीवन कोई असंभव अथवा केवल सरकारी प्रयासों पर निर्भर कार्य नहीं है। यदि वैज्ञानिक दृष्टिकोण, स्थानीय परिस्थितियों की समझ, पारंपरिक ज्ञान, आधुनिक तकनीक तथा जनसहभागिता का समन्वित उपयोग किया जाए, तो सूख चुकी नदियों को भी पुनः प्रवाहित किया जा सकता है। बमाया एवं कोटवाली नदी के पुनर्जीवन का अनुभव इसी सत्य का प्रमाण है कि दृढ़ संकल्प, सुनियोजित प्रयास और सामूहिक सहभागिता से प्राकृतिक संसाधनों का पुनरुत्थान संभव है।

इस पुस्तक के माध्यम से यह भी स्पष्ट किया गया है कि जल संरक्षण केवल पर्यावरणीय आवश्यकता नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समृद्धि का आधार है। जल की प्रत्येक बूंद का संरक्षण, वर्षा जल का समुचित संचयन, भू-जल का पुनर्भरण तथा नदियों का संरक्षण हमारे वर्तमान और भावी दोनों पीढ़ियों के सुरक्षित भविष्य के लिए अनिवार्य है। इसलिए यह ग्रंथ प्रत्येक नागरिक, विद्यार्थी, शोधकर्ता, नीति-निर्माता, अभियंता, पर्यावरणविद् तथा समाजसेवी के लिए एक उपयोगी मार्गदर्शिका के रूप में तैयार किया गया है।हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक शोध एवं अकादमिक अध्ययन, शिक्षण-प्रशिक्षण, नीति-निर्माण, प्रशासनिक

योजनाओं तथा जन-जागरूकता अभियानों में महत्वपूर्ण योगदान देगी। साथ ही, यह देशभर में नदी संरक्षण, जलागम प्रबंधन, भू-जल पुनर्भरण तथा सतत जल प्रबंधन के क्षेत्र में नए विचारों, नवाचारों और जन-आंदोलनों को प्रेरित करेगी।

यदि इस ग्रंथ के अध्ययन से समाज में जल के प्रति संवेदनशीलता बढ़े, लोग जल संरक्षण को अपने जीवन का दायित्व मानें, समुदाय संगठित होकर नदियों और जलस्रोतों के पुनर्जीवन के लिए आगे आएँ तथा भारत जल-सुरक्षित, पर्यावरण-संतुलित और समृद्ध राष्ट्र बनने की दिशा में एक कदम और आगे बढ़े, तो यही इस ग्रंथ के प्रकाशन का वास्तविक उद्देश्य और इसकी सबसे बड़ी सार्थकता होगी।

2.
जल, पृथ्वी और पंचमहाभूत का वैदिक एवं वैज्ञानिक आधार

2.1 पंचमहाभूतों का योग सृष्टि, पृथ्वी, नदी है

प्राचीन काल में हमारे विचारक पंचमहाभूतों मानते थे। आज जो मूलतत्त्वों का पता लगा है, वह उन पंचमहाभूतों को काट नहीं सकता। वे पंचमहाभूत दृश्य के पृथक्करण में से निकले हुए नहीं हैं, दर्शन के पृथक्करण में से निकले हैं। जब तक हमारी पांच इंद्रियां हैं, तब तक हमारा दर्शन पंचविध रहेगा। सृष्टि में पंचमहाभूत ही कायम रहेंगे। हम पंचमहाभूतों की गिनती संस्कृति में करते हैं। पश्चिम में प्लेटो, अरिस्टॉटल, साक्रेटिस, कांट, शोपेनहावर, ग्रीन जैसे प्राचीन-अर्वाचीन तत्त्वज्ञानियों ने पंचमहाभूतों की गिनती अध्यात्म विचार में नहीं की है। वे उनको फिजिक्स की चीज मानते हैं। लेकिन हिंदुस्तान की यह विशेषता है कि, यहां फिजिक्स (भौतिक विज्ञान) और मेटाफिजिक्स (तत्त्व विज्ञान) को अलग-अलग नहीं माना गया। अपने देह में पंचमहाभूत मुख्य माने गये हैं और वे ही सृष्टि में भी हैं। पिंड और ब्रह्मांड एक हैं, यह विचार भारत का अपना विचार है।

परमेश्वर अंतर्यामी रूप में विराजमान है। शरीरगत, शरीर को पहचाननेवाला जो तत्त्व है, शरीर से भिन्न, उसे आत्मा कहते हैं। सृष्टि के अंदर रहनेवाला, सृष्टि को पहचाननेवाला, सृष्टि से भिन्न जो एक तत्त्व है, उसे ईश्वर कहते हैं। जहां ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त होता है, वहां उसकी कृपा मिलती है। रोजमर्रा हम यह अनुभव करते हैं। अनुभव करते हैं, फिर भी नहीं समझते कि वह ईश्वर की कृपा है। प्रतिक्षण हम श्वास अंदर लेते हैं, खराब वायु बाहर छोडते हैं, बाहर की स्वच्छ, निर्मल वायु अंदर लेते हैं। यह ईश्वर की कृपा है, लेकिन हम इसे वायु-कृपा समझते हैं। शरीर में जलतत्त्व है। वह जरा-सा भी सूख जाता है, तो हम पानी पीते हैं। इसे हम जल-कृपा समझते हैं, परमेश्वर की कृपा नहीं समझते। ऐसी मिसालें बहुत दी जा सकती हैं। हमारा शरीर मांस का बना हुआ है। शरीर का वजन जब घटता है, शरीर कमजोर बनता है, तो बाहर एक मांस बढानेवाला सृष्टि का अंश, मक्खन और दूध हम खाते हैं। इसे हम दूध और मक्खन की कृपा समझते हैं, ईश्वर की कृपा नहीं समझते। यानी ब्रह्मांड की कृपा पिंड पर हो रही है, यह नहीं समझते। सूर्य की कृपा आंख पर हो रही है, जल की कृपा शरीरांतर्गत जलतत्त्व पर हो रही है। वायु की कृपा प्राण पर हो रही है। यह सारी सिर्फ ईश्वर-कृपा है।

यह सारी सृष्टि की कृपा समझते हैं और कुछ हद तक वह सही है, लेकिन जहां हम फेफडे मजबूत करने के लिए स्वच्छ वायु की मदद लेते हैं, वहां हम यह भी कर सकते हैं कि अंदर की बौद्धिक और मानसिक दुर्बलता हटाने के लिए, ब्रह्मांड अंतर्गत स्मृति और मन का भी इस्तेमाल करें। यह हम करते भी हैं। मेरी बुद्धि कमजोर है, तो गुरु का बोध मैं लेता हूं। हम समझते हैं कि, गुरुकृपा मुझ पर हो रही है। हम उसे ईश्वर की कृपा नहीं समझते। जैसे केला खाने से मांस बढा, तो केले की कृपा समझते हैं, वैसे ही गुरु-कृपा हुई, ऐसा समझते हैं। लेकिन एक मौका आता है, जहां न गुरु-कृपा मदद करती है, न वायुकृपा, न ही और कोई कृपा। उस वक्त ब्रह्मांड में जो परमेश्वर है, उसकी मदद मांग सकते हैं। जहां आत्मतत्त्व की कमी मालूम हुई, उसकी पूर्ति के लिए परमेश्वर-तत्त्व से मदद मिलती है।

पंचमहाभूतों को हिन्दी में अन्य नामों से भी जानते हैं- भूमि, गगन, वायु, अग्नि और नीर। इनमें से अन्न और पानी (पृथ्वी और जल) को छोड़कर अन्य तीनों भूतों (तेज, वायु और आकाश) के साथ ध्यान में संबंध आता है। अन्न और पानी का समावेश कर्मयोग में (अर्थात् सेवा में) होता है। कर्मयोग की साधना में ये दो भूत प्रधान होते हैं और ध्यान योग में शेष तीन भूत।

ऋग्वेद में अघमर्षण सूक्त के तीन मंत्र हैं। अघमर्षण का अर्थ है, पापनाशक । यह सूक्त संध्योपासना में बोला जाता है। इस मंत्र के जप से पाप-निरसन होता है। इसलिए शंकराचार्य ने इसकी सिफारिश की है- अघमर्षणं कुर्यात्। अघमर्षण सब सूक्तों का राजा है। साधक अघमर्षण सूक्त का जप करें। जिस तरह से पानी से पूर्ण भरा हुआ कुंभ समुद्र में रखते हैं, उसके अंदर-बाहर पानी ही पानी रहता है, उसी तरह अपना मन पूर्ण ब्रह्म में विलीन करें, यह अघमर्षण है। मनु ने भी इसकी सिफारिश करते हुए कहा है कि कुल के कुल पाप दूर करने के लिए अघमर्षण सूक्त का जप किया जाये। वेद के एक-एक मंत्र का उपयोग, भिन्न-भिन्न पापों के नाश के लिए होता है। लेकिन अघमर्षण सूक्त सब पापों का क्षालन करता है। इस सूक्त में पाप-विनाशन का कोई उल्लेख ही नहीं है। सिर्फ इतना ही वर्णन है कि भगवान ने सृष्टि की रचना कैसे की।

परमेश्वर ने आरंभ में जप किया, तो उसे सूझा नहीं कि सृष्टि कैसे बनेगी। फिर उसने तप की ज्वाला जलायी, चिंतन किया। सृजन के लिए ज्ञानयुक्त तप किया। उसने चिंतन करके ऋत और सत्य, ये दो तत्त्व निकाले। उसके बाद रात्रि पैदा हुई। और फिर अनेक लहरोंवाला समुद्र हुआ। फिर उनमें से दिवस, रात्रि, सूर्य, चंद्र, काल आदि उत्पन्न हुए। पूरे विश्व का जो धाता नायक है, उसने सूर्य-चंद्र जैसे पहले थे, वैसे

पैदा किये यथापूर्वमकल्पयत। बीज में से फल पैदा किया। पृथ्वी पैदा की, अंतरिक्ष पैदा किया, स्वर्ग पैदा किया। तो इससे पापमार्जन कैसे होगा?

विशालता के भान से, नम्रता में एक बात यह कही कि सूर्य, चंद्र भगवान ने ऐसे निर्माण किये जैसे पहले थे। मतलब सृष्टि अनादि, अनंत है और बीच-बीच में प्रलय, उत्पत्ति होते रहते हैं। लेकिन अनादि काल से इस महान विशाल सृष्टि में कितने गोल हैं, मालूम नहीं। कहते हैं कि आकाशगंगा में दो हजार करोड सूर्य हैं। और यह जो दूरबीन से दीख रहा है, वह उसका केवल अंदाज है। लेकिन आकाश इतना अनंत है कि उसके किसी एक कोने में भी जो चलता है, उसका भी नाप दूरबीन से नहीं आ सकता। यह सारी नक्षत्रमाला एक कोने में है। जगत का अर्थ गतिमान है। जगत शब्द बडा सूचक है। पृथ्वी निरंतर गतिमान है। गतिमान पृथ्वी में हमारे सामने जो नक्षत्रमाला दीखती है, उसकी अनंत गति है। इसमें सृष्टि-रचना का, उसकी विशालता का, उसके मूल में जाकर खोज करने का तत्त्व समझाया है। इसके परिणामस्वरूप चित्त में अहंकार नहीं रहेगा। इस शरीर की क्षुद्रता प्रतिक्षण प्रतीत होगी।

जहां अनंत सूर्य हैं, जहां अनंत गोल हैं, वहां उनमें एक पृथ्वी! और उस पृथ्वी में अनंत प्राणी हैं। एक-एक जलबिंदु में असंख्य-असंख्य जंतु रहते है। उधर अत्यंत अणु और इधर अत्यंत महान्! ऐसी विशाल पृथ्वी पर मैं एक मनुष्य प्राणी! उसकी अनेक वासनाएँ और अनेक मोहजाल। जब नक्षत्रमाला का ख्याल करते हैं, तब अपनी क्षुद्रता का भान होता है। और मनुष्य जब नम्र बनता है, तो उसके पापों का क्षालन होता है। पाप अहंकार के कारण होता है। जहां अहंकार शांत होता है और नम्रता का भान होता है, वहां पाप का मार्जन होता है। इस सूक्त के जप से पाप जाता है, इसका मतलब सृष्टि की विशालता का भान होता है और अहंकार जाता है। अघमर्षण सूक्त में अनादि, अनंत, अपार, निःसीम सृष्टि का वर्णन कर दिया, जिसे पढकर मनुष्य को लगता है कि मैं कितना क्षुद्र हूं। वैसे ही ज्योतिष-शास्त्र का अभ्यास करते हैं, तब लगता है कि पृथ्वी कितनी नाचीज है। सूर्य भी एक छोटा सा बिंदुमात्र है। ये जो सारी तारिकाएं, नीहारिकाएं रात को दीख पडती हैं, वे अनंत आकाश के एक कोने में पडी हुई हैं और अनंत आकाश असीम फैला हुआ है। यह भी कहा जाता है कि, आकाशगंगा में साठ करोड पृथ्वियां हैं। पृथ्वी यानी ग्रह, जिसमें मानव जैसे प्राणी रहते हैं। हम सोचते हैं कि, जहां दो हजार करोड तारे और साठ करोड पृथ्वियां हैं, वहां उन सबके बीच हमारी इस छोटी-सी पृथ्वी का क्या स्थान होगा? क्या इसे आकाशगंगा का एक बिंदु माना जायेगा? वह बिंदु में भी नहीं दीख सकेगी। आकाशगंगा का नक्शा बनायें तो उसमें इस पृथ्वी को दिखाना भी मुश्किल हो जायेगा ।

आकाशगंगा के सामने जहां पृथ्वी की यह स्थिति है, वहां मानव की क्या स्थिति होगी? इस पृथ्वी पर सात सौ करोड मानव हैं। करोड़ों-करोड़ प्राणियों में एक मानव प्राणी !

उनमें सात सौ करोड मानवों में एक मानव "मैं"। इसलिए हमें समझना चाहिए कि, इस विशाल जगत में टोटल (संपूर्ण) में जो परिणाम आयेगा, सो आयेगा। उसमें हमारी क्या हस्ती है! अभी मैं रेडियो अस्ट्रानोमी की किताब पढ़ रहा था, तो मेरी आंखों से आंसुओं की धारा बही। उसमें लिखा है कि कुछ ग्रह कोटि- कोटि प्रकाश वर्ष दूर हैं। वहां प्रलय हो रहा है। वह हमारे पास आयेगा, हमको छुयेगा, लेकिन यहां आते-आते कुछ करोड वर्ष लग जायेंगे, आदि। अब इतनी विशाल सृष्टि में हमसे क्या बनने वाला है? कुछ थोडी-सी नैतिक दृष्टि से लोगों को उन्नति का भान हुआ, तो बहुत हुआ। इससे ज्यादा क्या होने वाला है? ऐसी हालत में मैं यह सोचूं कि 'दुनिया में मेरा भी कुछ स्थान है और मैं भी कुछ हूं', तो मैं मूढात्मा हूं।

जो इस सृष्टि-रचना को समझेगा, वह सत्यस्वरूप होगा। जो इस पर सोचेगा, उसके ध्यान में आयेगा कि ऊपर-ऊपर कितना है। सोचते-सोचते पीछे- पीछे चले जायें इस भूमि को उसका आधार, उसको उसका आधार, ऐसा करते-करते पीछे-पीछे चले जाते हैं तो परमेश्वर के पास पहुँच जाते है।

2.2 जल (अप्) का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक स्वरूप

संस्कृत में 'अप्' शब्द का एक अर्थ है पानी, और दूसरा अर्थ है श्रद्धा। ज्ञानदेव महाराज ने कहा है कि सत्य पानी जैसा होना चाहिए। पानी इतना मृदु होता है कि, मनुष्य के शरीर के सबसे नाजुक अवयव, आंखों की पुतलियों को भी वह नहीं चुभता। दूसरी ओर वह इतना कठोर है कि, पत्थर को भी फोड देता है। इसी तरह सत्य भी एक ओर तो लोगों को रिझाने में, आनंद देने में अत्यंत शीतल और मृदु रहे और दूसरी ओर संशय-छेदन में अत्यंत प्रखरता दिखलाये। इस तरह ऋषियों ने नदी के आधार पर, पानी के आधार पर असंख्य कल्पनाएं की हैं।

एक बार एक ऋषि बीमार पड़े। उन्होंने सोमराजा से कहा, 'हे देव! सुनता हूं कि तुममें असंख्य वनस्पतियां भरी हुई हैं, तो मुझे भी कुछ औषधि दे दो।' इस पर सोमराजा ने कहा- अप्सु मे सोमो अब्रवीत् अंतर्विश्वानि भेषजा। अग्निं च विश्वशंभुवम्- अर्थात् पानी में सब वनस्पतियां भरी हैं, इसलिए तुम पानी का उपयोग करो। सिर्फ पानी से भी बीमारी अच्छी होती है। पानी में अग्नि भी रह सकती है। यानी पानी गरम भी हो सकता है। इसलिए आवश्यकतानुसार कभी गरम तो कभी ठंडा पानी पीने से अन्य किसी औषध की जरूरत नहीं रहेगी। अभी तो पाश्चात्यों ने भी यह जल-चिकित्सा का पंथ चलाया है।

हमारे दादाजी महादेव जी की पूजा करते थे। एक बार पूजा के समय उनका शरीर कांपने लगा और उन्हें सिहरन हो उठी। उनकी पूजा करीब दो-तीन घंटे चलती थी।

पूजा में विघ्न उन्हें सहन नहीं होता था। शरीर में कंपन शुरू होते ही वे उठे और पास के कुएं में कूद पडे। दादी को लगा कि, अचानक यह क्या हुआ? परंतु वे तो बडे कुशल तैराक थे। पांच-सात मिनट अच्छी तरह से तैरकर ऊपर आ गये और शरीर पोंछकर पुनः पूजा में बैठ गये। यह घटना मैंने अपनी आंखों से देखी है, चाहे आप विश्वास करें या न करें। पदयात्रा के दौरान मुझे भी यह अनुभव आया कि, पानी में भीग जाने से भी हानि कुछ नहीं होती, क्योंकि पानी में सारी औषधियां भरी हैं। इसीलिए वेद ने पानी को विश्वभेषजीः की उपाधि दी है।

पानी कहीं का भी क्यों न हो, समुद्र की ओर जाना चाहता है। यह नहीं कि सभी प्रकार का पानी समुद्र तक पहुंच सकता है; लेकिन चाहे वह पानी मेरे स्नान का हो या गंगानदी में बहने वाला हो, दोनों की गति निचान की ओर यानी समुद्र की ओर ही है। दोनों निम्नगतिक नम्र हैं। कहीं थोडा पानी, उसकी ताकत कम होने के कारण, भले ही बीच ही में रुक जाये और किसी छोटे वृक्ष को जीवन प्रदान करने में उसका उपयोग हो जाये, लेकिन उसकी गति तो समुद्र की और ही है। समुद्र तक पहुंचने का भाग्य तो गंगाजी के समान महानदियों को ही प्राप्त होता है, पर पानी होता निम्नगतिक ही है। पानी पांच फुट की ऊंचाई पर हो या पांच हजार फुट की ऊंचाई पर, उसकी हमेशा यही कोशिश रहेगी कि वह नीचे उतरे। निचाई वाले क्षेत्र को अपना लाभ पहुंचाना पानी का धर्म है। लोटा भर भी पानी बिलकुल समतल जगह पर डाला जाये तो भी वह कोशिश यही करेगा कि, उससे भी नीचे की ओर जाये। अगर वह वहां न जा पाये, तो अलग बात है, लेकिन उसकी कोशिश तो यही रहेगी। इसी को करुणा कहते हैं। एक प्रक्रिया है, नीचे उतरने की। जो प्रेम और आनंद की अनुभूति चाहते हैं, उन्हें नीचे उतरना ही होगा। जिसे नीचे उतरना सधेगा, उसी का जीवन आनंदमय होगा।

पानी का स्वभाव कैसा होता है? कुएं से एक बाल्टी निकालिए, तो वहां बाल्टी की जगह हुए गड्ढे को पाटने के लिए आसपास का पानी दौड़ पडता है और क्षणभर में पुनः समानता स्थापित हो जाती है। कुएं में पानी बढ़ता है तो सब ओर से बढ़ता है और कम होता है, तो सब तरफ से कम होता है। परंतु ज्वार के ढेर में ऐसा नहीं होता। उसमें से यदि आप दो- चार सेर अनाज निकालें, तो वहां का गड्ढा वैसा ही बना रहेगा। बहुत हुआ तो कुछ महात्मा दाने दौड़कर उस गड्ढे में कूद पड़ेंगे, पर शेष हठी दाने दौड़ कर नहीं आयेंगे। वे वैसे ही मजे से देखते रहेंगे। मनुष्य-समाज को पानी की तरह होना चाहिए, तभी समाज में समानता हो सकती है।

हमारे देश में पानी के विषय में इतनी विलक्षण श्रद्धा है कि, हम नदियों को माता मानते हैं। हमने जहां-जहां नदियां हैं, वहीं तीर्थ क्षेत्र बना लिये हैं। ग्रहण और अन्य पर्वों के अवसरों पर लाखों लोग वहां स्नान करने जाते हैं। कुंभ मेले के समय लाखों लोग गंगा-स्नान करते हैं। कुछ लोग मानते हैं कि, यह सारी मूर्खों की जमात है। गंगा

नहाने से हमें कुछ भी हाथ नहीं लगता, बेकार पैसे खर्च होते हैं। पुराने जमाने से ऐसी कितनी ही अंध श्रद्धाएं चल पडी हैं। लेकिन सोचने की बात है कि कुंभ मेले में जुटने वाले लोगों की संख्या मामूली नहीं होती। यूरोप के किसी छोटे राष्ट्र की जनसंख्या से अधिक लोग उस अवसर पर वहां नहाने पहुंचते हैं। क्या उन सभी नदी-स्नान करनेवालों को मूर्ख माना जायेगा? हिंदुस्तान में दस हजार वर्षों से यह परंपरा चली आ रही है। इसलिए हिंदुस्तानियों की यह कथित सनक कभी मिट नहीं सकती। विज्ञान कितना भी सिखाये कि, पानी यानी हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का योग है, फिर भी हम लोग यही समझते रहेंगे कि, वह राम-लक्ष्मण का योग है। वेद में एक मंत्र है

यासां राजा वरुणो याति मध्ये, सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम्।

अर्थात् लोगों के सत्य और झूठ की परीक्षा करने वाला परमात्मा जल में निवास करता है। हमारे यहां कहते हैं कि, 'जल हाथ में लेकर बोलो,' यानी माना जाता है कि जल हाथ में लेनेवाला मनुष्य कभी झूठ नहीं बोल सकता। जल की इतनी अधिक प्रतिष्ठा होने का कारण यही है कि, वह सत्यासत्य की परीक्षा करता है। इस भोलेपन को आप कितना भी धो डालें, फिर भी जिस तरह काले लोगों की काली चमडी को साबुन से लाख बार धोने पर भी उसका काला रंग नहीं मिटता, उसी तरह हमारा यह भोलापन भी कभी नहीं मिट सकता।

अब यही देखिए, हम लोगों में स्नान करते समय पुरुषसूक्त का पाठ करने की रूढि चली आयी है। सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। ऐसे देखा जाये तो स्नान की क्रिया से पुरुषसूक्त का क्या संबंध? जिस विराट् पुरुष के हजार हाथ और हजार आंखें हैं, उसका मेरे इस स्नान से क्या संबंध? लेकिन संबंध है, कि तुम जो लोटा-भर जल सिर पर डाल रहे हो, उसमें हजारों बूंदें हैं, जो तुम्हारा मस्तक धो रही हैं, तुम्हें निष्पाप बना रही हैं। मानो तुम्हारे मस्तक पर ईश्वर का आशीर्वाद बरस रहा है। परमेश्वर के सहस्र हाथों से सहस्र धारा ही मानो तुम पर बरस रही हैं। बूंदों के रूप में परमेश्वर ही तुम्हारे सिर के अंदर का मैल धो रहा है। ऐसी दिव्य भावना स्नान में उंडेलो, तो वह स्नान कुछ निराला ही हो जायेगा। उस स्नान में अनंत शक्ति आ जायेगी।

भारत में पानी के विषय में इतनी अधिक श्रद्धा क्यों है? बात यह है कि नदियां परमात्मा की बहती हुई करुणा है, इस तत्त्व का भारत ने दर्शन किया है। नदी के तट पर रहने वाले लोग रोज ही देखते हैं कि, नदी का पानी यहां से सतत् आगे-आगे बहता है और पीछे से नया पानी आता ही रहता है। अर्थात् देते रहने से मिलता रहता है, यह हम देखते हैं। पानी ईश्वर है क्योंकि वह भेदभाव नही जानता। ज्ञानदेव ने कहा

है कि, नदी कभी यह नहीं सोचती कि गाय की ही प्यास बुझायी जाये और क्रूर होने के कारण शेर की प्यास न बुझायी जाये। कारण, नदी ईश्वर की करुणा है और ईश्वर की करुणा सबको समान सुलभ होती है। अतिष्ठन्तीनां अनिवेशनानाम्- पानी कहीं रुकता नहीं, उसका कोई घर-द्वार नहीं। इसीलिए पानी को संन्यासी की उपमा दी गई है।

गंगा को जाना तो है समुद्र के पास, लेकिन अपनी ध्येय सिद्धि के उस कार्य के बीच वह तीर पर स्थित असंख्य वृक्षों को पानी पिलाती हुई जाती है। वैसे ही साधुपुरुष को करना चाहिए। अखंड प्रवाह, परोपकार, करुणा, उदारता, शीतलता ये सारे गुण हमें पानी में दिखायी पड़ते हैं। मनुष्य कितना ही तप्त क्यों न हो, ठंडे जल से स्नान करते ही एकदम शांत हो जाता है।

संत एकनाथ काशी का गंगाजल रामेश्वर के लिए कांवर में ले जा रहे थे। पैठण पहुंचने पर रास्ते में प्यासे गधे को देखकर सारा जल उस पर उंडेल दिया। यह बुद्धि उन्हें किसने दी ? पानी ने ही दी। पानी ही कहता है, तुम उदार बनो। पानी मनुष्य को पुण्यकर्म करने की प्रेरणा देता है।

नदियों का संगम-स्थान भी पवित्र माना गया है, क्योंकि वहां भी भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का संगम हुआ करता है। पहले लोग समझते थे कि, नदी के दूसरे किनारे का प्रदेश दूसरा प्रदेश है, इसलिए अपनी ओर के किनारे को अनुकूल और सामनेवाले किनारे को प्रतिकूल कहते थे। पहले नदियां दुर्लंघ्य होती थीं, लेकिन विज्ञान के कारण नदियां अब जोड़ने का काम करती हैं। पहले प्रशांत महासागर, जपान और अमरीका को अलग करता था, वही आज जोडनेवाला बन गया है। भारत में परस्पर जोड़ने की एक अद्भुत शक्ति है। अपने पूर्वजों द्वारा प्राप्त इस संस्कृति पर हमें अमल करना ही चाहिए।

ऋग्वेद के तीसरे मंडल में तैंतीसवां सूक्त है, जिसका नाम है, 'विश्वामित्र-नदी-संवाद' । दस हजार साल पहले का सूक्त है। विश्वामित्र ऋषि भारतीयों को लेकर नदी (पंजाब की नदियां) पार करना चाहते हैं। नदी में बाढ आयी है इसलिए विश्वामित्र नदी से प्रार्थना करते हैं। और नदी उसका जवाब दे रही है। काव्य के खयाल से वह अद्भुत ही रसमय काव्य है ।

सूक्त में स्तुति से आरंभ होता है - ये मेरी दो माताएं पर्वतों की गोद में से निकलकर बहुत प्यार से दौड़ रही हैं। वैसे पर्वत तो वहां से काफी दूर हैं, लेकिन उसे भान हो रहा है कि ये नदियां पर्वत की गोद में से निकली हैं। आज यह भान नहीं होता है। इसका मतलब यह है कि उस जमाने में नदी जोरों से बहती होगी। वैसे इस जमाने में नहरों के कारण नदी का वह रूप नहीं रहा। मुमकिन है कि बारिश के कारण उस

वक्त नदी में जोशीला पानी आया हो ! और इसीलिए उसे पर्वत का स्मरण हुआ हो! उसके बाद कहा है कि, जैसे दो वत्सल माताएं या दो उम्दा घोड़ियां हिनहिनाती हुईं, उछलती, कूदती, प्यार से अपने बछड़े से मिलने जा रही हों, ऐसे ही ये दो नदियां जा रही हैं। इसमें दौड़ने की रफ्तार बताने के लिए घोड़ी को याद किया और वात्सल्य-भाव बताने के लिए गोमाता को याद किया। नदी को हमेशा गाय की उपमा दी जाती है। इस तरह नदी की स्तुति करके विश्वामित्र जो प्रार्थना करते हैं, वह अद्भुत है। रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः-मेरी सौम्य, मधुर, नम्र वाणी सुनकर तुम रुक जाओ या शांत हो जाओ। तुम सत्य की तरफ दौडी जा रही हो, सत्यगामिनी हो, सत्य की खोज कर रही हो। तुम्हारी सत्य की खोज जारी रहेगी, लेकिन मेरी नम्र वाणी सुनकर एक मुहूर्त के लिए शांत तो हो जाओ। मुहूर्त के मानी हैं 48 मिनट।

इस पर नदी कहती है, हम तो भगवान् की आज्ञा से बहती हैं। जब तक भगवान् दूसरी आज्ञा न दें, हमें बहते ही जाना है। निसर्ग ने हमें जो प्रेरणा दी है, वह कभी रुक नहीं सकती। फिर विश्वामित्र कहते हैं, मैं भारतीयों को लेकर जा रहा हूं, इसलिए तुम जरा झुक जाओ, नमध्वं भवता सुपाराः द्य पहले 'रमध्वं' यानी रुको कहा था। अब वे 'नमध्वं' यानी झुको कहते हैं। हे नदी, तुम झुक जाओ और मेरे लिए 'सुपारा' बनो। तुम्हारा जो प्रवाह बह रहा है, वह भले ही बहने दो। लेकिन मेरी गाडी के अक्ष के नीचे तक झुक जाओ तो मेरी गाड़ी चली जायेगी। फिर नदियां बोल रही हैं कि इंद्र ने हमको जन्म दिया और सवितादेव की प्रेरणा से हम दौड़ी जा रही हैं।

विश्वामित्र कहते हैं कि, इंद्र ने तुमको जन्म दिया, इसलिए हम इंद्र के बडे उपकृत हैं। हम भगवान् इंद्र की स्तुति निरंतर गायेंगे कि, उसने तुम्हें दौड़ने की आज्ञा दी। देवताओ! मैं बहुत दूर से ये गाड़ियां लेकर आया हूं। तब नदियां कहती हैं, जैसे परिपुष्ट माता अपने बच्चे को उठाने के लिए झुक जाती है, वैसे हे ऋषि, मैं तेरे लिए झुक रही हूं। यह एक मिसाल देकर नदी ने फिर कहा कि, "जैसे कन्या पिता की सेवा के लिए झुक जाती है, वैसे ही मैं तेरी सेवा के लिए झुक रही हूं। हे भक्त, तेरा वाक्य हमने सुन लिया है और हम समझ गयी हैं कि तुम बहुत दूर से आये हो, इसलिए हम तेरे लिए झुक जाती हैं। फिर नदी झुक गयी और वे सारे भारतीय पार हो गये। ऐसा इस सूक्त में कहा है।

यहां पर जो दो मिसालें दी गयी हैं, वे परम् रमणीय हैं। अत्यंत स्वाभाविक तौर पर हम नदी को माता कहते हैं, कन्या नहीं कहते और विश्वामित्र ने भी पहले नदी को मां कहा था। नदी ने भी पहली वही बात कही थी। इतने में उसे याद आया कि यह तो एक महान ज्ञानी ऋषि है, जिसके पास चौतन्यमय ज्ञान पड़ा है। हम तो उसकी कन्याएं हैं और वह हमारा पिता है। ये जो दो मिसालें दी गयी हैं, उन पर मैं कभी-कभी सोचता हूं तो यह भी लगता है कि मुमकिन है कि इसमें जो सबसे बडी नदी

सतलज है, वह अपने को माता और विश्वामित्र को पुत्र कहती होगी और छोटी ब्यास अपने को कन्या और उसे पिता समझती होगी। लेकिन मुख्य बात यह है कि उन्होंने अत्यंत प्रेम दिखाया और उसके बाद परम आदर दिखाया। अब इस प्रकार मानव की कोई सत्ता सृष्टि पर चल सकती है, यह तो हम विज्ञान के खयाल से नहीं मान सकते। फिर भी हमारे यहां रिवाज है कि कहीं नदी में तैरने का मौका आये तो यह नदी सूक्त बोला जाता है। ये तो मामूली नदियां हैं। लेकिन संसार-नदी, माया-नदी बहुत जोरों से बह रही है और हमें उस नदी के उस पार जाना मुश्किल मालूम हो रहा है।

भवनदी पार करने के लिए अगर विश्वामित्र के समान नम्र और प्रयत्नशील बन जायें तो हम भी संसार-नदी पार कर सकते हैं, ऐसी श्रद्धा इस 'विश्वामित्र-नदी-संवाद' से मुझे मिलती है। पहले माना गया था कि गंगा किनारे रहने से मुक्ति लाभ होता है। उस समय सब बस्ती उत्तर हिंदुस्तान में थी इसलिए गंगा मध्य में थी। लेकिन फिर लोग दक्षिण में फैल गये, तो गंगा को मध्य में मानना संभव नहीं रहा। फिर नर्मदा की श्रेष्ठता मानी गयी। कलौ नर्मदा स्मृता। काशी में गंगा के किनारे मुक्ति मिलती है, लेकिन वह मरने के बाद मिलती है। परंतु नर्मदा के किनारे पर जीवन में (जीते जी) ही मुक्ति मिलती है, ऐसी कल्पना आयी। शंकराचार्य के गुरु नर्मदा तट पर ओंकारेश्वर के पास रहते थे। शंकराचार्य वहां गुरु के आश्रम में रहे। गुरुकृपा से उन्हें आत्मदर्शन हुआ और नर्मदा की कृपा से विद्या प्राप्त हुई। उन्होंने नर्मदा स्तोत्र लिखा है, उसमें एक पंक्ति है गतं तदैव मे भयं त्वदंबु वीक्षितं यदा जब मैंने तुम्हारा पानी देखा, तब मेरा भय चला गया। इसलिए नर्मदा की परिक्रमा करने की पद्धति रूढ हो गयी। बाद में भारत की एकता के हेतु नर्मदा को गंगा के समान महत्त्व दिया गया। जिस काल में हवाई जहाज, रेल्वे वगैरह यातायात के कोई साधन नहीं थे, उस काल में ऐसी विशाल व्यापक दृष्टि थी। जब इधर से उधर जाना भी बहुत कठिन बात थी, तब हमारे पूर्वजों ने भारत की एकता की योजना कर, धार्मिक बुद्धि से उस पर अमल किया। यह देखकर उनकी व्यापक दृष्टि और विशाल दर्शन के लिए आश्चर्य होता है। उन्होंने इस एकता का निर्माण नदियों के द्वारा किया।

नदी के किनारे रहनेवाले लोगों में एक प्रकार की उदारता और प्रेम दीख पडता है। नदी का पानी पीते समय उस पानी के साथ ईश्वर की प्रेमल करुणा पीने को मिलती है। इससे उनके अंतःकरण उदार बन जाते हैं - बनने भी चाहिएं। हमारी इस नदी को ऊपरवाले गांवों ने भेजा है। इसी प्रकार हमें भी इसी परंपरा को चालू रखते हुए इसे नीचेवाले गांवों को भेज देना चाहिए, इस प्रकार की कृतज्ञ और उपकार-बुद्धि इन लोगों में उत्पन्न होती रहनी चाहिए।

नदी किनारेवाले लोगों में एक प्रकार का सात्त्विक अभिमान होता है। जिस प्रकार मुझे अपने देश का अभिमान होता है, उसी प्रकार नदी का भी अभिमान होता है।

परंतु देश का अभिमान एक बार मन को संकुचित बना सकता है, क्योंकि देश स्थावर और सीमाबद्ध है। परंतु नदी तो जंगम और प्रवाहशील है। इसलिए उसका अभिमान भी जंगम, बहता हुआ होना चाहिए। इससे अंतःकरण व्यापक बनना चाहिए। सेवा को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करना और उदारता के साथ दूसरों की सेवा करना, यह नदी-तीर के लोगों का स्वभाव होना चाहिए।

समुद्र सभी प्रकार की नदियों को स्वीकार करता है। हमारी भी ऐसी ही वृत्ति होनी चाहिए। समुद्र गंदे नाले को भी स्वीकारने से इन्कार नहीं करता। वह यह नहीं कहता कि मुझमें शुद्ध नदी का पानी ही आये, गंदे नाले का पानी न आये। समुद्र गंदे नाले को भी मौका देता है, वह उसे अपना खारा रूप देता है। यानी अपना रूप देने के लिए वह उसको स्वीकार करता है। वह कहता है कि तू आयेगा तो मेरे रूप में क्या फरक पड़ने वाला है? मैं तुझे अपना ही रूप दूंगा। अहिंसा में ऐसी हिम्मत होती है।

नदियां कितनी भी उमड-उमडकर और बढ़- चढकर समुद्र में आ गिरें, तो भी समुद्र शांत ही रहता है। उनके सूख जाने पर भी सूखता या घटता नहीं। अपनी गंभीरता और शांति को छोडकर वह यदि नदियों के पीछे दौड़ने लगे, तो उसे हम क्या कहेंगे? इतना प्रचंड शक्तिशाली होने पर भी, अपने चरम उत्कर्ष के समय भी अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। इसलिए उसकी शक्ति सदैव ज्यों कि त्यों रही है।

ज्ञानदेव ने भक्त को समुद्र की उपमा दी है। समुद्र में मछलियां संचार करती हैं, वे कितनी भी हलचल करें, समुद्र उससे ऊबता नहीं। और समुद्र हमेशा खलबली मचाता रहता है, लेकिन मछलियां उससे डरती नहीं। भक्त भी ऐसा ही होता है; न वह किसी से द्वेष करता है, न उससे कोई द्वेष करता है। वाल्मीकि ने रामचंद्र को हिमालय जैसा स्थिर और समुद्र जैसा गंभीर कहा है। इसमें भारत के उत्तर-दक्षिण दो सिरों को इकट्ठा किया गया है। उत्तर में हिमालय है और दक्षिण में सागर। मुझे लगता है दक्षिण की संस्कृति में गांभीर्य अधिक है, वह भाव-प्रधान है। उत्तर की संस्कृति में स्थिरता अधिक है? वह स्थैर्य-प्रधान और ज्ञान-प्रधान है।

मनुष्य किनारे पर खडा रहे और समुद्र की ओर देखे, तो उसकी गंभीर आवाज, रूप आदि से उसे शांति मिलेगी। मैंने सबसे व्यापक समुद्र केरल में देखा। देखते ही चित्त एकदम प्रसन्न हो गया। मान लीजिए, उसी समुद्र में मैं डूब जाता, तो क्या प्रसन्नता महसूस होती ? मैं समुद्र के अंदर ही गोता खाता रहूं और एक लहर इधर से आकर नाक में जाये, दूसरी उधर से आकर कान में जाये, इसमें क्या मजा है ? इसलिए यदि कोई समुद्र में उतरना चाहता है, तो हम यही कहेंगे कि नाव लेकर जाओ। यही गीता का कर्मयोग है। किनारे पर खडे होकर देखना संन्यास है। नाव लेकर जाना कर्मयोग

है। दोनों का मजा एक ही है और वह इसी में है कि दोनों में मनुष्य डूबता नहीं और साक्षी बनकर समुद्र को देखता है।

स नो वृष्टिं दिवस्परि 3/सूर्य-किरण समुद्र के पानी का शोषण करती हैं, उससे मेघ बनकर वर्षा होती है। मेघ अपने स्वभाव से बरसता है। फिर जिसको जो लेना है सो लेगा। उसका अपना धर्म है बरसना। ब्रह्मसूत्र में भगवान् की तुलना पर्जन्य से की गई है। ईश्वर बरसात की भांति तटस्थ है। जो जैसा बीज होना चाहे, वैसा होने में उसे सहायक होता है। भगवान् कहते हैं कि मैं अपनी चीज समाज पर लादता नहीं हूं। मनुष्य की इच्छानुसार उसकी मदद करता हूं।

रिमझिम बारिश हो रही है और भगवान् अपने हजारों हाथों से हमारी देह को छू रहा है। यही पवित्र बूंदे हैं, जिनसे भूमि सुफल होती है, जिससे फसल होती है और हमारा जीवन चलता है। यह बारिश हमें समता की तालीम देती है। यह बारिश गरीब के खेत पर भी होती है और अमीर के खेत पर भी। पहाड पर भी होती है, पत्थर पर भी। मिट्टी पर भी होती है और समुद्र पर भी। वह भेदभाव न करते हुए सबको समान भाव से प्यार करती है। यह भगवान् की कृपा का लक्षण है। भगवान् सबको समान भाव से प्यार करते हैं।

पदयात्रा में जब मेघ बरसते थे, तब हम एक वैदिक मंत्र का बहुत बार पाठ करते थे। उस मंत्र में ऋषि भगवान् से प्रार्थना करता है कि हम पर स्वर्ग से खूब वृष्टि हो, हमारी गति में कोई भी रुकावट न आये और हमारी इच्छाशक्ति सहस्रगुणित हो। बडा सुंदर मंत्र है-

स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम् स नः सहस्रिणीरिषः

यह मन्त्र हम खूब जोर से चिल्ला कर बोलते थे। स्वर्ग से जो बारिश बरसती है, वह भगवान् की हम पर असीम कृपा है। चाहे उसके परिणामस्वरूप जोरों से बाढ ही क्यों न आ जाये और अनर्थ ही क्यों न हो जाये। कुछ भी हो, हम बारिश का निरंतर स्वागत-सत्कार करते हैं।

2.3 पृथ्वी का स्वरुप एंव महत्त्व

माता भूमि पुत्रो अहं पृथिव्याः मैं पृथ्वी का पुत्र हूं और पृथ्वी मेरी माता है। ऐसा यह मातृस्थान, अधिष्ठान हमें मिला है। पृथ्वी के लिए संस्कृत में अनेक शब्द हैं। 'पृथ्वी' यानी फैली हुई। 'धरा' यानी धारण करने वाली । 'भूमि' यानी तरह-तरह के पदार्थों को जन्म देने वाली । 'गुर्वी' यानी भारी वजनदार। 'उर्वी' यानी विशाल। 'क्षमा' यानी सहन करने वाली। यह सारी पृथ्वी अहिंसा का उत्तम आदर्श पेश करती है। हम रोज

पृथ्वी को ताडन करते हैं, खोदते हैं, पीडा देते हैं। परिणामस्वरूप पृथ्वी न सिर्फ क्षमा करती है, बल्कि पोषण ही देती है। वह 'पूषा' है। पूषा यानी पोषण करने वाली, अहिंसा के लिए आदर्श-मूर्ति, ध्यानमूर्ति पृथ्वी है। इस तरह एक-एक शब्द एक-एक गुणवाचक है। हर एक शब्द के साथ उसका एक-एक गुण ध्यान में आता है। परमेश्वर के कौन-कौन से गुण पृथ्वी में प्रकट हुए हैं? उन गुणों को देखकर एक-एक नाम दिये हैं। उसे हम ग्रहण करें।

वेद में एक मंत्र है, 'पृथ्वी हमारे लिए सुखकारक बने, निष्कंटक बने, निःस्वप्न निद्रा दिलानेवाली बने और हमारे विशाल मंदिर की भी रक्षा करे।' इसमें ऋषि अपने छोटे घर के लिए रक्षण नहीं मांग रहा है, वह अपने घर को ही विशाल मान रहा है। खुले आकाश के नीचे बैठकर वह पृथ्वी की प्रार्थना कर रहा है-विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे - हे पृथ्वीमाता! हमारे पादस्पर्श को क्षमा करे । इसमें भी पूरी धरती की वंदना है। वंदना उस धरती की नहीं, जिसके पालनकर्ता अकबर, श्रीहर्ष या नेपोलियन थे, बल्कि उस धरती की है, जिसके पालक विष्णु हैं।

वेद में कहीं भी भारत की स्तुति नहीं है, बल्कि पृथ्वी की ही स्तुति है। नानाधर्माणां पृथिवीं विवाचसम्। इसका भावार्थ है 'हे पृथ्वीमाता! तू अनेक धर्मों से संपन्न है, अनेक भावों से संपन्न है, तुझमें भिन्न-भिन्न वाणियां हैं, ऐसी तू हम लोगों की माता है, हम पर प्रसन्न हो ।' नानाधर्माणाम् यानी जिसमें अनेक धर्म मौजूद हैं और विवाचसम् यानी जहां विविध वाणियां हैं। नानाधर्माणाम् कहने से हिंदू-मुस्लिम इत्यादि आज के अलग-अलग धर्मों की भावना नहीं है, लेकिन उस समय भिन्न- भिन्न प्रवृत्तियां चलती होंगी, अनेक प्रकृति के लोग होंगे, उनकी बात है। और विवाचसम् यानी विविध भाषाएं बोलने वाले लोग होंगे। यानी इस वैदिक भूमि में वेदकाल से ही अनेक धर्मों का समन्वय किया गया है। विचार में तनिक भी संकुचितता नहीं है। यहां के विचारवान और ज्ञानी लोगों ने कभी आप पर भेद नहीं रखा। यह सारी भूमि मेरी माता है और मैं उस भूमि का पुत्र हूं। बडा प्राणवान वाक्य है। भूमि हमारी माता है और हम सब पुत्रों को उसकी सेवा करने का मौका मिलना चाहिए। यह विचार सब धर्मों का है और साथ-साथ वेद का भी है।

वेद का और एक शब्द है, विश्वमानुषः। बल्कि, वसुधैव कुटुंबकम् कहा। कुटुंब नहीं, 'कुटुंबकम' । 'कम्' प्रत्यय लगाने से उसका अर्थ छोटा कुटुंब हुआ। यह सारी वसुधा एक छोटा कुटुंब है। सुझा यह रहे हैं कि, अनंत तारिकाएं हैं, अनेक ग्रह हैं, वैसे ही अनेक वसुधाएं हैं। इसलिए अपनी इस एक वसुधा को एक कर लेते हैं, तो यह नहीं माना जायेगा कि, बहुत बडा काम कर लिया। वेदांत कह रहा है कि, इस वसुधा को एक करेंगे तो वह एक छोटा कुटुंब होगा।

आज मानव के लिए सबसे खतरनाक कोई चीज है, तो वह है, उसका जमीन से उखड़ना । जैसे हर एक पेड़ का मूल जमीन में होता है, वैसे ही हर एक मनुष्य का संबंध जमीन के साथ होना चाहिए। मनुष्य को खेती से अलग करना माने पेड को जमीन से अलग करना ही है। हमने अखबार में पढ़ा कि, अमरीका में हर दस मनुष्यों में से एक मनुष्य दिमागी बीमारी से पीडित है। इसका कारण यही है कि, वहां मनुष्य जमीन से उखड़ता जा रहा है। मेरा यह विचार है कि, मनुष्य का जीवन जितना पूर्ण होगा, उतना ही वह सुखी होगा। भूमिसेवा पूर्ण जीवन का एक अनिवार्य अंग है। खेती से खुली हवा और सूर्यप्रकाश मिलता है, जिससे आरोग्यलाभ और मानसिक आनंद प्राप्त होता है, बुद्धि तीव्र होती है। अलावा, भक्ति का भी साधन है। जितने लोगों को पूर्ण जीवन का मौका मिलेगा, समाज में उतना ही समाधान और शांति रहेगी।

मेरा तो स्पष्ट मत है कि प्रकृति से जितने ही दूर हम होते जायेंगे, उतने ही शारीरिक दृष्टि से पंगु होते जायेंगे। एक प्राकृतिक चिकित्सा-विशेषज्ञ का मत है कि, बांस के फट्टों से बने मकान अधिक अच्छे हैं। क्योंकि उनके छिद्रों से ताजी हवा पूरे घर में आती और फैलती रहती है। बंबई, न्यूयार्क, लंदन जैसे शहरों में लोगों को ताजी हवा तक नहीं मिल पाती। मकान जितना ही हवादार होगा, उसका किराया उतना ही अधिक होगा। हम यहां जिस ताजी हवा का आनंद उठा रहे हैं, वह भी शहरों में महंगे दामों पर मिलती है। और यह इसलिए कि धरती से, प्रकृति से हम बिलग हो गये हैं। यह बिलगाव दूर कर हमें धरती से नाता जोडना चाहिए, धरती पर ही काम करना चाहिए। यही आदर्श हमें लाभ पहुंचा सकता है। आज डॉक्टर भी बढते जा रहे हैं और रोग भी बढते जा रहे हैं। होना तो यह चाहिए कि रोग घटें तो डॉक्टर भी घटें। साफ बात है कि, लोग प्रकृति से बिलग होते जा रहे हैं। प्रकृति हमारी माता है। उससे संपर्क जितना घटेगा, उतना ही यह शरीर विकृत होगा।

मैंने अपने जीवन में कृषि की उपासना की है। उस अनुभव के आधार पर मैं दृढतापूर्वक कह सकता हूं कि, जीने का शुद्धतम साधन कृषि ही है। व्यापार में हम मुनाफाखोरी करके समाज का अहित करते हैं। नौकरी तो आत्मा की तेजस्विता को ही नष्ट करने वाली है। इसलिए इन दोनों का सहारा छोड़कर कृषि को आजीविका का साधन बनाना चाहिए। पर देश में उद्योग के बिना हमारा जीवन परिपूर्ण नहीं बनेगा। इसलिए कुछ लोग ग्रामोद्योग के आधार पर अपना जीवन चलायेंगे। पर उनके लिए भी थोडी देर भूमाता की सेवा आवश्यक है। क्योंकि नीति का अधिष्ठान खेती है।

इसलिए हमें गांव की रचना ऐसी करनी होगी, जिससे हरएक के पास कम से कम चौथाई एकड जमीन रहे। हर एक को दिन में दो-तीन घंटे खेत में काम करने का

मौका मिलना चाहिए। फिर बचे हुए समय में वह दूसरे उद्योग करे। खेती बुनियादी सेवा है। खेत एक सुंदर उपासना-मंदिर, एक उत्तम ज्ञान मंदिर है।

मिट्टी का भी एक प्रकार का रंग होता है। रंग और मैल में फरक है। मैल में जंतु होते हैं, पसीना होता है, उसकी बदबू आती है। मृत्तिका तो पुण्यगंध होती है। गीता में कहा है पुण्यो गंधः पृथिव्यां च। मिट्टी का ही शरीर है और मिट्टी में ही मिलनेवाला है। उसी मिट्टी का रंग किसान के कपडे पर होता है। मिट्टी लगने से कपडे खराब नहीं होते। मिट्टी का रंग गंदा नहीं होता, वह पवित्र है। शास्त्र में कहा है, मृज्जलाभ्यां बाह्यशुद्धिः बाह्य शुद्धि पानी और मिट्टी से होती है और सत्यसंयमाभ्यां अंतः शुद्धिः- सत्य और संयम से अंतःशुद्धि होती है। इसलिए शरीर पर मिट्टी लगे तो अच्छा है। ऐसा होगा तो नौकरों की मुक्ति हो जायेगी और सच्चा स्वराज्य आयेगा।

कहते हैं कि, आबादी बढी तो जमीन पर भार बढेगा। पर हमारा मानना है कि पृथ्वी को पाप का भार होता है, संख्या का नहीं। हम इसको 'एक्सियमँटिक ट्रुथ' (स्वयंसिद्ध सत्य) मानते हैं। मिट्टी में से जो चीज पैदा हुई, उसको धारण करने के लिए मिट्टी समर्थ है, बशर्ते कि पुण्य से रहें और उससे जितना लिया, उतना उसको वापस पहुंचायें । हड्डी, मलमूत्र, सूखे पत्ते, कचरा, सब उसको वापस देना चाहिए। इस प्रकार उसकी संपत्ति उसको वापस दे दें और संयम से रहें। मिट्टी सबको पोषण देगी, पोषण करेगी, अगर खेती की ओर ध्यान दिया जाये ।

हमें विश्वास होता है कि कृषि अपनी माता है, उसकी सेवा करेंगे, तो मातृसेवा से संतान पवित्र होगी। वेद में मंत्र है विप्रासो न मन्मभिः स्वाध्यः । क्षतीनां न मर्या अरेपसः -ब्राह्मण होते हैं, वे अपने ध्यानयुक्त बनते हैं और भगवान के प्यारे होते हैं। और खेती में काम करते हैं, वे मजदूर हमेशा निर्दोष होते हैं। उपासनापूर्वक, कुशलतापूर्वक, विज्ञान की मदद लेकर खेती की, तो खेती से ब्रह्मचर्य की भी प्रेरणा मिलेगी। श्रमनिष्ठा से मनुष्य को पर्याप्त आनंद प्राप्त होता है। पाया गया है कि, जिनके जीवन में दुःख ज्यादा और आनंद कम होता है, वहां संतति ज्यादा होती है। जिनके पास आनंद के लिए साधन हैं, उनको आनंद के लिए वासनामय नहीं होना पड़ता। खेती में शरीरश्रम से आनंद प्राप्त होता है, क्योंकि सृष्टि से संपर्क आता है। निसर्ग से संपर्क न रहा तो राष्ट्र क्षीण होगा। निसर्ग- संपर्क से चित्तशुद्धि होती है। चित्त उदार बनता है।

एक बार हम घूमने के लिए निकले। रास्ते में खेत थे। सुबह का समय था। फसल की रक्षा के लिए मचान बनी थी। उस पर किसान बैठा था। मैंने उससे कहा, 'ये पक्षी फसल खा रहे हैं। तुम्हारा उधर ध्यान है या नहीं?' वह बोला, भाई, यह रामप्रहर है। अभी तो भगवान सूर्यनारायण आ रहे हैं। थोडा सा खायेंगे, उसके बाद मैं उन्हें

उडाऊंगा। उनका भी तो हक है। यह है भारतीय चित्त ! गांववालों का उदार दिल ! उन्हीं पर भारत का सारा आधार है। खाने से पहले तुलसी के पौधे को पानी पिलाना चाहिए। और, गाय, कुत्ते के लिए खाना अलग निकालकर रखना चाहिए, यह भारतीय संस्कृति का विचार है। उसमें समाज के लिए कुछ न कुछ देने की बात है।

हमारी भावना है कि यह पृथ्वी परमेश्वर की बैठक है। मानवता को इस पृथ्वी के अलावा दूसरा कोई भी आधार नहीं है। इसलिए हमारी बिलकुल वैश्वानर वृत्ति होनी चाहिए। हमें विश्वमय मनुष्य बनना है। विज्ञानयुग का यह आवाहन है और आत्मज्ञान का यह आश्वासन है। विज्ञान और आत्मज्ञान, दोनों संकुचितता पर दोनों ओर से प्रहार कर रहे हैं। हम यह पहचान लें और विशाल दृष्टि कायम रखकर काम करें। फिर भले ही अपने घर का काम करें, या अपनी गली की सफाई करें या एकाध स्टेट भी चला लें, तो भी हर्ज नहीं। तभी हम टिक पायेंगे। हम ऐसी अनुभूति आने दें कि पृथ्वी पर जो भी मानव हैं वह मेरा ही रूप है और मैं उसका रूप हूं। मनुष्य को देखते ही महसूस होना चाहिए कि मेरा आत्मा ही मुझे मिल रहा है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि, पृथ्वी का कम से कम दो सौ करोड़ साल पहले जन्म हुआ। और दो सौ करोड साल वह टिकेगी। फिर खतम होगी। उसके टुकडे टुकडे हो जायेंगे। आकाश में टुकडे घूमेंगे, फिर उनकी हवा बन जायेगी। सूर्य दिन-ब-दिन ठंडा हो रहा है। होते-होते इतना ठंडा होगा, जितनी पृथ्वी है। फिर उस पर प्राणी, मानव भी हो सकते हैं। फिर वह और ठंडा होते-होते पृथ्वी जैसा खतम होगा। दुनिया में एक भी पदार्थ मिला नहीं, जो बना ही बना रहा है। जो बना सो नष्ट होता ही है। ऐसे देखा जाये, तो यह वर्तुलाकार है। वर्तुल का आदि कहां है और अंत कहा है, कहना मुश्किल है। इसलिए समझना चाहिए कि, जो अनंत परमेश्वर है, उसको आदि नहीं, वह अनादि है। उसी की लीला चल रही है। भारतीय वेदों और वैज्ञानिकों के मातानुसार 450 अरब वर्ष पूर्व जल ने पृथ्वी की निर्माण प्रक्रिया शुरू की थी। पृथ्वी का आकार बदलता रहा है लेकिन पृथ्वी का निर्माण शुरू होने के बाद, इस पर जीवन आया। जीवन की प्रक्रिया पानी से आरंभ होकर, मिट्टी जीवन को निर्मित करती है और हवा जीवन को चलाने में योगदान देती है, सूरज की ऊर्जा उसको बनाकर सदैव जीवित रखते हुए मदद करती है। पृथ्वी निर्माण की प्रक्रिया है। केवल पृथ्वी दिवस मनाने से पूरा नहीं होगा बल्कि हमें अपने पूरे भगवान (भ - भूमि, ग - गगन, व - वायु, अ- अग्नि, न - नीर)को समझना होगा। इनको समझकर, इनके साथ भगवान जैसा सम्मान व्यवहार और सदाचार करेंगे, तब हम 21वीं शताब्दी में भी पृथ्वी दिवस मनाने का औचित्य पूरा कर सकेंगे। पृथ्वी दिवस केवल एक दिन मनाने का उत्सव नहीं है, पृथ्वी दिवस तो प्रतिक्षण मनाने का दिवस है। पृथ्वी दिवस पर हमें पृथ्वी की निर्माण प्रक्रिया और हमारे जीवन के निर्माण की प्रक्रिया दोनों के रिश्तों को समझकर, उनके साथ सम्मान से जीने और प्रेम की प्रक्रिया दोनों के बीच बनाए

रखना है। यह मानवीय कर्तव्य है, जब मानव उसे कर्तव्य को पूरा करेगा तब हम विश्व पृथ्वी दिवस मनाने का सपना साकार कर सकेंगे।

मैं जानता हूं कि, संयुक्त राष्ट्र संघ ऐसे दिवस घोषित करता ही रहता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने बहुत फैशनेबल तरीके से यह विश्व दिवस मनाने की प्रक्रिया शुरू की है; पर हमें एक इंसान के नाते संयुक्त राष्ट्र से भी और गहरा, चिंतन मनन करके इस दिवस को मानना है। हमारे मन में वास्तविक भगवान अपना कर शुरू करेंगे तो हमारा पृथ्वी दिवस मनाने का सपना साकार होगा।

2.4 पृथ्वी निर्माण में अग्नि की भूमिका (ऋग्वेद के अनुसार)

जब पृथ्वी की गहराई में बैठा हुआ पिघला हुआ लावा (मैग्मा) पृथ्वी की सतह की ओर बढ़ता है और दरारों या बड़े ट्यूबलर मार्ग से बाहर निकलता है, तो उसे ज्वालामुखी विस्फोट कहा जाता है। इस प्रक्रिया के दौरान विस्फोटक गैसें, चट्टानी टुकड़े और राख भी बाहर निकलती हैं। सामान्य ज्वालामुखी प्रक्रिया में विस्फोट स्थल पर लावा, राख, पत्थर आदि जमा होने से एक ऊंचा शंकु बनता है।

इस शंकु के शीर्ष पर एक कटोरे के आकार का गड्ढा जिसे क्रेटर कहा जाता है, जो क्रेटर की परिधि में काटे गए एक चैनल के माध्यम से बनता है और एक बड़े क्षेत्र को कवर करते हुए लंबी दूरी तक फैलता है। जब लावा ठंडा होकर जम जाता है तो इस क्षेत्र पर लावा की परतें बन जाती हैं। गैसें. क्रेटर से निकलने वाली राख और आग में जबरदस्त ऊर्जा होती है जो उन्हें एक स्तंभ बनाते हुए उच्च ऊंचाई तक ले जाती है। क्षेत्र में तेज़ हवाएँ इस राख को लंबी दूरी तक ले जाती हैं, जहाँ वे विस्फोट से दूर के स्थानों पर जमा हो जाती हैं।

जैसे ही ज्वालामुखी विस्फोट कम होता है, क्रेटर के पास लावा जम जाता है और द्रव्यमान प्रमुखता से खड़ा हो जाता है। आमतौर पर दो प्रकार की संरचनाएं या पिंड अपनी जगह पर छोड़ दिए जाते हैं - एक ऊर्ध्वाधर प्लग प्रकार, और एक गुंबद प्रकार - इन्हें तब छोड़ दिया जाता है जब शंकु में आसपास की कमजोर सामग्री मौसम और अन्य टूट-फूट के कारण हटा दी जाती है। इन रूपों/निकायों का आकार विस्फोट की भयावहता पर निर्भर करता है। गुंबद पहाड़ी जितना बड़ा हो सकता है। कभी-कभी क्रेटर तक आने वाले ऊर्ध्वाधर पाइपों में शाखाएँ विकसित हो जाती हैं और लावा मुख्य शंकु के ढलान में आउटलेट से निकलकर सहायक शंकु और क्रेटर बनाता है।

जब ठोस लावा परतों के क्षेत्र में ताजा विस्फोट होता है, तो नया लावा पुराने द्रव्यमान के जोड़ों और दरारों को भर देता है, जिससे 'डाइक' (ऊर्ध्वाधर दरारें और जोड़ भरे हुए) और 'सिल्स' (क्षैतिज दरारें और जोड़ भरे हुए) बनते हैं। ये दोनों सामान्यतः भूमिगत संरचनाएँ हैं। इस परत पर प्लग या गुंबद नहीं बनते हैं। उनमें से कुछ में कीमती धातुएँ और पत्थर जैसी खनिज संपदा हो सकती है।

वास्तव में, ज्वालामुखी विस्फोट सांसारिक आग की सबसे भयानक और अति-प्रमुख अभिव्यक्तियों में से एक है, जो स्वयं शिव की अभिव्यक्ति है। यह वनस्पतियों और जीवों के पूर्ण विनाश का कारण बनता है और उस क्षेत्र की सभी संपत्तियों को नष्ट कर देता है जहां लावा फैलता है। इसके अलावा उन क्षेत्रों में भी नुकसान होता है जहां ज्वालामुखी की राख जमा हो जाती है, लेकिन प्रकृति के तरीके अजीब हैं। कुछ वर्षों के बाद, वही क्षेत्र बदल जाते हैं। जीवन से भरपूर उपजाऊ, रहने योग्य भूमि की ओर। आधुनिक समय में भारत में अधिक सक्रिय ज्वालामुखी नहीं हैं। लेकिन एक समय में वे यहां मौजूद थे। वस्तुतः भारत की अधिकांश भूमि का निर्माण ऐसे ही ज्वालामुखियों से हुआ है।

ऋग्वेद **में ज्वालामुखी विस्फोटों के बारे में श्लोकः**

ऋग्वेद में अग्नि के कुछ वर्णन ज्वालामुखी विस्फोटों से मिलते-जुलते हैं। ये मंडल 1, 3, 4, 5, 6 और 8 में हैं। निम्नलिखित दिए गए पाठ मंडल एवं सूक्तों के अनुसार क्रम में नहीं हैं-बल्कि वर्णनाधीन विषयों के अनुसार हैं। ये विषय हैं-विस्फोट का वर्णन, खनिज संपदा का संकेत, उपजाऊ भूमि का निर्माण, महासागरों में अग्नि, अग्नि की प्रार्थना, विस्फोट स्थलों, उनके केंद्रों की खोज आदि।

विस्फोट का विवरण

महान् (लाभों का) स्नानकर्ता इन दोनों संसारों में व्याप्त है; क्षयकारी और मनमोहक, वह (हमेशा) मौजूद रहता है, सुरक्षा प्रदान करता हैः वह अपना पैर पृथ्वी के शिखर पर रखता है, और उसकी दीप्तिमान (लपटें) थन (आकाश के) को चाटती हैं। स्वर्ग और पृथ्वी में व्याप्त अग्नि उनका रक्षक है। यह सर्वशक्तिमान्, महान् और सदैव युवा अग्नि पृथ्वी की वेदी पर अपने पैरों के साथ मजबूती से खड़ा है। उसकी चमकदार लपटें आसमान तक पहुँचती हैं।

उक्षा महाँ अभि ववक्ष एने अजरस्तथावितऊतिर्ऋष्वः।
उर्व्याः पदो नि दधाति सनौं रिहान्त्युधों अरुषासों अस्यः।1-146-2।

ईंधन द्वारा प्रशंसित और (पोषित), शक्तिशाली अग्नि, पृथ्वी की नाभि (वेदी) पर स्थित, आकाश के रूप में, चमक गई हैः मित्रवत और मनमोहक अग्नि जो मध्य आकाश में सांस लेती है , दूत (देवताओं के), उन्हें बलिदान के लिए ले आओ।

संदेश देने के कर्तव्य में पारंगत मातरिश्वासन अग्नि भव। सभी देवताओं को यज्ञ में ले चलो। पृथ्वी के केंद्र से उत्पन्न होने वाली यह अग्नि समिधाओं द्वारा प्रज्ज्वलित और अग्नि की संपूर्ण चमक में आकाश तक पहुँचती है।

उदुश्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद्वर्ममन्दिवो अधि नाभा पृथिव्याः।
मित्रो अग्निरीड्यो मातुरिश्वा दूतो वंक्षद्यजथाय देवान्:3-5-9।

हम वैश्वानरा के लिए (लाभों की) वर्षा करने वाले अग्नि को प्रसन्न होकर (उचित प्रसाद) कैसे प्रस्तुत कर सकते हैं, वह, जो महान चमक के साथ उज्ज्वल है, एक स्तंभ के रूप में, अपने संपूर्ण विशाल और असहनीय (थोक) के साथ स्वर्ग को बनाए रखता है। यह वैश्वानर अग्नि स्वर्ग का समर्थन करती है, जैसे एक इमारत का समर्थन करने वाला एक मजबूत स्तंभ। यह अग्नि अत्यंत तेजस्वी है और इसका विशाल शरीर तथा पेट है। हमें उसे अपना प्रसाद कैसे देना चाहिए?

ऋषि- वामदेव गौतम। देवता- वैश्वानर अग्नि। छनद- त्रिष्टुप ।
वैश्वानराय मिळ्हुर्षे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद्वा: ।
अनूनेन बृहता वक्षथेनोप स्तभायदुपमिन्न रोधः 4-5-1 ।

(आहुति देने वालों ने) इस (अग्नि) में (अनुष्ठान के), और घी के दो हिस्से रखे हैं जो (यज्ञ की) दो आंखें हैं; तब स्वर्ग से अमर लोग आते हैं, और आपकी उज्ज्वल लपटें, अग्नि, बहती हुई नदियों की तरह सभी दिशाओं में फैल जाती हैं, और देवता इसे महसूस करते हैं (और आनन्दित होते हैं)।
हे अग्नि, दिव्य अंतर्दृष्टि वाले अमर देवताओं ने तुम्हें तेज और तेज प्रदान किया है। उन्होंने तुम्हारी प्रचण्ड ज्वालाओं को नदियों के प्रवाह के समान नीचे गिरते हुए देखा।

अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन्दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन्।
अध क्षरण्ति सिन्धन्वो न सृष्टाः प्रा नीचींरग्ने अरुषीरजान्नः।1-72-10।

अग्नि, जिसकी सदैव स्तुति की जानी चाहिए, भोजन देने वाला, (लाभों की वर्षा करने वाला), तुरंत (हमारे आह्वान पर), पृथ्वी (वेदी) के निकट आता है, जोरदार, और तेज़ आवाज़ वालाः तेज़ और दिव्य (प्रशंसा से उत्तेजित अग्नि), अपनी लपटों से स्वयं को सौ गुना प्रकट करता है; ऊँचे स्थान पर निवास करने वाला, अग्नि पवित्र संस्कारों में (शीघ्र आ जाता है) ।
अग्नि केवल एक दिन में ही पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरी कर लेता है। सर्वव्यापी अग्नि उच्च गड़गड़ाहट ध्वनि के साथ है। पौरुष शक्ति से परिपूर्ण अग्नि वीर्य की वर्षा करते

समय भयंकर ध्वनि करती है। हजारों आँखों से संसार को देखने वाली देदीप्यमान अग्नि जंगलों की ओर भागती है और अंत में निकट और सुदूर पर्वत शिखरों पर विश्राम करती है।

एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद्दधद्रेतः कनिक्रदत्।
शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः।
सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ॥1-128-3॥

इसके बाद वे (अग्नि की लपटें) सभी दिशाओं में एक साथ फैलती हैं, निराशा को दूर करती हैं, और अंधेरे के रास्ते पर महान प्रकाश फैलाती हैं, तब वह (अग्नि) पूरी पृथ्वी को बार-बार रोशन करती है, और हांफते हुए और जोर से गर्जना करते हुए आगे बढ़ती है।
जलती हुई जिह्वाओं से पृथ्वी को चराता हुआ फुफकारता हुआ अग्नि गर्जना करता है "ब्रिघु ब्रिघु उसी समय अंधेरे को दूर करने वाले काले रंग के चमचमाते अंगारक पिंड हर जगह बिखरे हुए हैं।

अदस्य ते ध्वसयन्तो वृथे रते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः।
यत् सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशादभिश्वसन् स्तनयन्नति नानदत्॥1-140-5॥

अब छिपा हुआ है, अब प्रदर्शित हो रहा है, वह (ईंधन पर) कब्जा कर लेता है, मानो समझ रहा हो (पूजक का उद्देश्य), और चेतन (लपटों) के बीच भी विश्राम करता हैः फिर से वे फूट पड़ते हैं, और दिव्य (बलिदान की आग) की मरम्मत करते हैं, जिसके साथ मिलकर वे अपने माता-पिता (स्वर्ग और पृथ्वी) को एक अलग (चमकदार) रूप देते हैं।
चेतन अग्नि अपने भीतर समाहित रहती है, बारी-बारी से आग की लपटों को एकत्रित और विमुख करती रहती है। ये लपटें कभी-कभी सुप्त होती हैं, लेकिन कभी-कभी स्वर्ग और पृथ्वी के बीच विभिन्न आकारों में फैल जाती हैं।

स संस्तिरों विष्टिरः सं गृभयाति जानन्नेव जानतीर्नित्य आ शये।
पुनर्वर्धन्ते अपिं यन्ति देव्यमन्यद्वर्प पित्रोः कृण्वते सचा ॥ 1-140-7॥

चूँकि आराध्य (अग्नि), हवा से प्रेरित होकर, विभिन्न दिशाओं में फैलता है, एक निष्ठाहीन और अनर्गल बकवास करने वाले की तरह, (जो अंधाधुंध बोलता है) प्रशंसा करता है, इसलिए दुनिया उसकी पूजा में संलग्न है, जो सभी का उपभोक्ता है, जिसका मार्ग है अंधेरा, जो जन्म से शुद्ध है, और विभिन्न मार्गों का अनुसरण करता है।

वायु के झोंके से प्रेरित होकर यह मनमोहक अग्नि किसी विषभाषी वक्ता की हिंसक अनर्गल वाणी की भाँति इधर-उधर इधर-उधर फैल जाती है। इस यात्रा में, अग्नि अलग-अलग दिशाओं में कई काले निशान छोड़ती है, जबकि सभी जीवित प्राणी इस शुद्ध उग्र ज्वाला में फंस जाते हैं।

वि यदस्थाण्ड्यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्का जराणा अनाकृतः।
तस्य पत्मन्दक्षुषंः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ॥1-141-7॥

(सभी चीजों की, पृथ्वी की) माँ के (सब्जी) वस्त्र को चाटते हुए, तेज (अग्नि) शानदार अस्तित्व के साथ आगे बढ़ता हैः (प्रत्येक) पैर वाले (प्राणी) को जीविका प्रदान करता हैः हमेशा (ईंधन) का उपभोग करता है, ताकि एक काला ट्रैक हो (उसके पथ) का अनुसरण करता है।

पृथ्वी अग्नि की माता है; वह प्यार से पौधों और पेड़ों से बनी उसकी पोशाक को अपनी जीभ से चाटता है। यह अग्नि, वन आधारित, जंगल से होकर यात्रा करता है जब गरजने वाले जानवरों के झुंड उसके साथ चलते हैं, तो अग्नि घास का स्वाद लेता है और सभी पैदल चलने वाले जानवरों को भोजन प्रदान करता है। अपने रास्ते पर वह अपने पीछे केवल एक काला निशान छोड़ जाता है।

अधिवासं परिं मातू रिहान्नह तुविग्रेभिः सत्वंभिर्याति वि ज्रयः।
वयो दधत्पद्धते रेरित्सदानु श्येनि सचते वर्तनीरहः ॥1-140-9॥

खनिज संपदा के संकेत और प्राति हेतु अग्नि से प्रार्थना है कि, देवताओं के आवाहन, उज्ज्वल प्रज्वलित अग्नि, आराध्य देवताओं ने आपको नियुक्त किया है। रात और दिन में, धन (आहुति पर)ः उन्होंने सभी अच्छी चीजों को शुद्ध करने वाले अग्नि) में जमा कर दिया है, एक जैसे उन्होंने सभी प्राणियों को पृथ्वी पर रखा है।
हे उग्र अग्नि! आप पृथ्वी के आंतरिक भाग में छिपी समस्त संपदा को शुद्ध करने वाले और उसके संरक्षक हैं। यज्ञ करने वाले धर्मात्मा भक्त दिन-रात तुम्हें आहुति देते रहते हैं।

त्वे वसुनि पुर्वणीक होतर्दिषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिनत्सं सौभगानि दधिरे पावके ॥6-5-2॥

सभी सांसारिक चीजों को पार करते हुए, वह हमें धन प्रदान करें, अपनी महानता से, निर्विरोध अपने शत्रुओं को नष्ट करें।

अग्नि, विश्व विजेता या सर्वशक्तिमान, अजेय और अजेय, हमें पृथ्वी से खजाना प्रदान करता है।

स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना।
वन्वन्नवन्तो अस्तृतः ॥6-16-20॥

जो गर्तों में छिपी अग्नि को जानता है; वह जो सत्य के संरक्षक के रूप में उसके पास आता है; जो लोग पूजा करते समय उसकी स्तुति दोहराते हैं, उन्हें वह निश्चित रूप से समृद्धि का वादा करता है। जो उत्साही भक्त दिव्य रहस्यमय अग्नि की कल्पना करते हैं, और पूरी भक्ति के साथ उनकी स्तुति करते हैं, और सत्य के मार्ग का अनुसरण करते हैं, उन्हें धन प्राप्त करने के तरीकों के लिए उनके द्वारा निर्देशित किया जाता है।

य ई चिकेत् गुहा भवन्तमा यः ससाद् धारामृतस्य।
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्रव ववाचास्मै: ॥1-67-4॥

अग्नि, स्वर्ग के स्वामी, आप उस (सभी) की अध्यक्षता करते हैं जिसे चाहा या दिया जाना है; क्या मैं ख़ुशी के लिए आपकी प्रशंसा करने वाला बन सकता हूँ?
ओह! सांसारिक धन के सम्राट अग्नि, स्वर्ग के स्वामी, मैं आपके अधीन हूँ।

ईर्शिष वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वर्पतिः।
स्तोता स्यां तव शर्मणिः ॥8-44-18॥

पृथ्वी पर मेरा जन्म हुआ। मैंने अपना स्वास्थ्य पृथ्वी के स्वास्थ्य सुधारने में लग गया था। मेरे 50 (पचास साल) के कामों से में एक मात्र इसी काम में लगा हूं। मेरी विद्या तो ''धमार्थ, का मोक्ष, आयुर्वेद आरोग्य रक्षणम्'' ही थी। मैं उसी विद्या को अपने अशिक्षित, अनपढ़ कहलाने वाले समाज से ग्रहण करे उन्हीं की विद्या के प्रकाश में अपनी पृथ्वी की समृद्धि में लगा हुआ हूं।

2.5 हमारा पृथ्वी पर जन्म हो- ऋग्वेद में अग्नि से प्रार्थना

तीन सिरों वाली, सात किरणों वाली अग्नि की महिमा करें; जो किसी भी प्रकार के ह्रास के अधीन नहीं है, अपने प्यारे नन्हें बच्चों (स्वर्ग और पृथ्वी) की गोद में बैठा है; और सभी (इच्छाओं) को संतुष्ट करना; परमात्मा (अग्नि) की सार्वभौमिक चमक के रूप में, चाहे वह गतिशील हो या स्थिर, (चारों ओर फैलती है)। तीन सिरों वाली, सात किरणों वाली अग्नि - तीन सिर तीन दैनिक बलिदान, या तीन घरेलू अग्नि, या तीन क्षेत्र, स्वर्ग, पृथ्वी और मध्य-वायु हो सकते हैं। सात किरणें आग की सात लपटें हैं; या

रस्मी, सामान्यतः एक किरण, का मैं अग्नि की स्तुति करता हूं जो स्वर्ग और पृथ्वी के गर्भ में विराजमान है, और जो जड़ जगत् के प्रत्येक परमाणु और उप-परमाणु में व्याप्त है, मैं तीन सिरों और सात किरणों वाले सदैव युवा अग्नि की स्तुति करता हूं।

त्रिमूर्धनं सप्तरश्शिं्मं ग्राणीषेऽनुन्नमग्निं पित्रोरूपस्थे।
निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम्: ॥1-146-1॥

अपने हाथ में सारा (यज्ञ का) धन लिये हुए, और (जल के) खड्डों में छिपा हुआ है। उसने देवताओं को भय से भर दिया; नेता, (देवता), कृत्यों के संचालक, अग्नि को तब पहचानते हैं, जब वे हृदय से प्रार्थना करते हैं

हस्ते दार्धानो नृम्णा विश्वान्यमे दे्वान्धाद्गुहा निषीदन्।
विदन्तीमत्र नरों धियन्धा हृदा यत्तष्टान्मन्त्रां अशंसन्: ॥1-167-2॥

अजन्मे (सूर्य) की तरह वह पृथ्वी और आकाश को बनाए रखता है, और सच्ची प्रार्थनाओं के साथ स्वर्ग को सहारा देता है; अग्नि, जिसमें सभी जीविका हैं, उन स्थानों को संजोते हैं, जो जानवरों के लिए आभारी हैं; (उन स्थानों की) मरम्मत करें, जहां कोई चारागाह नहीं। अग्नि भगवान् की तरह ही इस बड़ी पृथ्वी का समर्थन करता है। वह मंत्रों की मदद से स्वर्ग को भी स्थिर करता है, आप सभी प्राणियों के लिए जीवन हैं चेतन और सुप्त रहते हैं।

अजो न क्षां दाधार पृथिवी तस्तंभ द्यां मंत्रैभिः सत्यैः।
प्रिय पदान पृश्वो निपाहि विश्वायुरन्गो गुहा गुहं गाः।1-167-3।

अग्नि, जो सर्वज्ञ है, और कर्मों का विवेचक है, आप स्वर्ग के पुत्र हैं या पृथ्वी के पुत्र हैं: क्या आप जो बुद्धिमान हैं, इस अवसर पर देवताओं की अलग-अलग पूजा करते हैं। हे अग्नि! धरती माता और स्वर्ग माता के विद्वान और धनी पुत्र, कृपया हमारे लिए विभिन्न देवताओं की पूजा करें।

अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेतास्तना पृथिव्या उत विश्ववेदाः।
ऋधग् देवानिह यजा चिकित्वः॥3-25-1॥

हम आपके पास आते हैं, सर्व-पालन करने वाली अग्नि, आपको कई तरह से भजनों और साष्टांग प्रणाम करते हुए, आप, अंगिरस, जब प्रज्वलित होते हैं, तो हमारे लिए अनुकूल होते हैं: (यज्ञ के) भोजन से (अग्नि प्रसन्न हों) भगवान् (अग्नि प्रसन्न हों)) उपासकों, और (उनके बलिदान की) उज्ज्वल लपटों से। हे अग्नि! तुम गुप्त-गुप्त

स्थानों में निवास करते हो; तुम गर्जना की ध्वनि करते हो, आप सत्य और असत्य के बीच स्पष्ट रूप से अंतर करते हैं; आप धन के दाता हैं; आप भाग्यशाली, सुंदर और यज्ञ के योग्य हैं; आपको घी खिलाया जाता है, सभी भक्त आपकी स्तुति करते हैं।

त्वामंग्रे धर्णसिं विश्वधां वयं गीर्भिर्गुणन्तो नमसोप सेदिम्। स नों
जुषस्व समिधानो अङिरो देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिर्भिः।5-8-3।

यह वैश्वानर होमबलि का पहला चढ़ावा हैः उसे देखो, यह नश्वर लोगों के बीच अमर प्रकाश है, वह एक शारीरिक आकार में पैदा हुआ है, अचल, सर्वव्यापी, अमर और हमेशा बढ़ता रहता है। हे प्यारे भाइयों! इस वैश्वानर अग्नि को श्रद्धांजलि अर्पित करें, जो पहली बार, अपने मूल रूप में, तीनों लोकों की संपूर्ण प्रतिभा के साथ प्रकट हो रही है। यह अग्नि सदैव बढ़ती रहती है, सर्वव्यापी है और अप्रभावित रहती है।

अयं घटं प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरिमृतं मर्त्येषु।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तवा वर्धमानः।6-9-4।

2.6 समुद्र एंव महासागरों में ज्वालामुखी क्रियाँए, धरती निर्माण व खनिज सम्पदा

समुद्र तल के नीचे भी ज्वालामुखी विस्फोट होते रहते हैं। इस अग्नि को वडवानल कहा जाता है। निम्नलिखित ऋचाएँ स्थापित करती हैं कि इस घटना की जानकारी वैदिक ऋषियों को भी थी।
आकाश से मीठा पानी उगलता हैः (सूर्य की) किरण से (मनुष्य) अमरता प्राप्त करता हैः जो घी का गुप्त नाम है वह देवताओं की जीभ है, अमृत की नाभि है।समुद्र में जन्मी अग्नि की मधुर लहर पैदा करने वाला फल सोम-लता के साथ अविनाशी हो गया।उसकी घी रूपी जीभ अमृत का निवास बन गई।

समुद्राद्रूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट्।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः॥4-58-1॥

और्व भृगु की तरह और अपानवत की तरह, मैं समुद्र के बीच में रहने वाले शुद्ध अग्नि का आह्वान करता हूं।

हे अग्नि देव! समुद्र के नीचे रहने वाले आपकी प्रशंसा भृगु, और्व और आप्नावत जैसे ऋषियों द्वारा की जाती है। मैं आपको आदरपूर्वक आमंत्रित करता हूं।

और्वभृगुवच्छुचिमप्नवदाहुवे।अग्निं समुद्रवाससम्॥ 8-102-4॥

मैं, समुद्र के बीच में रहने वाले अग्नि का आह्वान करता हूं, सविता की ऊर्जा की तरह, भग द्वारा दिए गए आनंद की तरह। भगवान् अग्नि सृष्टिकर्ता सूर्य के समान हैं, उनके पास देवतुल्य महिमा है और वे समुद्र के भीतर रहते हैं। मैं आपको आदरपूर्वक आमंत्रित करता हूं।

समुद्री विस्फोटों के बारे में भजन अधिकतर भृगु वंश के ऋषियों द्वारा रचित हैं। यह भी स्पष्ट है कि इस विषय का अध्ययन करने वाले ऋषि उत्तर वैदिक काल में भी मौजूद थे, जैसा कि वायु-पुराण, मत्स्य पुराण आदि में उल्लेखों से पता चलता है।

आ सवं संवितुर्यथा भर्गस्येव भुजिं हुवे। अगिंन संमुद्रवंससम्ः ॥8-102-6॥

2.7 पृथ्वी को उपजाऊ बनाने हेतु अग्नि से प्रार्थना

अग्नि संपूर्ण सृष्टि को ऊर्जा देने वाला स्रोत है। इसलिए वैदिक काल में हम अपने रक्षण के लिए अग्नि की प्रार्थना करते है। यह माना जाता है कि, अग्नि ही निर्माता है और अग्नि जी संघारक है। इसलिए अग्नि के स्वरूप से हम सदैव प्रार्थना करते है कि, वो हमारे जीवन को चलाने और जीविका को बनाने के लिए प्रेम से अन्न का उत्पादन बढ़ाए, हमारी फसलों की रक्षा करे ।

इस जीवन की संपदा और सृष्टि की रक्षा के लिए अग्नि से प्रार्थना करते है। अग्नि सदैव ही हमे ऊर्जा प्रदान करती है, जिससे हम पोषित होकर आगे बढ़ते है। इसलिए वैदिक काल में पृथ्वी को उपजाऊ बनाने हेतु अग्नि को निर्माता मानकर प्रार्थना की है-

मग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मुमुषीः प्रायवे पुनः।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नामददसं पर जनयञ्जिवमस्तृतम्ः ॥1-140-8॥

(लपटों की) घुमावदार लटें उसे (अग्नि) गले लगाती हैं, और वसंत ऋतु के समाप्त होने पर अपने आने वाले (भगवान) को फिर से (अभिवादन) करने के लिए ऊपर उठती हैं; उन्हें जर्जरता से बचाते हुए, वह जोर से आवाज करते हुए आते हैं, (उनमें) तीव्र सजीवता और अक्षुण्ण जीवन शक्ति उत्पन्न करते हैं। लंबे बालों वाली पत्नियाँ लगभग विलुप्त हो चुकी अग्नि की लपटों के रूप में उसे गले लगाती हैं और उसे फिर से प्रज्वलित करती हैं। बदले में अग्नि उन्हें जीवन धारण करने की सर्वोच्च और अमर शक्ति प्रदान करके उनकी बुढ़ापे की दुर्बलताओं को दूर करती है।

गर्भो यो अपां गर्भो वनन्नां गर्भश्च स्थितिं गर्भश्चरथाम्।
अद्रौं चिदस्मा अंतर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः॥1-70-2॥

(वे पहाड़ पर, या हवेली में, उस अग्नि को आहुति देते हैं) जो जल के भीतर, जंगल के भीतर और सभी जंगम और अचल चीजों के भीतर है, अमर है और अपने लोगों के बीच एक परोपकारी (राजकुमार) की तरह पवित्र कार्य करता है। जंगल के भीतर-वह गर्भ, भ्रूण, पानी आदि में गर्मी और जीवन का आंतरिक रोगाणु है, जो सभी प्राकृतिक या कृत्रिम गर्मी पर अस्तित्व के लिए निर्भर हैं।

जल निकायों में, पेड़ों में, जंगम और अचल निकायों में और पहाड़ों में भी रहने वाली अग्नि को मानव जाति के घरों में स्थापित किया जाए। यह अग्नि एक राजा के समान अपनी प्रजा के कल्याण के लिए समर्पित है और अमर है।

स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दर्शनमहित्वना।
वन्वन्नवांतो अस्तृतः ॥6-16-20॥

सभी सांसारिक चीजों को पार करते हुए, वह हमें धन प्रदान करें, अपनी महानता से, निर्विरोध, निर्विरोध अपने शत्रुओं को नष्ट करें। अग्नि, विश्व विजेता, सर्वशक्तिमान, अजेय और अजेय, हमें इस पृथ्वी से खजाना प्रदान करता है।

ई चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारान्मृतस
वि ये चृन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्रव ववाचस्मैः॥ 1-67-4॥

जो गर्तों में छिपी अग्नि को जानता है; वह जो सत्य के संरक्षक के रूप में उसके पास आता है; जो लोग पूजा करते समय उसकी स्तुति दोहराते हैं, उन्हें वह निश्चित रूप से समृद्धि का वादा करता है। जो उत्साही भक्त दिव्य रहस्यवादी अग्नि की कल्पना करते हैं, और पूरी भक्ति के साथ उनकी स्तुति करते हैं और सत्य के मार्ग का अनुसरण करते हैं, उन्हें धन प्राप्ति के तरीकों के लिए उनके द्वारा निर्देशित किया जाता है।

पश्वा न तायुं गुहा चतन्त नमो युजानं नमो वहन्तम्।
सजोषा धीराः पदैर्नु ग्मन्नुप त्वा सीदन्विश्वे यजत्राः॥1-65-1॥

जब कोई चोर (जिसने चुराया हो) किसी जानवर की तरह, आपके पैरों के निशानों से दृढ़ और शांत देवताओं ने आपका पीछा किया, अग्नि, आपके पैरों के निशान से, आप, एक चोर की तरह (जिसने चोरी किया है) एक जानवर, आप, हव्य लेते हुए, और उन्हें देवताओं तक ले जाते हुएः सभी जो देवता पूजा के अधिकारी हैं, वे आपके

समीप बैठें। चोर की भाँति अज्ञात स्थानों पर छुपे हुए, हे पूजनीय अग्नि! आप देवताओं को अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त करते हैं। आपके पूज्य भक्त आपके निवास स्थान की खोज करने का सामान्य लक्ष्य लेकर आपके द्वारा छोड़े गए पदचिन्हों की सहायता से आपके पास आकर बस गए।आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः।

वेद्न्मर्तो नेमधिंता चिकित्वानगिं्न पदे परमे तस्थिवांसम् ॥ 1-72-4॥

जिनकी पूजा की जानी है, (देवता), विशाल स्वर्ग और पृथ्वी के बीच (अग्नि के लिए) पूछताछ करते हुए, रुद्र को समर्पित (भजन) पढ़ते हैं; आधे आहुति के हिस्सेदार (इंद्र) के साथ नश्वर (मरुतों) की सेना ने, यह जानते हुए कि अग्नि कहाँ छिपा हुआ था, उसे अपने उत्कृष्ट आश्रय में पाया। श्रद्धेय और बुद्धिमान पवन-देवताओं ने भगवान् इंद्र के साथ स्तुति में भजन गाए, स्वर्ग और पृथ्वी की लंबाई और चौड़ाई में व्याप्त अग्नि की गहन खोज की। अन्त में उन्हें अग्नि के ऊँचे स्थानों (पर्वत शिखरों) पर रहने का पता चला।

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम्।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य॥10-7-3॥

मैं अग्नि को एक पिता के रूप में, एक रिश्तेदार के रूप में, एक भाई के रूप में, एक स्थायी मित्र के रूप में मानता हूँ। मैं शक्तिशाली अग्नि के चेहरे का सम्मान करता हूं, जो स्वर्ग में उज्ज्वल है, सूर्य के समान आराध्य है। हम सभी भक्त भगवान् अग्नि के पवित्र स्थानों की पूजा करते हैं, जो हमारे पिता, भाई या करीबी दोस्त की तरह हैं, जैसे भगवान् सूर्य के भक्त उनके प्रतीकात्मक प्रभामंडल की पूजा करते हैं।

त्रिः स॒प्त यद्दह्यानि त्वे इत्पादवदिन्निहिंता यज्ञियासः।
तेभिं रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशुञ्च स्थातृञ्चारथं च पाहि: ॥1-72-6॥

भक्त पुरुष, जो बलि चढ़ाने में सक्षम हैं, आप में निहित तीन रहस्यवादी संस्कारों को जानते हैं, और उनके साथ आपकी पूजा करते हैं; इसलिए, आप, समान स्नेह के साथ, उनके मवेशियों की रक्षा करते हैं, और जो कुछ (उनका है), चल या स्थिर है। हे अग्नि! आपके वफादार भक्तों ने आपकी रक्षा के लिए आपके इक्कीस छिपे हुए निवासों की खोज की है। आप उन पर प्रसन्न रहिए और उनकी चल-अचल संपत्ति तथा पशु धन का भी ध्यान रखिए।

3.
भारतीय जल विद्या एंव वर्षा विज्ञान

3.1 जल विद्या और विज्ञान का इतिहास

वैदिक काल-5000 से 6000 ई.पू. जल विज्ञान चक्र की संपूर्ण प्रक्रियाएँ इसी काल के ऋषियों को ज्ञात थीं। यह ऋग्वेद के मंत्रों से स्पष्ट होता है। इतना ही नहीं, हम यह कहने का साहस कर सकते हैं कि, जल विज्ञान चक्र का सबसे पहला उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। नदियाँ आसमान से होने वाली वर्षा से पोषित होती हैं। मुख्य रूप से यह पोषण वर्षा जल के रूप में होता है, लेकिन कुछ नदियों के मामले में बर्फबारी भी पोषण में योगदान दे सकती है। प्राचीन काल से ही भारतीय ऋषि वर्षा की घटना का अध्ययन करते रहे हैं। यहाँ तक कि विभिन्न ऋतुओं का भी अध्ययन किया जाने लगा।

समानमेतदुन्दुकमुच्चैत्यव चाहभिः। भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयं।

दिन-भर एक समान जल ऊपर और नीचे की ओर बहता रहता है; बादल पृथ्वी को आनन्द देते हैं; आग से स्वर्ग आनन्दित होता है।

समुद्रज्येष्ठाः सास्यि मध्यात्पुनाना यन्त्यर्निविशमानाः। इन्द्रो या वज्री वृषभोरारद् ता आपों देविरिह मामवन्तुः।।

जल, अपने महासागर-प्रधान के साथ, आकाश के बीच से शुद्ध करते हुए आगे बढ़ता है (सभी चीजें), निरंतर बह रही हैंः दिव्य जल, जिसे गरजने वाले इंद्र ने भेजा था, यहां (पृथ्वी पर) मेरी रक्षा करें। आकाश के मध्य का रूप- समुद्रज्येष्ठा, सलिलस्य मध्यतः सलिला का अर्थ यहां अंतरिक्ष कहा गया है।

या आपों दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयज्ञाः।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आर्पों देवीरिह मामवन्तुः।।

वे जल जो आकाश में हैं, या जो जल (पृथ्वी पर) बहते हैं, वे (जिनके नाले) खोदे गए हैं, या जो अनायास ही फूट पड़े हैं, और वे जो समुद्र की खोज करते हैं। सभी शुद्ध और पवित्र करने वाले, वे दिव्य जल यहां (पृथ्वी पर) मेरी रक्षा करें। जिनके चैनल

खोदे गए हैं- खनीत्रिमा, खानाने निवृत्तः, नहरों या जलाशयों को खोदकर बनाया गया है, या शायद बंद कर दिया गया है; किसी भी स्थिति में सिंचाई की प्रथा का प्रमाण।

पुत्तो जगार प्रत्यचमति शीर्ष्णा शिरः प्रतिं दधौ वरुथम्।
आसीन ऊर्ध्वमुपसि क्षिणाति न्यद्दुत्तानामण्वेंति भूमिम्ः

वह उसे पांवों से पकड़ लेता है; जब वह उसके पास आता है तो वह उसे उथला कर देता है, वह (स्वर्ग का) सिर को उसके सिर के चारों ओर एक रक्षक के रूप में रखता हैः बैठा हुआ (ऊपर) वह (अपनी किरणों को) ऊपर की ओर निकटतम स्वर्ग में भेजता हैः वह उन्हें नीचे की ओर, फैली हुई पृथ्वी पर भेजता है।वह इसे पकड़ लेता है- यानी, बारिश इंद्र की पहचान यहां आदित्य, सूर्य से की जाती है, जिसकी नमी को वाष्पित करने और इसे बारिश के रूप में बहाल करने के कार्यों को बहुत स्पष्ट रूप से सूचित किया गया है।

देवानां मार्ने प्रथमा अंतिष्ठन्क्रान्तत्रान्देषामुपरा उदायन्।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनुपा द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम्।।

देवताओं की रचना में, (बादल) पहले स्थान पर थे; उनके विभाजन से, जल (वर्षा के) से तीन देवता (पर्जन्य, वायु और आदित्य) उत्पन्न हुए। क्रम से बोकर पृथ्वी को गर्म करें, उनमें से दो (वायु और आदित्य) सर्व-सुखदायक जल (सूर्य की ओर) पहुंचाते हैं। नक्षत्र नियमित रूप से आकाश में घूमते रहते हैं। उनसे प्राप्त होकर सूर्य की किरणें पृथ्वी पर उत्पन्न समस्त जल को अपने साथ ले लेती हैं और उसे सौर कक्षा में स्थापित कर देती हैं। वहां से वे सारी पृथ्वी को फिर से खाली करने के लिए लौट आते हैं।

अथर्ववेद के.4, स. 15. एम.7 में वायु द्वारा चलाये गये बादल पृथ्वी पर वर्षा करते हैं। यजुर्वेद.अ.18. एम.36. प्रार्थना करें, पृथ्वी पर, पृथ्वी के भीतर, पेड़-पौधों में तथा वायुमंडल में सभी दिशाओं से जो जल है, वह मुझे प्राप्त हो जाये।

वैदिक ऋषियों ने एक महत्वपूर्ण विचार प्रतिपादित किया है, वह यह है कि, आकाश में दो परतें होती हैं - एक 'अंतरिक्ष' और दूसरी 'द्यद्यौ'। इन ऋषियों के अनुसार ये दोनों परतें सूक्ष्म जल की बूंदों का एक महासागर रखती हैं। और इसलिए वे प्रार्थना करते हैं कि उन्हें इन सूक्ष्म-सूक्ष्म कणों से वर्षा मिले। यजुर्वेद अ.23, मण्डल 49, अ.1 में भी और सामवेद 3.1.86 में भी ये प्रार्थनाएँ विशेष रूप से की गई हैं।

ऋग्वेद में अकाल निवारण हेतु ऋषि देवापि का 'आख्यान' सर्वविदित है। इसमें ईश्वर की वर्षा का विशेष उल्लेख है जो 'द्यद्यौ' से बरसती है। यह इस प्रकार है:

आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान्।
स उत्तरस्मादधरं समुद्रमपो दिव्या अंसृजद्वर्ष्या अभिः।।

अर्ष्टिसे के पुत्र ऋषि देवापि, देवताओं को प्रसन्न करना जानते हुए, होता के रूप में अपने कार्यों में लग गए हैं। वह स्वर्ग के वर्षा जल को ऊपर से नीचे तक ले आया है।

अस्मिन्त्समुद्रे अध्युत्तररिस्मन्नापों देवेभिनिर्वृता अतिष्ठन्।
त अद्रावन्नार्ष्टिषेणेन सृष्टा देवापिना प्रषिता मृक्षिर्णीषुः।

इस ऊपरी महासागर का जल देवताओं के द्वारा बान्धा हुआ खड़ा था; आर्ष्टिसेन के पुत्र देवापि द्वारा मुक्त किये जाने के बाद, उन्हें समझाने के लिए आगे भेजा गया।

एतान्यग्ने नवतिर्नव त्वे आहुतान्यधि रथा सहस्रम्।
तेभिर्वर्धस्व तन्वः शूर पूर्वीर्दिवो नो वृष्टिमिषितो रिरीहि॥

हे अग्नि, ये निन्यानवे हजार रथपति तुझे अर्पित किए गए हैं; उनके साथ, हे नायक, अपने कई शरीरों का पोषण करो; और इस प्रकार हमारे लिए स्वर्ग से वर्षा भेजने का अनुरोध किया।

1997 में नासा (अमेरिका) द्वारा की गई कुछ टिप्पणियाँ भी 'क्कलन' के अस्तित्व का समर्थन करती हैं। उनकी रिपोर्ट कहती है: *"अंतरिक्ष की अंतिम सीमा से पानी उड़ता हुआ आया-हमने पहली बार देखा, एक बर्फ के गोले के आकार का सूक्ष्म खगोलीय पिंड अंतरिक्ष से पृथ्वी के वायुमंडल की ओर असंख्य संख्या में उड़ रहा है।"* नासा के अनुसार, हर दिन हजारों ऐसे बर्फ के गोले जैसे पिंड पृथ्वी की ओर उड़ते हैं, लेकिन जैसे-जैसे वे पृथ्वी की ओर आते हैं, वे बादलों में विलीन हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में यह 'ब्रह्मांडीय' वर्षा प्रतिदिन पृथ्वी पर बरसती है (वेदों के अनुसार यह दद्यौ है), यद्यपि इसका विस्तार बहुत छोटा है। लेकिन यह पिछले 4.5 अरब वर्षों से लगातार हो रहा है - जिसका फिर से मतलब है कि पूरे अंतरिक्ष में पानी है। और इसमें जोड़ने के लिए-एक कार्बनिक पदार्थ इन ब्रह्मांडीय वर्षा का एक घटक पाया जाता है। हो सकता है यही जीव जगत की उत्पत्ति का साधन हो। यहां तक कि हवाई यूनिवर्सिटी भी इस संबंध में आगे शोध कर रही है।

ऋग्वेद में वर्षा के उल्लेख/विशेषण जैसे आदिशक्ति जगतधर, जो पौधों, गाय, घोड़े और महिलाओं में गर्भाधान को प्रेरित करते हैं, संभवतः इसी उत्पत्ति की ओर इशारा करते हैं।

स्तरीरु त्वावतः सूत उत त्वद् यथावशं तन्वं चेषः।
पितुः पयः प्रतिगृह्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः॥
(त्रीणि वा आदित्यस्य तेजांसि प्रातर्ग्रीष्मे मध्यंदिने शरद्यपराह्णे (तै. सं. 2.1.2.5)

पर्जन्य का एक रूप बंजर गाय की तरह है, दूसरा संतान पैदा करता है, वह जो चाहे रूप धारण कर लेता है। माँ को पिता से दूध मिलता है तो पिता को, जिससे पुत्र का पोषण होता है। माता दूध आदि प्राप्त करती है - पिता आकाश है, पृथ्वी माता है, जो पूर्व से वर्षा प्राप्त करती है, जो तर्पण और आहुति देने के साधनों का उत्पादन करती है, फिर से मूल स्वर्ग में लौट आती है, साथ ही साथ अपनी संतानों का भरण-पोषण करती है। सभी जीवित प्राणी. वह जो चाहे रूप धारण कर लेता है - आकाश वर्षा को रोक देता है या भेज देता है।

यस्मिन् विश्ववानि भुवनानि तस्थुस्तिइस्रो द्यावधा सस्रुरापः।
त्रयः कोशांस उपसेचनासो माध्वः श्चोतन्त्यभितों विरप्शम् ।।

जिसमें सभी प्राणी विद्यमान हैं; तीन लोक रहते हैं जिनसे पानी तीन दिशाओं (पूर्व, पश्चिम और दक्षिण) में बहता हैः तीन जल-प्रवाह, बादलों के समूह (पूर्व, पश्चिम और उत्तर) शक्तिशाली (पर्जन्या) के चारों ओर पानी डालते हैं।

स रेंतोधा वृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगतस्तथुषश्च।
तन्म ऋतं पातु शतशारदाय युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।

वह बैल होः शाश्वत योजनाओं का गर्भाधान करने वाला हो, क्योंकि उसमें स्थिर और जंगम (दुनिया) दोनों की जीवन शक्ति हैः उसके द्वारा भेजी गई बारिश मुझे सौ साल तक सुरक्षित रखे और आप (देवताओं) को हमेशा के लिए सुरक्षित रखें इसे आशीर्वाद के साथ संजोएं।

सयाना वाक्य को संकेतवाचक बनाता है। "वह है, आदि; और "के लिए" के स्थान पर "अतः, अतस" है। उसमें जीवन शक्ति है- तस्मिन-आत्माः स्कोलियास्ट उत्तरार्द्ध देह की व्याख्या करता है, शरीर, शायद शारीरिक अस्तित्व के लिए, वनस्पति जगत का जीवन बारिश पर निर्भर करता है, और वह या जानवरों का मकई और बाकी पर निर्भर करता है।

यो गर्भमोषधीनां गवाँ कृष्णोत्यर्वताम्। पर्जन्यं पुरुषिर्णम् ।।

वह जो पौधों, गायों, घोड़ियों के गर्भाधान का कारण है; महिला का।

तस्मा ईदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तमम्। इळां नः संयत करतः।।

उसे (अग्नि देवता के मुख से) अत्यंत स्वादिष्ट हव्य अर्पित करो, जिससे वह हमें सदैव भोजन प्रदान करे। इन ऋचाओं से यह कहा जा सकता है कि, ऋषि जिसे 'द्यद्यौ' कहते थे, वह वही है जिसे हम आज बाह्य अंतरिक्ष कहते हैं और उनका यह प्रतिपादन कि इसमें सूक्ष्म जल की बूंदों का सागर है, आधुनिक विज्ञान से भी मेल खाता है। इसके अलावा समकालीन शोध ने वैदिक कथन को बढ़ाया है कि वर्षा सांसारिक जीवन की मूल समर्थन प्रणाली है। वैदिक काल में अनुसंधान की ऐसी अद्भुत पहुंच थी - जिस पर भारतीयों को बिना किसी हिचकिचाहट के गर्व होना चाहिए।

पश्चिमी शोधकर्ताओं द्वारा विकसित जल विज्ञान वर्षा, उसके पैटर्न तथा जंगलों और घटनाओं का अध्ययन करता है। विज्ञान की इस शाखा में जल विज्ञान चक्र एक मौलिक अवधारणा है। इन सभी कारकों ने इस शाखा के विकास में योगदान दिया है।

आधुनिक जल विज्ञान को इस प्रकार परिभाषित करता है कि, वह संपूर्ण प्रक्रिया, जिसके माध्यम से प्रकृति में संपूर्ण जल प्रसारित या परिवर्तित होता रहता है, जल विज्ञान चक्र के रूप में जाना जाता है। यह प्रक्रिया भूमि की सतह से 0.8 किमी गहराई से लेकर वायुमंडल में 16 किमी की ऊंचाई तक फैली हुई है। इस प्रक्रिया का "न तो प्रारंभ है और न ही अंत" - यह निरंतर चलती रहती है। धरती से पानी वाष्पित होकर आसमान तक जाता है और कुछ देर बाद बारिश के रूप में धरती पर लौट आता है। जब यह नीचे उतरता है, तो इसका कुछ भाग वनस्पतियों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है, कुछ नदियों और झरनों के माध्यम से बहकर, समुद्र में समा जाता है और कुछ भाग भूमि की सतह से टपक जाता है; पौधों और पेड़ों द्वारा अवशोषित भाग कुछ हद तक वायुमंडल में वापस चला जाता है। वाष्पीकरण, वर्षा, टपकन और सतह पर बहने वाले पानी की मात्रा भिन्न-भिन्न स्थानों पर, भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न होती है।

प्राचीन काल में 1000 ईसा पूर्व काल में प्लेटो, अरस्तू, थेल्स जैसे यूनानी दार्शनिक, कवि होमर (1000 ईसा पूर्व), ल्यूक्रेटियस, सेनेका, प्लिनी जैसे रोमन दार्शनिक जल विज्ञान के शोधकर्ता थे। हालाँकि उनकी समझ अल्प थी और इस विषय के बारे में उनकी कल्पनाएँ और परिकल्पनाएँ आज के जल विज्ञान से दूर थी।

ईसा युग की शुरुआत में मार्क विक्टुवियस ने यह विचार प्रतिपादित किया कि वर्षा का पानी भूमि की सतह से टपकता है, जिससे पानी उपलब्ध हो जाता है। यह शायद इस अनुशासन में पहला तार्किक विचार था।

1400 . 1600 ई. में लियोनार्डो-दा-विंची, बर्नार्ड पालिसी की पहली प्रत्यक्ष टिप्पणियों का प्रतीक है, जिससे यह निष्कर्ष निकला कि बारिश का पानी मिट्टी से बहकर फिर से धाराओं के रूप में उभरता है। यह भी कहा जा सकता है कि, वे जल विज्ञान चक्र के बारे में काफी अच्छी तरह जानते थे।

1600 से 1700 ई काल से इस विद्या में तेजी से प्रगति हुई है। पियरे पेरौल्ट यूरोप में सीन नदी बेसिन में गए और बारिश, वाष्पीकरण और पानी की केशिका गति के माप का अध्ययन किया। इसी तरह के अध्ययन और शोध बाद में एडमंड हैली और अन्य शोधकर्ताओं द्वारा भी किए गए और जल विज्ञान चक्र के बारे में सही निष्कर्ष दर्ज किए गए। यह काल एक तरह से आधुनिक जल विज्ञान की नींव रख रहा था।

17वीं शताब्दी के बाद जल विज्ञान तेजी से आगे बढ़ा। जल चक्र के विभिन्न कारकों के बीच अंतर-संबंधों को मात्रात्मक तरीके से सामने रखा गया। 19वीं सदी के शोधकर्ता ल्यूक हार्वर्ड ने आकाश में चार प्रकार के ढेलों की पहचान की। सिरस, क्यूम्यलस, स्ट्रेटस और निंबस उनके नाम थे, प्रत्येक की बारिश करने की क्षमता अलग-अलग थी।

चीन में, विभिन्न उल्लेखों से पता चलता है कि वर्षा 1000 ईसा पूर्व से ही मापी जाने लगी थी। इससे पहले भी वे 1900 ईसा पूर्व के जल विज्ञान चक्र से परिचित प्रतीत होते हैं। फारस में वर्षा मापी जाने के अभिलेख 10वीं शताब्दी से उपलब्ध हैं। कोरिया में इस तरह के माप का पहला उल्लेख वर्ष 1441 ईसा पूर्व में मिलता है। भारत में इसकी शुरुआत 4 ईसा पूर्व में हुई थी और फ़िलिस्तीन में, 2 ई. पू.।

हालाँकि, उपर्युक्त संदर्भों से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल से ही भारत में जल विज्ञान की प्रगति की उपेक्षा की गई है। जल विज्ञान में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। जलवायु विज्ञान, प्राचीन भारत में वर्षा का पूर्वानुमान-लेकिन जल विज्ञान के इतिहास में इसका उल्लेख तक नहीं है। यह निस्संदेह एक गंभीर खामी है, क्योंकि इससे यह गलत धारणा बनती है कि, भारत जल विज्ञान में पिछड़ गया है। इस अंतर को भरने के उद्देश्य से ही जल विज्ञान के बारे में वैदिक जल ज्ञान को समझना जरूरी है।

3.2 भारतीय जल विद्या एंव विज्ञान की परंपरा

भारतवर्ष प्राचीन काल से ही जल संस्कृति, जल प्रबंधन तथा जल विज्ञान की समृद्ध परंपरा का धनी रहा है। भारतीय सभ्यता का विकास नदियों के तटों पर हुआ और जल को केवल प्राकृतिक संसाधन ही नहीं, बल्कि जीवन, धर्म, संस्कृति, कृषि, पर्यावरण एवं समृद्धि का मूल आधार माना गया। भारतीय मनीषियों ने जल को पंचमहाभूतों में एक प्रमुख तत्व के रूप में स्वीकार करते हुए उसके संरक्षण, संचयन, शुद्धीकरण तथा न्यायपूर्ण उपयोग के लिए वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक सिद्धांत विकसित किए। यही कारण है कि भारत की जल परंपरा विश्व की सबसे प्राचीन एवं सुव्यवस्थित जल प्रबंधन प्रणालियों में से एक मानी जाती है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में जल का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद में जल की महिमा का विस्तृत वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में जल को अमृत, जीवनदाता, स्वास्थ्यवर्धक एवं पवित्रता का प्रतीक बताया गया है। अथर्ववेद में वर्षा, भूजल, जलचक्र तथा प्राकृतिक संतुलन से संबंधित अनेक सूक्त उपलब्ध हैं। उपनिषदों तथा पुराणों में जल को सृष्टि की उत्पत्ति का आधार माना गया है। भारतीय दर्शन में जल को केवल भौतिक पदार्थ नहीं, बल्कि चेतना एवं जीवन शक्ति का संवाहक भी माना गया है।

भारतीय जल विद्या का स्वरूप केवल धार्मिक या सांस्कृतिक आस्था तक सीमित नहीं था, बल्कि यह पूर्णतः वैज्ञानिक एवं अनुभवजन्य ज्ञान पर आधारित था। प्राचीन भारत में वर्षा जल संचयन, भूजल पुनर्भरण, नदी तंत्र का संरक्षण, सिंचाई व्यवस्था तथा जल वितरण के ऐसे वैज्ञानिक उपाय अपनाए गए, जो स्थानीय भौगोलिक एवं जलवायु परिस्थितियों के अनुरूप थे। तालाब, पोखर, कुएँ, बावड़ियाँ, झीलें, नहरें, जोहड़, कुंड तथा बाँध केवल जल संग्रहण की संरचनाएँ नहीं थीं, बल्कि सम्पूर्ण ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं पारिस्थितिकी के केंद्र थे।

सिंधु-सरस्वती सभ्यता (लगभग 3300–1900 ईसा पूर्व) विश्व की सर्वाधिक विकसित जल प्रबंधन प्रणालियों में से एक थी। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, धौलावीरा, कालीबंगन तथा लोथल जैसे नगरों में विकसित जल निकासी व्यवस्था, विशाल जलाशय, सार्वजनिक स्नानागार, वर्षा जल संचयन प्रणाली तथा सुव्यवस्थित नालियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि भारत में जल विज्ञान का ज्ञान अत्यंत विकसित था। विशेष रूप से धौलावीरा की जल संरक्षण प्रणाली, जिसमें वर्षा जल का संचयन, बहते जल का नियंत्रित प्रवाह तथा जलाशयों की श्रृंखला विकसित की गई थी, आज भी आधुनिक जल अभियंताओं एवं शोधकर्ताओं के लिए प्रेरणास्रोत है।

वैदिक एवं उत्तरवैदिक काल में कृषि, पशुपालन तथा मानव जीवन का आधार वर्षा एवं जल संरक्षण था। वर्षा के समय, मात्रा तथा वितरण का अध्ययन नक्षत्रों, ग्रहों, वायु की दिशा, बादलों के स्वरूप तथा प्राकृतिक संकेतों के आधार पर किया जाता था। यह ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी अनुभव एवं अवलोकन के माध्यम से विकसित हुआ और बाद में अनेक ग्रंथों में संकलित किया गया।

प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों एवं विद्वानों ने जल विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। **वराहमिहिर** द्वारा रचित *बृहत्संहिता* में भूजल की खोज, वर्षा पूर्वानुमान, जल स्रोतों की पहचान तथा पर्यावरणीय संकेतों का विस्तृत वर्णन मिलता है। **कौटिल्य के अर्थशास्त्र** में सिंचाई व्यवस्था, जलाशयों के निर्माण, नहरों के रखरखाव तथा जल संसाधनों के प्रशासनिक प्रबंधन का उल्लेख है। **कृषि पाराशर**, **कश्यप कृषि सूक्त**, **वास्तुशास्त्र** तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में कृषि एवं जल प्रबंधन के अनेक वैज्ञानिक सिद्धांतों का वर्णन मिलता है।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय आवश्यकताओं एवं भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार विविध जल संरक्षण प्रणालियाँ विकसित हुईं। राजस्थान में **जोहड़**, **नाड़ी**, **टांका** एवं **बावड़ियाँ**, गुजरात के **वाव**, बिहार की **आहर-पईन प्रणाली**, महाराष्ट्र की **फड़ सिंचाई प्रणाली**, हिमालयी क्षेत्रों की **कुल** एवं **गूल**, तमिलनाडु के **एरी (टैंक)**, कर्नाटक के **केरे**, तथा पूर्वोत्तर भारत की बाँस आधारित जल वितरण प्रणाली भारतीय जल विज्ञान की विविधता एवं स्थानीय ज्ञान का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। इन सभी प्रणालियों का मूल उद्देश्य वर्षा जल का अधिकतम संचयन, भूजल पुनर्भरण तथा जल का न्यायसंगत उपयोग था।

भारतीय समाज में जल संरक्षण केवल शासन का दायित्व नहीं था, बल्कि यह सामाजिक उत्तरदायित्व एवं सामुदायिक सहभागिता का विषय था। प्रत्येक गाँव में तालाब, पोखर, कुएँ एवं जलाशयों का निर्माण सामूहिक श्रमदान, दान एवं सामाजिक सहयोग से किया जाता था। जल स्रोतों की नियमित सफाई, गाद निकासी, तटों का संरक्षण तथा जल वितरण के नियम ग्राम समुदाय द्वारा निर्धारित किए जाते थे। यही कारण था कि अनेक जल संरचनाएँ सैकड़ों वर्षों तक निरंतर उपयोग में बनी रहीं।

भारतीय संस्कृति में जल को देवत्व का स्वरूप भी प्रदान किया गया। गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा एवं कावेरी जैसी नदियों को माता का सम्मान दिया गया। नदियों, तालाबों तथा कुओं के संरक्षण के लिए अनेक धार्मिक पर्व, उत्सव एवं सामाजिक परंपराएँ विकसित हुईं। इन परंपराओं का वास्तविक उद्देश्य समाज में जल संरक्षण के प्रति जागरूकता एवं उत्तरदायित्व की भावना विकसित करना था।

मध्यकाल में भी अनेक राजाओं एवं शासकों ने जल प्रबंधन को प्राथमिकता दी। चोल, पल्लव, चालुक्य, परमार, राजपूत तथा मराठा शासकों ने बड़े-बड़े जलाशयों, बाँधों एवं सिंचाई प्रणालियों का निर्माण कराया। दक्षिण भारत के विशाल सिंचाई टैंक तथा राजस्थान की बावड़ियाँ आज भी उनकी वैज्ञानिक सोच एवं स्थापत्य कौशल का प्रमाण हैं।

औपनिवेशिक काल में पारंपरिक जल संरचनाओं की उपेक्षा होने लगी तथा केंद्रीकृत सिंचाई प्रणालियों पर अधिक बल दिया गया। परिणामस्वरूप अनेक स्थानीय जल स्रोत नष्ट होते गए और सामुदायिक जल प्रबंधन की परंपरा कमजोर पड़ती गई। स्वतंत्रता के बाद बड़े बाँधों एवं नहर परियोजनाओं का विकास हुआ, परंतु छोटे जलाशयों, तालाबों एवं पारंपरिक जल स्रोतों के संरक्षण पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया।

वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या, तीव्र शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, भूजल के अत्यधिक दोहन, वनों की कटाई तथा जलवायु परिवर्तन के कारण जल संकट निरंतर गंभीर होता जा रहा है। अनेक क्षेत्रों में भूजल स्तर तेजी से नीचे जा रहा है, नदियाँ मौसमी बनती जा रही हैं तथा वर्षा का स्वरूप अनिश्चित होता जा रहा है। ऐसी परिस्थितियों में भारतीय जल विद्या एवं विज्ञान की प्राचीन परंपराएँ पुनः अत्यंत प्रासंगिक हो गई हैं।

आज देश के अनेक भागों में पारंपरिक जल संरचनाओं के पुनर्जीवन के सफल प्रयास किए जा रहे हैं। राजस्थान में जोहड़ों के पुनर्निर्माण, अलवर क्षेत्र में सामुदायिक जल संरक्षण आंदोलन, महाराष्ट्र में जलयुक्त शिवार, तथा विभिन्न राज्यों में तालाब पुनर्जीवन कार्यक्रम इस दिशा में उल्लेखनीय पहल हैं। इन प्रयासों ने यह सिद्ध किया है कि यदि पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक विज्ञान, भू-स्थानिक तकनीक (GIS), रिमोट सेंसिंग, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) तथा वैज्ञानिक जल प्रबंधन के साथ समन्वित किया जाए, तो जल संकट का स्थायी समाधान संभव है।

भारतीय जल विद्या एवं विज्ञान की परंपरा केवल अतीत की गौरवशाली विरासत नहीं है, बल्कि वर्तमान एवं भविष्य के लिए एक वैज्ञानिक मार्गदर्शक भी है। यह परंपरा हमें सिखाती है कि जल का संरक्षण केवल तकनीकी विषय नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं नैतिक उत्तरदायित्व भी है। जल के प्रति सम्मान, सामुदायिक सहभागिता, स्थानीय संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग तथा प्रकृति के साथ संतुलित विकास ही भारतीय जल दर्शन का मूल संदेश है।

अतः वर्तमान समय की आवश्यकता है कि भारत की प्राचीन जल परंपरा को आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के साथ समन्वित करते हुए एक समग्र, विकेन्द्रीकृत

एवं सतत जल प्रबंधन प्रणाली विकसित की जाए। इससे न केवल जल सुरक्षा एवं खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित होगी, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, जैव विविधता संवर्धन, ग्रामीण समृद्धि तथा **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** की भावना पर आधारित सतत विकास के लक्ष्य भी प्रभावी रूप से प्राप्त किए जा सकेंगे। भारतीय जल विद्या एवं विज्ञान की यह अमूल्य परंपरा आने वाली पीढ़ियों के लिए ज्ञान, प्रेरणा और सतत विकास की आधारशिला है।

3.3 कृषि व अन्न उत्पादन हेतु वर्षा का पूर्वानुमान

प्राचीन भारत में अध्ययन किया जाने वाला एक अन्य महत्वपूर्ण विषय, इसके लिए जिम्मेदार कारकों और जलवायु का अध्ययन करके वर्षा की भविष्यवाणी करना था। इस तरह के पूर्वानुमान अल्पकालिक और दीर्घकालिक दोनों तरह से लगाए गए थे। ऐसी गतिविधियों को शुरू करने का मूल कारण निस्संदेह वर्षा पर खेती की अत्यधिक निर्भरता थी। उम्मीद थी कि बेहतर पूर्वानुमान उस मौसम में बीज बोने के लिए बेहतर विकल्प पेश कर सकता है। यह उम्मीद की गई थी कि यह सब गलत विकल्पों से होने वाली क्षति को कम कर सकता है। अकाल और बेहतर बारिश दोनों की भविष्यवाणी की गई थी।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्षा पूर्वानुमान के अधिक उदाहरण मिलते हैं। आगामी सीज़न में बारिश का पूर्वानुमान सूर्य, शुक्र और बृहस्पति जैसे ग्रहों की स्थिति से लगाया जाना चाहिए, साथ ही बादलों के बीजारोपण और सूर्य पर होने वाले विपथन और उनके सूर्य के प्रकाश पर पड़ने वाले अंतर से भी अनुमान लगाया जाना चाहिए और तदनुसार बुआई की जा सकती है (अधिकरण) द्वितीय,45.)

बृहत्संहिता अध्याय 2 कहता हैः एक खगोलशास्त्री जो भविष्यवाणियों (होरा), अंकगणित और शास्त्रों के ग्रंथों द्वारा गठित खगोल विज्ञान में अच्छी तरह से पारंगत है, उसे विजयी होने की इच्छा रखने वाले राजा द्वारा सम्मानित किया जाना चाहिए और उसे दरबार में बनाए रखने के योग्य माना जाना चाहिए।

वराह मिहिर आगे यह भी कहते हैं कि, दिन और रात के लिए आसमान का निरीक्षण करना, बारिश की भविष्यवाणी के लिए प्रासंगिक जानकारी एकत्र करना जैसे कार्यों की पूरी सूची किसी भी समय एक व्यक्ति द्वारा संभव नहीं है। इसलिए राजा को चार दिशाओं के लिए, चार अलग-अलग दैवज्ञ नियुक्त करने चाहिए। एक पूर्व और दक्षिण-पूर्व के लिए, दूसरा दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम के लिए, तीसरा पश्चिम और उत्तर-पूर्व के लिए और चौथा उत्तर और उत्तर-पश्चिम के लिए। प्राचीन भारतीय राजाओं के सभी दरबारों में ऐसे व्यक्ति हुआ करते थे।

जलविज्ञान विज्ञान की प्राप्ति के बाद, जो प्राचीन भारतीय जलविज्ञान में पहला कदम था, 17वीं शताब्दी में सामने आया। और वह है राई की माप...वह इस बारे में भी मार्गदर्शन करते हैं कि कुआं कैसे बनाया जाए, कुएं के चारों ओर कौन से पौधे लगाए जाने चाहिए आदि। दुःख की बात है कि आधुनिक ज्ञान के संसाधन भारत के इस ज्ञान को स्वीकार नहीं करते हैं। उन्हें इसका जिक्र करना चाहिए।

पाराशर का कहना है कि, जल स्वयं जीवन का मूल संसाधन है और इसलिए इसका अध्ययन किया जाना चाहिए। वह एक वैज्ञानिक की महŸवाकांक्षा को भी व्यक्त करता है, यदि वह कहता है कि, जब हम चाहें तो बारिश हो सकती है-और जब हम नहीं चाहते तो नहीं हो सकती। दूसरे शब्दों में इसका मतलब यह है कि वे बाढ़ या अकाल से होने वाली सभी प्रकार की हानि और क्षति से बचना चाहते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इस उद्देश्य से उन्होंने वर्षा की संपूर्ण प्रक्रिया, उसके उत्पादन, उसे प्रभावित करने वाले कारकों आदि का विस्तार से अध्ययन किया था। वे वर्षा की अच्छी भविष्यवाणी चाहते थे, ताकि इससे नौवहन, कृषि और सैन्य गतिविधियों में मदद मिल सके।

परिणामस्वरूप हम इन विषयों का वेदों एवं परवर्ती ग्रंथों में विस्तार से विश्लेषण देख सकते हैं और छांदोग्य उपनिषद् और पुराणों में भी इनका विस्तार से वर्णन है। यजुर्वेद का कहना है कि, जल विज्ञान के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन और अनुसंधान करने वाले व्यक्तियों को उचित रूप से सम्मानित किया जाना चाहिए।

(यजुर्वेद 16/38): हम उन सभी शोधकर्ताओं को सलाम करें जो कुओं, जल निकायों, अकाल और सूखे, बीज-युक्त बादलों तथा बारिश को प्रेरित करने और रोकने की तकनीक आदि के बारे में अध्ययन करते हैं।) स्मृति काल में जलविज्ञान ने बड़े उत्साह के साथ प्रगति की। स्मृतियों के विभिन्न लेखक ऋषियों- नारद, कश्यप, गर्ग, वशिष्ठ, पराशर, द्रुहिन, वज्र, वत्स्य तथा देवल ने अपने लेखन और संस्करणों के माध्यम से इस आगमन में महŸवपूर्ण योगदान दिया।

दुर्भाग्य से इनमें से कोई भी लेख विद्यमान नहीं है। वराह मिहिर कृत बृहत्संहिता तथा उत्पल भट्ट कृत बृहत्संहिता में इन लेखों के अनेक उद्धरण हैं, जिनसे हमें इन लेखों की जानकारी मिलती है। और ये ऋषि होमर के काल से भी पहले के थे। इसलिए ग्रंथों में वास्तव में उनका उल्लेख करने की आवश्यकता है। इनमें से गर्ग ऋषि के वंश ने अपनी कई पीढ़ियाँ इस विज्ञान को समर्पित कर दी थीं। उन्होंने जलाशयों, बांधों, नहरों आदि जैसे विषयों पर भी शोध किया था। नेपाल के एक संग्रहालय में प्रासंगिक खंड के केवल कुछ पृष्ठ ही मौजूद हैं। पुराणों के काल में भी इस विद्या ने बेहतर प्रगति की थी। जैसा कि ब्रह्मवैवर्त पुराण के कई संदर्भों से देखा जा सकता है।

3.4 वराह मिहिर के अनुसार वर्षा का पूर्वानुमान

वराह मिहिर का दावा है कि यदि लगातार और लगन से अध्ययन किया जाए, तो जल विज्ञान का पूर्वानुमान कभी गलत नहीं होगा। अंततः इस सारे ज्ञान का उपयोग दूर-दराज के गाँवों के किसानों द्वारा किया जाना था। जल विज्ञान को सूत्रों के रूप में संकलित किया गया और ग्रामीण स्तर पर दैवज्ञ जोशी को पढ़ाया गया। बाद में, ये सूत्र विभिन्न स्थानीय ग्रंथों के रूप में फैल गए- मैथिली बोली में डाकवचनामृत, राजस्थानी में घाघ-भड्डरी, मराठी में सहदेव-भाडली, बंगाली में खनेर वचन, कन्नड़ में तिरिक्कुरल और तमिल में करनपथु।

यह जल विज्ञान के प्राचीन ज्ञान को समेकित करने, अवधारणाओं को समझाने और आधुनिक प्रगति के विरुद्ध इसकी पुष्टि करने के लिए अपने आप में एक अलग खंड का विस्तार है। लेकिन फिर भी इन अध्ययनों से निकलने वाली कुछ बुनियादी अवधारणाओं को सामने रखना उचित है।

प्राचीन भारतीय वैदिक काल से ही जल विज्ञान चक्र के बारे में जानते थे। इतना ही नहीं, वे बाहरी अंतरिक्ष और सूक्ष्म बूंदों वाले महासागर के बारे में भी जानते थे। इन विज्ञानों में एक बहुत ही अनोखी अवधारणा मौजूद है, यह वर्षा का बीजारोपण या गर्भाधान है। इसमें कहा गया है कि, बीज बोने और वास्तविक वर्षा के बीच की अवधि निश्चित और सुनिश्चित है, जो 6.5 महीने यानी 195 दिन है। यदि इस दौरान कुछ भी गड़बड़ी होती है तो बारिश अनिश्चित काल के लिए रुक जाती है।

वायुमंडल में पवनों का संचरण भी निश्चित एवं सुनिश्चित है तथा यह पूर्व निर्धारित तरीके से वर्षों-वर्षों तक चलता रहता है। इसलिए किसी विशेष अवधि के लिए, यदि हम हवा के मार्ग और गति की स्थिति जानते हैं, तो हम और अधिक जान सकते हैं। यह पवन चक्र पौष माह में प्रारंभ होकर एक वर्ष में पूरा होता है।

बादलों की गति मूलतः हवाओं पर निर्भर होती है। इसलिए यदि कोई हवाओं के मार्ग और गति को जानता है, तो बादलों की घटना और इस प्रकार बारिश के बारे में सटीक पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। जैसे आकाशीय पिंड एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, वैसे ही वे वायुमंडल में बादलों और हवाओं को भी प्रभावित करते हैं। इसलिए जितना अधिक हम उनकी गतिविधियों के बारे में जानते हैं, हमें बादलों और हवाओं की स्थिति के बारे में पता चलता है।

वायुमंडल में होने वाले परिवर्तनों से सभी रासायनिक पदार्थ, वनस्पति तथा जीव-जन्तु भी प्रभावित होते हैं। तदनुसार उनके व्यवहार और प्रतिक्रियाएँ बदल जाती हैं।

इस तरह के व्यवहारिक परिवर्तन हमें मौजूदा परिस्थितियों के बारे में बेहतर जानकारी दे सकते हैं। सूर्य और चंद्रमा की किरणें हवा और बादलों के परिवर्तन से प्रभावित होती हैं। इसलिए यदि कोई अपनी दिनचर्या में कोई महत्वपूर्ण बदलाव देखता है, तो बादल और हवा की गतिविधियों में संभावित बदलाव की भविष्यवाणी की जा सकती है।

मौजूदा धूप (अट्टापक्रमा) से हवाओं में नमी की मात्रा और बारिश की संभावना का अनुमान लगाया जा सकता है। आकाश में द्वैध सूर्य की मायावी उपस्थिति, चंद्रमा या सूर्य को ढकने वाली आभा, इंद्रधनुष, बादलों की गड़गड़ाहट, क्षुद्रग्रहों की बौछार, तारों का उदय- ऐसी सभी घटनाएं हमें अचानक बारिश की सूचना देती हैं। ऐसी घटनाओं का प्रभाव क्षेत्र और अवधि निश्चित है।

जिस प्रकार भारतीय पंचांग में वर्षों, महीनों, पखवाड़ों और दिनों का दिया गया कालक्रम, जो अंततः खगोलीय गतिविधियों पर निर्भर होता है, वर्षों तक बिना किसी बदलाव के जारी रहता है, उसी प्रकार बादल और हवा की गतिविधियों का चक्र भी लंबे समय तक चलता रहता है। इसलिए इसका अध्ययन करने से पंचांग का हवाला देकर भविष्यवाणियां करने की बेहतर संभावना मिलती है।

प्रत्येक राज्य में ऐसे वैज्ञानिक अवलोकनों के लिए एक सुदृढ़ प्रणाली और प्रभावी तंत्र होना चाहिए, जिससे प्राप्त जानकारी समय पर उन किसानों, नाविकों, सैन्य बलों तथा अन्य संबंधित समुदायों तक पहुंच सके, जो अपने दैनिक कार्यों और निर्णयों में इन संकेतों का उपयोग करते हैं। यदि स्थानीय अनुभव, पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक वैज्ञानिक विश्लेषण का समन्वय किया जाए, तो मौसम संबंधी पूर्वानुमानों की विश्वसनीयता और उपयोगिता दोनों में उल्लेखनीय वृद्धि हो सकती है। यह व्यवस्था केवल प्राकृतिक घटनाओं के अध्ययन तक सीमित न रहकर जनहित, कृषि सुरक्षा और आपदा प्रबंधन का भी एक महत्वपूर्ण आधार बन सकती है।

ज्ञान का यह सारा खजाना भारत की प्राचीन वैज्ञानिक परंपरा और सांस्कृतिक गौरव का अमूल्य धरोहर है। यदि जानबूझकर या उपेक्षा के कारण उसे वर्तमान संदर्भों से अलग करने की भूल की जा रही है, तो ऐसे प्रयासों से बचने तथा इस ज्ञान को पुनः समाज के उपयोग में लाने के लिए हर संभव कदम उठाया जाना चाहिए। यह आवश्यक है कि पारंपरिक मौसम विज्ञान, लोक-अवलोकनों और आधुनिक अनुसंधानों के बीच संवाद स्थापित हो, ताकि दोनों एक-दूसरे के पूरक बनकर समाज का मार्गदर्शन कर सकें। पूर्वानुमान संबंधी सूचनाओं का लाभ सरकारों, प्रशासनिक संस्थाओं और समाज के प्रत्येक वर्ग तक समान रूप से पहुंचे, यही एक सुदृढ़ और दूरदर्शी व्यवस्था का उद्देश्य होना चाहिए।

दुर्भाग्यवश आज तक यह स्थिति व्यापक रूप से दिखाई नहीं देती। किसान अब वराहमिहिर, घाघ और अन्य प्राचीन मनीषियों के सूत्रों से अपरिचित होता जा रहा है, वहीं आधुनिक मौसम विज्ञान की सटीक और उपयोगी जानकारी भी समय पर उसके खेत तक नहीं पहुंच पाती। परिणामस्वरूप कभी वर्षा के अभाव में फसलें सूख जाती हैं, तो कभी अतिवृष्टि से जलमग्न होकर नष्ट हो जाती हैं। किसान की पीड़ा उसके सरल शब्दों में प्रकट होती है—"धरती को तो बुखार चढ़ गया है, और मौसम के बिगड़े मिजाज ने हमारी हालत बिगाड़ दी।" यह केवल एक किसान की व्यथा नहीं, बल्कि बदलती जलवायु और कमजोर पूर्वानुमान प्रणाली की सामूहिक चेतावनी है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि प्राचीन जल विद्या, लोकानुभवों, पंचांग-आधारित संकेतों और आधुनिक जलविज्ञान तथा मौसम विज्ञान के सिद्धांतों का समन्वित अध्ययन किया जाए। जब तक हम प्रकृति के दीर्घकालिक चक्रों, वर्षा के पारंपरिक संकेतों और वैज्ञानिक विश्लेषण को एक साथ समझने का प्रयास नहीं करेंगे, तब तक पूर्वानुमान की पूर्ण सफलता प्राप्त करना कठिन रहेगा। भारत की प्राचीन ज्ञान-परंपरा और आधुनिक विज्ञान का संतुलित समन्वय ही भविष्य में अधिक विश्वसनीय, जनोपयोगी और सफल पूर्वानुमान प्रणाली की सिद्धि का मार्ग प्रशस्त करेगा।

3.5 प्राचीन भारतीय मौसम विज्ञान एवं आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण

भारतीय ज्ञान परंपरा में मौसम विज्ञान केवल वर्षा का अनुमान लगाने तक सीमित नहीं था, बल्कि यह प्रकृति, जल, कृषि, वनस्पति, पशु-पक्षियों के व्यवहार तथा खगोलीय घटनाओं के समन्वित अध्ययन पर आधारित एक समग्र विज्ञान था। वैदिक ऋषियों, कृषि वैज्ञानिकों, ज्योतिषाचार्यों तथा लोक-मनीषियों ने हजारों वर्षों के अनुभव के आधार पर मौसम, वर्षा, वायु, बादलों, ऋतु परिवर्तन तथा जलचक्र के ऐसे सिद्धांत विकसित किए, जिनका उपयोग कृषि, जल प्रबंधन और सामाजिक जीवन में व्यापक रूप से किया जाता था। इस ज्ञान का उद्देश्य केवल भविष्यवाणी करना नहीं था, बल्कि जल, भूमि, वनस्पति और मानव जीवन के बीच संतुलन बनाए रखना था।

ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद तथा ब्राह्मण ग्रंथों में सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, वायु, मेघ, बिजली तथा वर्षा के पारस्परिक संबंधों का उल्लेख मिलता है। भारतीय पंचांग भी इसी खगोलीय एवं प्राकृतिक अवलोकन प्रणाली का परिणाम है। वर्षों, महीनों, पक्षों, तिथियों और नक्षत्रों का क्रम केवल धार्मिक अनुष्ठानों के लिए नहीं, बल्कि कृषि, जल संचयन, बीजारोपण तथा ऋतु परिवर्तन के वैज्ञानिक संकेतक के रूप में विकसित हुआ था। भारतीय समाज ने यह अनुभव किया कि जिस प्रकार खगोलीय पिंड एक

निश्चित चक्र में संचालित होते हैं, उसी प्रकार हवाओं की दिशा, बादलों की गति, तापमान और वर्षा का भी एक प्राकृतिक चक्र होता है, जिसे दीर्घकालीन अवलोकन द्वारा समझा जा सकता है।

3.5.1 प्राचीन भारतीय मौसम विज्ञान- इसका आधार प्रत्यक्ष अवलोकन था जिससे किसान आकाश के रंग, बादलों की आकृति, सूर्य और चन्द्रमा के चारों ओर बनने वाले प्रभामंडल, वायु की दिशा, पक्षियों की उड़ान, पशुओं के व्यवहार, कीट-पतंगों की गतिविधियों तथा वृक्षों के पुष्पन और फलन से वर्षा का अनुमान लगाते थे। यह ज्ञान केवल लोकविश्वास नहीं था, बल्कि पीढ़ियों तक किए गए सतत पर्यवेक्षण का परिणाम था। घाघ-भड्डरी की कहावतें तथा वराहमिहिर की *बृहत्संहिता* इस परंपरा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं, जिनमें वर्षा, बादल, वायु, ग्रह-नक्षत्र तथा कृषि के संबंधों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

भारतीय मौसम विज्ञान में जलचक्र को प्रकृति के जीवनचक्र का आधार माना गया है। समुद्र से वाष्पीकरण, बादलों का निर्माण, वर्षा, नदियों का प्रवाह तथा पुनः समुद्र में जल का मिलना एक सतत प्राकृतिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को समझते हुए भारत में तालाब, जोहड़, बावड़ी, कुण्ड, नाड़ी, आहर, पइन, खडीन तथा जलग्रहण संरचनाओं का विकास किया गया, ताकि वर्षा के प्रत्येक कण का संरक्षण हो सके। इस प्रकार मौसम विज्ञान और जल प्रबंधन एक-दूसरे के पूरक थे।

वराहमिहिर ने *बृहत्संहिता* में बादलों के प्रकार, उनकी गति, गर्जन, विद्युत, वायु की दिशा, ग्रहों की स्थिति तथा विभिन्न प्राकृतिक संकेतों के आधार पर वर्षा का पूर्वानुमान प्रस्तुत किया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि वर्षा का अध्ययन केवल आकाश को देखकर नहीं, बल्कि भूमि, वनस्पति, जलस्रोतों तथा जीव-जंतुओं के व्यवहार को साथ लेकर किया जाना चाहिए। इसी प्रकार भारतीय पंचांग में भी नक्षत्रों एवं ऋतुओं के अनुसार कृषि कार्यों का समय निर्धारित किया जाता था।

लोक परंपरा में भी मौसम विज्ञान का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान था। राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात तथा देश के अन्य भागों में किसान स्थानीय अनुभवों के आधार पर वर्षा का पूर्वानुमान लगाते थे। बादलों की दिशा, पूर्वा या पछुआ हवा का प्रवाह, चींटियों का स्थान परिवर्तन, मेंढकों का स्वर, पक्षियों की गतिविधियाँ तथा वनस्पतियों के व्यवहार को वर्षा के संकेत के रूप में समझा जाता था। आधुनिक विज्ञान इन संकेतों के पीछे जैविक एवं पर्यावरणीय कारणों की व्याख्या करता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि पारंपरिक ज्ञान अनुभवजन्य विज्ञान पर आधारित था।

3.5.2 आधुनिक मौसम विज्ञान- उपग्रहों, डॉप्लर राडार, स्वचालित मौसम केन्द्रों, संख्यात्मक मॉडल, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा उच्च क्षमता वाले संगणकों की सहायता से

मौसम का विश्लेषण करता है। इन तकनीकों से अल्पकालिक एवं मध्यम अवधि के पूर्वानुमान अधिक सटीक हुए हैं। चक्रवात, भारी वर्षा, सूखा, ओलावृष्टि तथा तापीय लहरों जैसी चरम मौसमी घटनाओं की पूर्व चेतावनी अब संभव हो गई है। इसके बावजूद स्थानीय स्तर पर वर्षा के वितरण, सूक्ष्म जलवायु (Micro-climate) तथा ग्रामीण परिस्थितियों में अभी भी अनेक चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

जलवायु परिवर्तन ने आधुनिक मौसम विज्ञान के समक्ष नई चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं। अनियमित मानसून, अल्प अवधि में अत्यधिक वर्षा, लम्बे शुष्क अंतराल तथा तापमान में वृद्धि जैसी घटनाएँ कृषि, जल संसाधनों तथा नदी तंत्र को प्रभावित कर रही हैं। ऐसी परिस्थितियों में केवल आधुनिक तकनीकी पूर्वानुमानों पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं है। स्थानीय अनुभव, पारंपरिक जल ज्ञान, भू-दृश्य की समझ तथा सामुदायिक अवलोकनों को आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली के साथ जोड़ना आवश्यक है।

चित्र 3.1 प्राचीन भारतीय मौसम विज्ञान तथा आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों के समन्वय को दर्शाता है। इसमें पारंपरिक प्राकृतिक संकेतों, खगोलीय अवलोकनों और आधुनिक मौसम पूर्वानुमान प्रणालियों को एकीकृत कर जल संरक्षण, नदी पुनर्स्थापन, कृषि विकास तथा पर्यावरणीय संतुलन प्राप्त करने की समग्र अवधारणा प्रस्तुत की गई है।

चित्र 3.1: प्राचीन भारतीय मौसम विज्ञान एवं आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समन्वित मॉडल

बमाया एवं कोटवाली नदी पुनर्जीवन के अनुभव इस समन्वित दृष्टिकोण की प्रभावशीलता एवं वैज्ञानिक प्रासंगिकता की स्पष्ट पुष्टि करते हैं। नदी के जलग्रहण क्षेत्र का अध्ययन करते समय केवल आधुनिक तकनीकी सर्वेक्षणों पर निर्भर न रहकर स्थानीय ग्रामीणों के पीढ़ियों से संचित अनुभवों को भी समान महत्व दिया गया। ग्रामीणों द्वारा बताए गए वर्षा के पारंपरिक संकेतों, बादलों की दिशा एवं प्रकृति, हवाओं के प्रवाह, भू-आकृति, प्राकृतिक जलमार्गों, प्राचीन जलनिकास तंत्र तथा ऐतिहासिक जलस्रोतों की जानकारी को वैज्ञानिक सर्वेक्षण, स्थलाकृतिक मानचित्रों तथा जलग्रहण क्षेत्र के तकनीकी विश्लेषण के साथ समन्वित किया गया। इस समेकित अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि स्थानीय पारंपरिक ज्ञान अनेक स्थानों पर वैज्ञानिक निष्कर्षों का पूरक ही नहीं, बल्कि मार्गदर्शक भी सिद्ध हुआ। परिणामस्वरूप जल संचयन संरचनाओं का चयन अधिक उपयुक्त, स्थान-विशिष्ट तथा दीर्घकालिक दृष्टि से प्रभावी हुआ और वर्षा जल का अधिकतम संचयन संभव हो सका।

इस समन्वित कार्यप्रणाली के परिणाम अत्यंत उत्साहवर्धक रहे। भूजल स्तर में निरंतर वृद्धि हुई, मौसमी जलधाराओं में पुनः प्रवाह स्थापित हुआ तथा कोटवाली नदी के पुनर्जीवन की प्रक्रिया को स्थायित्व प्राप्त हुआ। जल उपलब्धता बढ़ने से सिंचित क्षेत्र का विस्तार हुआ, कृषि उत्पादन एवं फसल विविधीकरण में उल्लेखनीय सुधार आया तथा पशुपालन को भी नई गति मिली। इसके साथ ही स्थानीय जैव विविधता का संरक्षण हुआ, वनस्पतियों का पुनर्विकास प्रारंभ हुआ, पक्षियों एवं अन्य वन्यजीवों की संख्या में वृद्धि देखी गई तथा सम्पूर्ण नदी तंत्र में पारिस्थितिक संतुलन पुनः स्थापित होने लगा। इस अनुभव ने यह सिद्ध किया कि जब स्थानीय परंपरागत ज्ञान और आधुनिक विज्ञान परस्पर सहयोगी बनते हैं, तब नदी पुनर्स्थापन और जल संरक्षण के परिणाम अधिक प्रभावी, टिकाऊ और समाजोपयोगी होते हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय मौसम विज्ञान की प्राचीन परंपरा को केवल सांस्कृतिक धरोहर अथवा ऐतिहासिक विरासत के रूप में न देखा जाए, बल्कि उसे आधुनिक मौसम विज्ञान, जल विज्ञान, जलवायु विज्ञान तथा पर्यावरणीय प्रबंधन के साथ समन्वित करते हुए व्यवहारिक विकास योजनाओं का अभिन्न अंग बनाया जाए। प्रत्येक राज्य में स्थानीय मौसम अवलोकन केन्द्रों, सामुदायिक वर्षामापी तंत्र, पारंपरिक मौसम संकेतों के वैज्ञानिक प्रलेखन तथा स्थानीय जलग्रहण क्षेत्रों के सतत अध्ययन की संस्थागत व्यवस्था विकसित की जानी चाहिए। इसके साथ-साथ किसानों, जल उपयोगकर्ताओं, स्थानीय समुदायों, ग्राम संस्थाओं तथा वैज्ञानिक एवं शैक्षणिक संस्थानों के मध्य नियमित संवाद और ज्ञान-विनिमय की प्रणाली स्थापित की जानी चाहिए, जिससे पारंपरिक अनुभव और आधुनिक वैज्ञानिक विश्लेषण एक-दूसरे को सशक्त बना सकें।

ऐसी समन्वित व्यवस्था से मौसम संबंधी पूर्वानुमानों की स्थानीय स्तर पर विश्वसनीयता बढ़ेगी, जल संसाधनों की योजना अधिक प्रभावी होगी तथा जल संरक्षण के कार्यों में समुदाय की सहभागिता भी सुदृढ़ होगी। इससे कृषि उत्पादन, जल सुरक्षा, नदी पुनर्जीवन, भूजल पुनर्भरण, जैव विविधता संरक्षण तथा जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन की दिशा में दीर्घकालिक एवं स्थायी परिणाम प्राप्त किए जा सकेंगे। बमाया एवं कोटवाली नदी पुनर्जीवन का अनुभव इस तथ्य का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है कि भारत की प्राचीन ज्ञान परंपरा और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समन्वय ही भविष्य की जल एवं पर्यावरणीय चुनौतियों का सबसे प्रभावी और टिकाऊ समाधान सिद्ध हो सकता है।

4.
नदी विज्ञान एंव नदी व्यवहार

4.1 नदी की व्यवहार विद्या

भारत की भौगोलिक आकृति परम्परागत और आधुनिक विज्ञान के अनुसार कुछ भी हो, पुराणों में इसे प्राकृतिक रूप से निर्मित स्वयंभू या स्व-निर्मित के रूप में माना जाता है। ज्योतिर्लिंग के रूप में जाने जाने वाले स्थानों पर शिव की मानव निर्मित वस्तुओं के कई संदर्भ हैं- दूसरे शब्दों में, वे स्थान जहां प्राचीन काल में सुप्त ज्वालामुखी फटे थे- उनका अनुमान लगाया जा सकता है। पूरे उपमहाद्वीप में विभिन्न स्थानों पर ऐसे विस्फोट हुए थे। यह जांचना ज्ञानवर्धक होगा कि क्या यह अनुमान भू-विज्ञान में आधुनिक अध्ययनों के माध्यम से वर्तमान में ज्ञात जानकारी के अनुरूप है। यदि वास्तव में ऐसा है, तो पुराणों में निहित जानकारी साक्ष्यात्मक प्रकृति का आनंद लेगी और ज्ञान का वह भंडार विज्ञान में आधार ग्रहण करेगा। इसलिए इसके माध्यम से भारतीय भू-भाग के उद्भव का एक आधुनिक भू-वैज्ञानिक संक्षिप्त अवलोकन करते रहना होगा। भारतीय भू-विद्या की समझ गहरी है, इसे आधुनिक विज्ञान ने उसका सम्मान करके नहीं समझा है। इसको सम्मानीय और विश्वसनीय बनाने की आवश्यकता है। भू का सम्पूर्ण स्वरूप हमें आंखों या यंत्रों से नहीं दिखता, हमें उसका कुछ अहसास व आभास सत्य की तरफ भी लेकर जाता है; उसे हम आध्यात्मिक विज्ञान अर्थात् 'विद्या' द्वारा ही खोज सकते हैं।

भारतीय उपमहाद्वीप को तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता हैः-

1) हिमालय उत्तरी सीमा बनाता है और बलूचिस्तान से म्यांमार तक फैला हुआ है (इस सीमा से परे पामीर और तिब्बत के पठार हैं)।
2) दक्षिणी प्रायद्वीप पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों से घिरा है और उत्तर में विंध्य पर्वतमाला से घिरा है
3) सिंधु-गंगा बेसिन पहले दो के बीच स्थित है।

पहले दो क्षेत्र सुदूर प्राचीन काल में एक दूसरे से अलग थे और टेथिस सागर ने उस स्थान पर कब्जा कर लिया था जहां आज तीसरा है। दक्षिणी प्रायद्वीप गोंडवानालैंड के नाम से जाने जाने वाले विशाल, निरंतर भूमि द्रव्यमान का हिस्सा था, जिसने लगभग 65 मिलियन वर्ष पहले पृथ्वी की परत में भारी भू-गर्भीय उथल-पुथल के परिणामस्वरूप इससे अलग होकर अपनी वर्तमान स्थिति पर कब्जा कर लिया था। दोहराने की जरूरत नहीं है कि, भारतीय भूमि की वर्तमान स्थिति को देखते हुए यह

घटना सबसे महत्वपूर्ण थी। पामीर-तिब्बती पठारों और प्रायद्वीप के 5-6 बार एक-दूसरे की ओर बार-बार खिसकने के बाद, टेथिस सागर से गाद सिलवटों में ऊपर फेंकी गई, जिससे लगभग एक-दूसरे के समानांतर हिमालय श्रृंखला का निर्माण हुआ। यह प्रक्रिया अभी भी धीरे-धीरे दिन-प्रतिदिन जारी है? जिससे हिमालय की ऊंचाई अभी भी निरन्तर, लेकिन बहुत धीमी गति से बढ़ती जा रही है। दो भू-भागों के जंक्शन पर (या जहां अब हमारे समय में गंगा बेसिन है) समुद्र के अवशेष ज्वालामुखी विस्फोटों के लावा से भर गए थे। भूमि के दोनों ओर बहने वाली नदियों द्वारा लाई गई गाद ने उस प्रक्रिया को पूरा किया, जिसके द्वारा अखंड सिंधु-गंगा बेसिन अस्तित्व में आया। अरावली पर्वतमाला, खंभात की खाड़ी से लेकर दिल्ली के परिवेश से होते हुए हिमालय तक भूमिगत फैली हुई है। हिमालय और अरावली का योग अधोभूजल है। इस पर आज काम करने की जरूरत है। हिमालय-अरावली संबंध को आधुनिक विज्ञान भी स्पष्ट रूप से बताता है कि, यहां की प्राचीन भू-विद्या समुद्र के परिवर्तन से भी जुड़ी हुई थी। ब्रिटिश शासन के तहत बनाई गई संस्था, भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण द्वारा पहाड़ों और घाटियों में किए गए क्षेत्र अनुसंधान से प्राप्त निष्कर्ष, खनिज अन्वेषण के दौरान विभिन्न संगठनों द्वारा एकत्र किए गए आंकडों के साथ-साथ अन्य देशों में किए जा रहे समान कार्यों से, क्षेत्रों के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं। आग्नेय चट्टानी संरचनाओं से आच्छादित विषय पर नीचे चर्चा की गई है।

आग्नेय चट्टानों से बने क्षेत्र भारत के मानचित्र पर निम्नलिखित क्षेत्रों में दिखाई देते हैं-

4.1.1 बेसाल्टिक (काली/गहरे भूरे रंग की चट्टानें) मध्य क्षेत्र-

मध्य भारत का एक बड़ा हिस्सा डेक्कन ट्रैप की काली बेसाल्टिक चट्टानों से बना है। ये आग्नेय चट्टानें हैं और इनका निर्माण वर्तमान से 138 मिलियन वर्ष पहले मेसोज़ोइक काल के अंत में कार्थ की परत के नीचे से निकले लावा की भारी मात्रा से हुआ था। यह कच्छ, काठियावाड़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और महाराष्ट्र के दक्षिण में कुछ क्षेत्र में लगभग 5,18,000 किमी^{2} तक फैला हुआ है, विशेषज्ञों का मानना है कि एक समय में यह कम से कम 1.295 मिलियन किमी^{2} क्षेत्र को कवर करता था। हजारों वर्षों के क्षरण और भू-वैज्ञानिक प्रक्रियाओं ने इसके वर्तमान को टूटा हुआ, असंतत स्वरूप प्रदान किया है।

विभिन्न स्थानों में चट्टानों के अध्ययन से पता चलता है कि यह बेसाल्टिक विस्तार दक्षिण में बेलगाम और दक्षिण-पूर्व में राजमहेंद्री से लेकर उत्तर-पश्चिम में पश्चिमी सिंध और पूर्व में बिहार और बंगाल की सीमा के पास राजमहल पहाड़ियों तक फैला हुआ है। लावा के कुछ भंडार वर्तमान पश्चिमी तट से परे समुद्र की सतह के नीचे भी फैले हुए हैं। कुछ मामलों में लावा पृथ्वी की पपड़ी में लंबे और संकीर्ण छिद्रों (दरारों)

से निकला और क्षैतिज रूप से काफी दूरी तक बह गया, जबकि कुछ ट्यूबलर चैनलों के माध्यम से ऊर्ध्वाधर रूप से ऊपर चढ़कर कार्थ की सतह पर बने गड्ढों से बाहर निकला।

पुरानी बेसाल्ट चट्टानों की दो परतों के जंक्शन पर बाद के लावा विस्फोटों की घुसपैठ ने या तो चट्टान की लगभग-ऊर्ध्वाधर चादरों को जन्म दिया है, जिन्हें 'डाइक्स' कहा जाता है या निकट-क्षैतिज बैंड को जन्म दिया है, जिन्हें 'सिल्स' के रूप में जाना जाता है। इन्हें सौराष्ट्र, गुजरात, नर्मदा और तापी घाटियों, सतपुड़ा क्षेत्र, कोंकण के उत्तर और पश्चिमी आंध्र प्रदेश में बड़े पैमाने पर देखा जा सकता है। लावा के ऊर्ध्वाधर आउटलेट, जिन्हें 'वेंट' के नाम से जाना जाता है, महाराष्ट्र के पुणे और सतारा जिलों में बड़ी संख्या में देखे जा सकते हैं, तथा कोल्हापुर व रत्नागिरी जिले.में कुछ कम घटनाएँ देखी जा सकती हैं।

इसी राज्य के रत्नागिरी जिले. में बेसाल्टिक क्षेत्र के भीतर स्थित एक विशेष भू-आकृतिक विशेषता है, जिसे 'नर्मदा-सोन लाइनमेंट' के नाम से जाना जाता है। यह मूल गोंडवानालैंड द्रव्यमान के उस हिस्से के संबंध में देखी गई है, जो दूर बहकर दक्षिणी प्रायद्वीप बनाती है। यह मोटे तौर पर पश्चिम में मेडागास्कर से शुरू होती है और पूर्व में ब्रह्मपुत्र तक जाती है। यह पृथ्वी की पपड़ी में एक लंबी खरोंच या नाली के समान 15-20 किमी चौड़ी एक रेखा है। भू-वैज्ञानिक खोजों से संकेत मिलता है कि इस पट्टी की चट्टानें 2.5 अरब वर्ष से भी पुरानी हैं और प्राचीन काल से ही नदियाँ यहाँ से बहती रही होंगी। हमारे युग में इस पट्टी पर नर्मदा और सोन का कब्जा है। वर्तमान असम में ब्रह्मपुत्र का प्रवाह संभवतः इसी खांचे में था। जिस प्रकार लावा के विस्फोट से इस घाटी में आग्नेय चट्टानों का निर्माण हुआ; उसके बाद लावा के विस्फोट से ही कई बांध उत्पन्न हुए। इस रेखा के समीप कई ज्वालामुखीय क्रेटर/वेंट खोजे गए हैं। इसी तरह की एक दरार घाटी, जिसे प्राणहिता-गोदावरी दरार घाटी के नाम से जाना जाता है, गोदावरी बेसिन में भी मौजूद है और इसकी चौड़ाई लगभग 60 किमी है। इस घाटी का महाराष्ट्र तक फैला हिस्सा बेसाल्टिक चट्टान के नीचे छिपा हुआ है। यह देखा गया है कि भू-पटल में परिवर्तन और ज्वालामुखी गतिविधि एक दूसरे से संबंधित हैं (जैसे-नर्मदा दरार घाटी में विस्फोट)। विभिन्न युगों में बनी आग्नेय चट्टानें राजस्थान में जोधपुर के पास, पश्चिमी पंजाब के कुछ हिस्सों और बुन्देलखण्ड में भी पाई जाती हैं।

4.1.2 बलूचिस्तान, कश्मीर, नेपाल से लेकर बर्मा, हिमालय क्षेत्र तक-

बलूचिस्तान से लेकर बेल्ट तक कई स्थानों पर रचाइट विस्फोट हुआ। गंगा-सिंधु घाटियों और म्यांमार के तीसरे पूर्व भाग में मिलानिक विस्फोट या क्षेत्र हयास आग्नेय और रूपांतरित चट्टानों से बना है। इनर हिमालय के बड़े हिस्से में बड़े पैमाने पर लावा फूटने का अनुभव हुआ, इसी तरह कश्मीर के काफी क्षेत्रों का निर्माण

कार्बोनिफेरस काल में ज्वालामुखी विस्फोटों के माध्यम से हुआ है, जैसे पीर पंजाल, जास्कर पर्वत, लद्दाख और झेलम बेसिन।

4.1.3 पूर्वी भारत –

बंगाल-बिहार सीमा पर राजमहल पहाड़ियाँ आग्नेय हैं। सोन और दामोदर, असम और दार्जिलिंग पहाड़ियों की घाटियों में डाइक देखे जा सकते हैं।

4.1.4 दक्षिण भारत-

डेक्कन ट्रैप के दक्षिण में कन्याकुमारी तक के क्षेत्र में पाए जाने वाले असंख्य बांधों से यह स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में भी ज्वालामुखी गतिविधियां हुई थी। ये बाँध सोना, हीरे और माणिक आदि से समृद्ध हैं। उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय उपमहाद्वीप के निर्माण में विभिन्न भागों में हुए ज्वालामुखी विस्फोटों ने महŸवपूर्ण भूमिका निभायी थी। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि भारतीय भूमि के लावा और इस प्रकार, तापीय ऊर्जा- "अग्नि" के साथ एक अविभाज्य संबंध है।

प्राचीन भारतीय साहित्य के भू-वैज्ञानिक आंकड़े-

एक ओर प्राचीन भारतीय साहित्य में पायी गई अवधारणाओं और दूसरी ओर लावा विस्फोट और भू-आकृति विज्ञान द्वारा आग्नेय चट्टान की उत्पत्ति के आधुनिक ज्ञान के बीच सहसंबंध की जांच से निम्नलिखित निष्कर्ष निकले हैं।

टेक्टोनिक हलचल का संकेत देने वाला सबसे पहला संदर्भ पौराणिक समुद्र मंथन में पाया जा सकता है; जिसे हिंदू पौराणिक कथाओं में समुद्रमंथन के रूप में जाना जाता है। इस मंथन के उत्पादों में से एक हलाहल नामक जहर था, जिसकी तुलना ज्वालामुखी विस्फोट से की जा सकती है। वाल्मिकी रामायण के बाल कांड में कार्तिकेय के जन्म की कथा में ज्वालामुखी गतिविधि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसी तरह, ऐसा लगता है कि, ऋषि कपिल मुनि के क्रोध के कारण भगीरथ के पूर्वजों के आत्मदाह का वर्णन (स्वर्ग से गंगा के अवतरण की कहानी में) अचानक ज्वालामुखी विस्फोट में उनकी आकस्मिक मृत्यु का एक रूपक है।

वाल्मिकी रामायण के उत्तर कांड के सर्ग 81 में दंडकारण्य के निर्माण का श्रेय ज्वालामुखियों को दिया गया है। इसके अलावा, मत्स्य और वायु पुराणों में अग्नि राजवंश के बारे में उल्लेख, जिसमें कहा गया है कि, एक विशेष प्रकार की अग्नि (आग) सोलह नदियों से जुड़ी थी, ज्वालामुखी गतिविधि का भी संकेत दे सकती है। जबकि मत्स्य पुराण कहता है कि, यह अग्नि सोलह नदियों के बीच इत्मीनान से काम करती थी, वायु पुराण इसे वास्तव में उन्हें बनाने का श्रेय देता है। दक्षिण में कावेरी से

लेकर हिमालय में ह्लादिनी और पावनी तक कई नदियों का उल्लेख किया गया है। अग्नि वंश के सन्दर्भ इस प्रकार हैं।

आहवनीय अग्नि ने स्वयं को 16-भागों में विभाजित किया और कावेरी, कृष्णा, वेन्ना, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता (झेलम), चंद्रभागा, इरावती, विपाशा, कौशिकी (कोसी), शतद्रु (सतलज), शरयु, सीता, मनस्विनी ह्लादिनी और पावनी नदियों में निवास किया। इस संघ से जन्मे पुत्रों को धिष्णा या धिष्णु कहा जाने लगा। (मत्स्य पुराण) षष्ठ अग्नि ने सोलह नदियों को जन्म दिया। वे हैं- कावेरी, कृष्णा, वेन्ना, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता (झेलम), चंद्रभागा, इरावती, विपाशा, कौशिकी (कोसी), शतद्रु (सतलज), शरयु, सीता, मनस्विनी, ह्लादिनी और पावनी नदियाँ- (वायु पुराण) ।

"भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण (जीएसआई) के वैज्ञानिकों के अध्ययन में विस्फोटित छिद्रों, लावा की बड़ी नदियों और प्राकृतिक सुरंगों के अवशेष सामने आए हैं। अहमदनगर जिले में सुरंगों और लावा की नदियों के साक्ष्य देखे गए। विस्फोट का केंद्र नासिक जिले के चंदवाड के पास स्थित था; जहां ऐसे प्राचीन लावा प्रवाह के संकेत देखे गए थे। यह स्थान गोदावरी बेसिन का हिस्सा हैं। इस प्रकार अन्य नदियों की घाटियों में भी इसी तरह की खोज की उम्मीद की जा सकती है। पुराण हमें बताते हैं कि, अग्नि कैसे गोदावरी सहित सोलह नदियों के साथ निवास करती थी? और यह अच्छी तरह से कहा जा सकता है कि आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों के निष्कर्ष अग्नि द्वारा इन नदियों के निर्माण के पौराणिक संदर्भों से सहमत हैं। इसके अलावा, यह भी बिल्कुल स्पष्ट है कि, शिव पूजा स्थलों (शिवालयों) की उत्पत्ति के संदर्भ, और पुराणों में पाई गई उनकी सूचियाँ, निष्क्रिय ज्वालामुखियों के स्थानों के अलावा और कुछ नहीं दर्शातीं।

प्राचीन साहित्य में शिव पूजा के स्थान- एक वैज्ञानिक मूल्यांकन-

1) ऋग्वेद- हालांकि ऋग्वेद के छंद 2/72/6 में उल्लेखित 21 गुप्त/छिपे हुए/रहस्यमय स्थानों (गुह्यस्थान) को ज्वालामुखी विस्फोट के स्थानों के रूप में देखना तार्किक रूप से उचित है, लेकिन पाठ में उनकी भौगोलिक स्थिति नहीं बताई गई है।
2) पुराण-शिवपुराण 12 ज्योतिर्लिंगों (शिव पूजा के स्थान) की बात करता है। इस शब्द का अर्थ है- 'ज्योति का प्रतीक' (ज्योति याने लौ और लिंग याने प्रतीक) अर्थात् वह स्थान जहां से लौ निकली थी, याने ज्वालामुखी विस्फोट का स्थान। इन 12 ज्योतिर्लिंगों में से 5 महाराष्ट्र में, 2 मध्य प्रदेश में और 1-1 गुजरात, आंध्र प्रदेश, हिमालय, उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु में हैं। उनमें से एक-वैद्यनाथ का वैकल्पिक स्थान बंगाल के संथाल परगना में माना जाता है।

नर्मदा और तापी के तट क्रमशः 28 और 8 प्राकृतिक रूप से निर्मित (संस्कृत में स्वयंभू के रूप में जाने जाते हैं) शिव पूजा के स्थान हैं। यह क्षेत्र गुजरात, महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश द्वारा साझा किया जाता है। स्कंद पुराण में 54 ऐसे स्थलों का उल्लेख है, जबकि अन्य पुराणों में भी समान संख्या और नाम दोहराए गए हैं।

शिव पूजा के स्थान और जिन्हें शक्तिपीठ (शक्ति पूजा के स्थान) के रूप में जाना जाता है, स्थायी रूप से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। विभिन्न ग्रंथों में इनकी संख्या 51 से 108 तक बताई गई है। यह संभव है कि इनमें से कुछ शक्तिपीठों के शामिल होने से पवित्र शिव स्थलों की संख्या बढ़ सकती है।

दोनों स्थानों के अध्ययन से पता चलता है कि, वे उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में रामेश्वर तक और पश्चिम में सौराष्ट्र से लेकर पूर्व में बंगाल-बिहार सीमा तक फैले हुए हैं। संक्षेप में कहें तो ये पूरे भारत में फैले हुए हैं। हालाँकि, जलोढ़ गंगा-सिंधु बेसिन में उनकी घटना दुर्लभ है।

भारत के विभिन्न स्थानों पर पवित्र शिव स्थलों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि, उपमहाद्वीप का एक बहुत बड़ा हिस्सा आग्नेय है, यह तथ्य प्राचीन काल में ज्ञात था और जिसके आधार पर ज्वालामुखी के विषय का अध्ययन किया गया था।

ऊपर चर्चा किए गए प्राचीन लेखों में निहित जानकारी को उन चार क्षेत्रों के अनुसार समूहीकृत किया जा सकता है जिनमें हमने उपमहाद्वीप को विभाजित किया हैः -

(अ) बेसाल्टिक मध्य क्षेत्र-

(1) केदारेश्वर और रामेश्वर को छोड़कर सभी ज्योतिर्लिंग इसी क्षेत्र में स्थित हैं। (2) वायु पुराण के अनुसार सोलह नदियों में से तीन नर्मदा, कृष्णा और गोदावरी नदियों के मार्ग के प्रमुख खंड, जो अग्नि द्वारा निर्मित हुए थे- इस बेसाल्टिक क्षेत्र से होकर प्रवाहित होते हैं। (3) नर्मदा पर 28 पवित्र, स्वयं निर्मित (स्वयंभू) शिव स्थल और तापी पर 8 स्थल, जिनका पहले उल्लेख किया गया है, सभी इस क्षेत्र में हैं। (4) दंडकारण्य भी इसी क्षेत्र में स्थित है।

(ब) बलूचिस्तान, कश्मीर, नेपाल से बर्मा, हिमालय क्षेत्र-

(1) पशुपतिनाथ, केदारनाथ (12 ज्योतिर्लिंगों में से एक) और कैलाश पर्वत जैसे पवित्र शिव स्थल हिमालय क्षेत्र में स्थित हैं। कैलास को स्वयं शिव का निवास स्थान माना गया है। इसलिए, वहां विस्फोट विशेष रूप से प्रचुर और महŸवपूर्ण रहा होगा। (2) वायु पुराण के अनुसार अग्नि द्वारा निर्मित सीता, ह्लादिनी और पावनी नदियाँ इन परिवेशों में स्थित हैं। (3) चूंकि वायु पुराण में पंजाब और कश्मीर में बहने वाली झेलम, चंद्रभागा (चिनाब), इरावती (रावी), विपाशा (ब्यास) या शुतुद्री (सतलुज) जैसी

नदियों के निर्माण का श्रेय अग्नि को दिया गया है, इसलिए यह स्पष्ट है कि इन जल निकायों का ज्वालामुखी से भी कुछ संबंध होना चाहिए।

(स) पूर्वी भारत-(1) वह स्थान जहाँ भागीरथ के पूर्वजों ने कपिल मुनि के श्राप के कारण आत्मदाह किया था, संभवतः भारत के इस भाग में राजमहल पहाड़ियों में स्थित है।

(द) दक्षिण भारत-(1) इस क्षेत्र में कुछ शिव स्थल भी मौजूद हैं; वायु पुराण के अनुसार कावेरी का निर्माण अग्नि द्वारा किया गया था। (2) तमिलनाडु में संपूर्ण अरुणाचल पर्वत, वास्तव में, शिव पूजा की वस्तु के रूप में माना जाता है। (3) 12 ज्योतिर्लिंगों में से एक रामेश्वर इन्हीं भागों में स्थित है।

4.2 भारत की विविधरूपी नदियाँ : स्वरुप एंव विशेषताएं

भारत की नदियां विविधरुपा है; इन्हें जानना सरल नहीं है। भारतीय साहित्य में नदियों के विभिन्न रूपों की बहुत प्रशंसा हुई है। नदियों का साहित्य स्वरूप भारत में हर जगह दिखता है लेकिन यर्थाथ रूप में जानना भी जरूरी है। मैं जब नदियों पर 'सभ्यता की सूखती सरिता' पुस्तक लिख रहा था, तो मुझे बहुत कठिनाई हुई थी। उसी समय नदियों को जानने की विधि पर लेख लिखने का मन बना था; वह काम आज संभव हुआ है। नदियों को जब विविध प्रकार से जानेंगे, तब ही नदियों को समझ सकेंगे।नदी साहित्य, गजट, भारतीय सर्वेक्षण, मानचित्र आदि के साथ-साथ स्थानीय लोगों, सरकारी अधिकारियों, पुराने पंडितों, जानकारों से बातचीत करके, तुलनात्मक जानकारी को देखकर ही उद्गम-संगम-लंबाई, नदी समूह, पर्वतमालाएँ, भू-आकृति आदि से ही पता चला है।

भारतीय भूमि पर बहने वाली हजारों नदियों को बेसिन या घाटी के आधार पर वर्गीकृत करके, उनकी जांच करना और उनका वर्णन करना सुविधाजनक है। प्रत्येक बेसिन जल प्रवाह की एक जटिल प्रणाली है; जिसमें मुख्य नदी, उसकी सहायक नदियाँ, सहायक की सहायक नदियाँ, उपनदियों की सहायक नदियां और छोटी और बड़ी जल शाखाएं शामिल हैं। जैसे-1) सिंधु, (2) गंगा, (3) ब्रह्मपुत्र, (4) बराक, (5) घग्गर, (6ए) लूनी, (6बी) बनास, (6सी) सरस्वती, (6डी) रूपेण, (7) साबरमती, (8) माही, (9) महानदी, (10) नर्मदा, (11) तापी, (12) गोदावरी, (13) कृष्णा, (14) कावेरी, (15) वैगई, (16) गुंडार, (17) वेपर, (18) ताम्रपर्णी, (19) कच्छ प्रायद्वीप में नदियाँ, (20) काठियावाड़ प्रायद्वीप में नदियाँ,(21) पश्चिमी सागर तट की नदियाँ, (22) पूर्वी सागर तट की नदियाँ। चूँकि कच्छ और काठियावाड़ प्रायद्वीप के साथ-साथ पश्चिमी और पूर्वी तटीय पट्टियों की नदियाँ तुलनात्मक रूप से छोटी हैं, इसलिए उन्हें समूहों से जान सकते है।

जल प्रवाह के समग्र परिसर में प्रत्येक नदी या सहायक नदी का सटीक स्थान निर्धारित करना आसान होता है। किसी विशेष घाटी/बेसिन में एक निश्चित वर्ग के जलधाराओं की संख्या निर्धारित कर ऐसे भ्रम से बचाता है, जब एक से अधिक जलधाराओं को समान नामों से जाना जाता है।

जल प्रवाह को वर्गीकृत करने के लिए आमतौर पर इस्तेमाल की जाने वाली प्रणाली 'स्ट्रीम ऑर्डर' नामक संख्याओं का उपयोग करती है ताकि आकार "1" ऑर्डर स्ट्रीम से लेकर सबसे बड़ी, '12 ऑर्डर' स्ट्रीम तक होती है। मुख्य नदी को सबसे अधिक संख्या 12 आवंटित की गई है। हालाँकि, यह मात्रा मुख्य नदी के लिए सबसे छोटी संख्या और उसकी सहायक नदियों के लिए उत्तरोत्तर उच्च संख्या का उपयोग करती है। प्रणाली किसी भी नदी के बारे में विविध जानकारी की त्वरित और सुविधाजनक पुनर्प्राप्ति की सुविधा प्रदान करती है। प्रत्येक जलमार्ग की सूची में स्थान निर्धारित करके सभी उपलब्ध आँकड़े प्राप्त करने चाहिए।

नदियों के बारे में जानकारी के स्रोत-1) स्रोत, (2) संगम, (3) लंबाई, (4) जलग्रहण क्षेत्र, (5) जल संसाधन, (6) परिवहन के लिए उपयोग, (7) मार्ग, (8) सहायक नदियाँ, और (9) परियोजनाएँ; पर कुछ जानकारी (शहर, जिले और अन्य) विशेषताएं भी जाननी चाहिए। एक निश्चित नदी दो या दो से अधिक राज्यों या देशों से होकर बहती है। इतनी जानकारी आम तौर पर सामान्य उद्देश्यों के लिए पर्याप्त होती है। यदि, फिर भी, किसी नदी के बारे में अधिक जानकारी की आवश्यकता होती है, तो अन्य विषयों के संबंध में, उस आवश्यकता को पूरा करने के लिए एक अलग खंड में शामिल कर सकते है। यह जानकारी जिला गजेटियर्स, सिंचाई आयोग की आधिकारिक सरकारी रिपोर्टों, परियोजना रिपोर्टों, सरकारी पत्रिका 'भारतीय भू-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित मानचित्रों से प्राप्त कर सकते है। भारत के भूगोल और नदियों के विषयों पर पुस्तकें विभिन्न राज्यों के राजपत्रों में जलधाराओं का प्रतिनिधित्व लगभग समान था, यह नहीं कहा जा सकता है कि ,विवरण के लिए चुने गए सभी नौ पहलुओं (ऊपर उल्लिखित) पर डेटा सभी जलधाराओं के संबंध में उपलब्ध था। विशेषकर छोटे वाले उनके नामों का उल्लेख मात्र मिलता है, वह भी जानना जरूरी है। नदियों की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने में बहुत बाधाएं होती है। इसी तरह, सटीक आंकड़े प्राप्त करने में कठिनाइयाँ भी आती हैं।

सटीक वर्गीकरण का अभाव रहता हैं, एक ही पानी होने पर मामलों में भ्रम पैदा हो जाता है। गजेटियर्स में पाठ्यक्रम को सहायक नदी और नालों को भी कहीं-कहीं नदी कहा है। लोगों से बातचीत करके ही मुझे यह अंतर समझ में आया था। नदी को जानना बहुत ही कठिन है परंतु असंभव नहीं है। यह कार्य सतत करने की जरूरत होती है।

उच्चारण पर दिशानिर्देश का अभाव रहता है; अधिकांश स्रोत अंग्रेजी में होने के कारण, लिप्यंतरण दिशा निर्देश प्रदान नहीं करते हैं। इसलिए यहां किसी को स्थानीय भाषा के उच्चारण और उसके अंग्रेजी समकक्ष के बीच अंतर का अहसास हो सकता है। क्षेत्रीय भाषाओं में कुछ स्वर और व्यंजन भिन्न होते हैं, ऐसा बेल्जियम की सेल्ड नदी पर मेरे साथ हुआ था। इस नदी बेल्जियम ,फ्रांस और नीदरलैंड के लोग अलग-अलग नाम से पुकारते है जबकि नदी एक ही है। स्थानीय बोलचाल में उसका नाम अलग था, इसलिए पहचान करना बहुत कठिन कार्य हुआ था।

नदी का उद्गम तकनीकी रूप से, प्रारंभिक धारा में पानी की पहली बूंद का स्थान है। इस बिंदु को निर्धारित करने के लिए क्षेत्र के प्रत्येक छोटे जल प्रवाह के विन्यास का सर्वेक्षण आवश्यक है। उनमें से जो सबसे दूर और सबसे ऊंचा है, वह स्रोत है। हालाँकि, इस प्रवाह की पहचान करना हमेशा संभव नहीं हो सकता है, उत्पत्ति का स्थान आमतौर पर मानचित्र पर एक अनुमान होता है। हालाँकि, इस बिंदु को ठीक करने में किसी भी संभावित त्रुटि का नदी की कुल लंबाई की माप पर नगण्य प्रभाव पड़ता है। गंगा जी का उद्गम गौमुख क्षेत्र है; वैसा इसका उद्गम तपोवन मानते है। बहुत बड़ा है, इसलिए जलधारा का उद्गम निश्चित करना कठिन है। भारत में गंगा जी को कुछ लोग तपोवन, गौमुख और गंगोत्री मानते है; परंतु इस नदी की लंबाई गौमुख से गंगासागर 2525 किलोमीटर मानी जाती है। ऐसा ही सभी नदियों के साथ कमोवेश होता है।

नदियों की लंबाई का उल्लेख करते समय, किताबें यह नहीं बताती हैं कि; किस आधार पर इतनी लंबाई निर्धारित की गई थी। संभवतः, इसे वास्तव में भारतीय सर्वेक्षण मानचित्र पर मापकर; सुनिश्चित किया जाता है, क्योंकि यह संभव नहीं है कि, साइट पर माप हर मामले में संभव हो सकता है। यह स्पष्ट है कि इस तरह के माप की विश्वसनीयता मानचित्र के पैमाने और सटीकता, माप लेने के लिए उपयोग की जाने वाली विधि और माप के दौरान बरती जाने वाली सावधानियों पर निर्भर करेगी। उद्गम का निर्धारण कैसे किया गया, यह भी एक भूमिका निभाता है और, यदि नदी में बार-बार मार्ग परिवर्तन की संभावना है, तो लंबाई किस वर्ष से संबंधित है, यह भी एक महत्वपूर्ण कारक बन जाता है। यह भी उतना ही स्पष्ट होगा कि, अनुमान की विश्वसनीयता इस बात पर निर्भर करेगी कि नदी में प्रत्येक मोड़ का कितनी सावधानी से हिसाब लगाया गया है या औसत दूरी मानने के लिए सहारा लिया गया है।

ये सभी कारक किसी को संदेह की ओर ले जाते हैं कि, क्या किसी नदी की लंबाई निश्चित रूप से बताई जा सकती है, यही कारण है कि यह अपरिहार्य है कि विभिन्न स्रोतों द्वारा दिए गए एक ही नदी की लंबाई के आंकड़ों में भिन्नताएं मौजूद होंगी। यही बात नदी बेसिन और जलग्रहण क्षेत्र के बारे में भी सच है।

हाल के दिनों में कुछ नये राज्य बनाए गये हैं। इसी तरह, राज्य के भीतर भी नए जिले बनाए गए हैं। इससे नई प्रशासनिक आवश्यकताओं के अनुसार नदी की लंबाई या जलग्रहण क्षेत्र का विभाजन आवश्यक हो गया है। नई जानकारी उपलब्ध होने पर अद्यतन करना आवश्यक होगा। यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त सावधानी बरतनी चाहिए। जहां तक संभव हो, नवीनतम मानचित्रों का अवलोकन किया जाये और पुराने आंकडों में उपयुक्त संशोधन किए जायें; ताकि इसे पुनर्गठित जिलों के अनुरूप बनाया जा सके। ऐसी कुछ सीमाओं को छोड़कर, यह सुनिश्चित करने के लिए सभी आवश्यक सावधानियां बरतनी चाहिए; तभी जानकारी यथासंभव सटीक होगी।

हिमालय श्रृंखला धाराओं को उनके पाठ्यक्रम की लंबाई के अनुसार तीन या चार नामों से जाना जाता है। भ्रम को बढ़ाने के लिए, कुछ धाराएँ शाखाएँ विकसित करती हैं जैसे बहुत से लोग एक साथ जुड़ते हैं और फिर अलग हो जाते हैं। किसी विशेष वर्ष में एक शाखा में प्रवाह अधिक होता है, दूसरे में अगले वर्ष में अधिक। यह सब उनकी सुनिश्चित्ता का प्रतिपादन करता है; इसी से नदियों को समझा जा सकता है। किसी देश की सभ्यता और देश को जानना है तो नदियों को जनना जरूरी होता है। आपको नदी जानने की विधि मर्यादायों के साथ यहां समझने में मदद मिलेगी। आओ नदी को जाने और नदियों से जुड़े; ये ही हमें सब कुछ सिखाती है।

भागीरथी, गंगा जी सभी की खेती, जीवन, जीविका और जमीर के साथ आस्था व भक्ति भाव की मिशाल बनाने का काम आज की प्रौद्योगिकी, अभियांत्रिकी और विज्ञान नहीं कर रहा है। यह काम तो ऊर्जा सृजन से होता है। गंगा जल की विलक्षण प्रदूषण नाशनी ऊर्जा गंगाजल में पैदा करके, गंगाजल को ब्रह्य सत्व बनाती थी। इसी ब्रह्य सत्व ने गंगाजल को गंगामृत बनाया था। यह गंगाजल का विज्ञान समझने और समझाने वाले ऋषि आज बहुत कम है। ऋषि ही संवेदनाओं व आत्मशोधन से सत्य को खोजता था। विज्ञान और वैज्ञानिक प्रक्रिया मनुष्य के अंदर ऋषित्व पैदा करके सत्य खोजती थी। वही आध्यातिमक विज्ञान कहलाता था। ऐसे वैज्ञानिक अपनी खोज को साकार कराने हेतु अपना शरीर का त्याग भी कर देते है; जैसे -प्रो. जी.डी. अग्रवाल। उन्हें हम 'ऋषि सानंद' के नाम से जानने लगे है। वे अपनी मां गंगा जी हेतु प्राणों का बलिदान कर चुके है।

आध्यात्मिक विज्ञान, व्यवहार-संस्कार से जीवन की जरूरत पूरी करने वाला ही अहिंसक विकास के रास्ते पर मानवता और प्राकृतिक को बराबरी से आगे बढ़कर 'अक्षय' सनातन विकास के रास्ते पर चलाता है। भारतीय इस पुनर्जनन प्रक्रिया को

ही विकास कहते थे। इस सत्य को केवल संवेदनशील वैज्ञानिक ही जानते व समझते हैं। वही इस विज्ञान के विषय में बिना डरे बोलते हैं।

खेती में संवेदनशील विज्ञान ही हमें आज भी आगे बढ़ा सकता है। इसी रास्ते से खेती प्रधान भारत वर्ष के किसान पूरी दुनिया को कुछ नया सिखा सकते है। यही आधुनिक दुनिया के प्राकृतिक संकट का आधुनिक संकट जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन व उन्मूलन द्वारा समाधान करने वाला विज्ञा, अभियांत्रिकी और प्रौद्योगिकी विद्या से जुड़कर इसके आधीन बनकर आज भी साकार सिद्ध हो सकते हैं।

4.3 नदियों का वर्गीकरण

वर्तमान में प्रचलित प्रणालियों के अनुसार, भारतीय नदियों को आम तौर पर दो मुख्य प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है, एक गंगा-सिंधु घाटियों में, जिनका स्रोत हिमालय में है, और दूसरी पेन्सुलर वे जो प्रायद्वीपीय भारत में निकलती हैं। भारत में तीन प्रायद्वीप विद्यमान हैं-(1) दक्षिणी प्रायद्वीप (2) काठियावाड़ प्रायद्वीप और (3) कच्छ प्रायद्वीप। दक्षिणी प्रायद्वीप में पर्वत श्रृंखलाएँ हैं-(1) पश्चिमी घाट, (2) पूर्वी घाट, (3) अरावली और (4) मध्य भारत में विंध्य, सतपुड़ा आदि।

दक्षिणी प्रायद्वीप में नदियों को उन पर्वत श्रृंखलाओं के अनुसार देखा जाए जिनमें उनका उद्गम स्थित है। अरावली रेंज से निकलने वाली कुछ नदियाँ उत्तर की ओर सिंधु-गंगा बेसिन (जैसे चंबल) में बहती हैं, जबकि कुछ दक्षिण की ओर बहती हुई सिंधुसागर या अरब सागर (जैसे साबरमती, माही) में गिरती हैं। इसी तरह, कुछ मध्य भारतीय नदियाँ पश्चिम की ओर बहती हैं और सिंधुसागर (जैसे नर्मदा) में गिरती हैं, कुछ अन्य उत्तर की ओर गंगा बेसिन (जैसे शोण) में बहती हैं।

पूर्व की ओर बहती हैं (जैसे महानदी) गंगासागर या खाड़ी में मिलती हैं। बंगाल. पश्चिमी घाट से निकलने वाली नदियाँ दो श्रेणियों में आती हैं। 1. पश्चिम की ओर जाने वाली, यानी सिंधुसागर में गिरने वाली (उदाहरण के लिए कोंकण, केरल की नदियाँ) और 2. पूर्व की ओर जाने वाली, यानी गंगासागर (जैसे गोदावरी) में गिरने वाली नदियाँ। पूर्वी घाट की नदियाँ गंगासागर (जैसे ब्राह्मणी) में गिरती हैं।

स्रोत के अलावा अन्य वर्गीकरण प्रणालियाँ भी मौजूद हैं। इनमें से एक आमतौर पर बेसिन के क्षेत्र के अनुसार उपयोग किया जाता है और नदियों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत करता हैः बड़ी, मध्यम और छोटी। 20,000 वर्ग किमी से अधिक क्षेत्रफल वाली जलग्रहण क्षेत्र वाली नदियाँ। 'बड़े' हैं, जो 20,000 से 2,000 वर्ग किमी के बीच हैं। "मध्यम' हैं, और जो 2,000 वर्ग किमी से कम में फैले हैं, वे 'छोटे" हैं। जिन नदियों का प्रवाह रेगिस्तान में समाप्त हो जाता है उन्हें 'छोटी' माना जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय और अंतरराज्यीय वर्गीकरण

किसी क्षेत्र से होकर बहने वाली नदी के बेसिन की सीमा प्राकृतिक कारकों से निर्धारित होती है, इसकी राजनीतिक सीमाएँ नहीं होती हैं, राजनीतिक, भाषाई, सांस्कृतिक और ऐसे अन्य विचारों से तय होती हैं। एक प्रमुख नदी अपने स्रोत से अपने समुद्री गंतव्य तक एक ही राज्य से होकर शायद ही कभी बहती है। वास्तव में, इसके बेसिन का क्षेत्र कई राज्यों में विभाजित हो जाता है और यह एक अंतरराज्यीय चरित्र ग्रहण कर लेता है। अंतरराष्ट्रीय नदियों के मामले में भी ऐसा ही होता है।

एक से अधिक राज्यों से होकर बहने वाली या दो राज्यों के बीच सीमा बनाने वाली नदी "अंतरराज्यीय नदी" होती है। इसी प्रकार, दो या दो से अधिक देशों से होकर बहने वाली या दो देशों के बीच सीमा बनाने वाली कोई भी नदी 'अंतर्राष्ट्रीय नदी' है। सिंधु, गंगा, बराक और ब्रह्मपुत्र अंतर्राष्ट्रीय नदियाँ हैं। भारत सिंधु नदी को चीन (वास्तव में तिब्बत), पाकिस्तान और अफगानिस्तान के साथ साझा करता है; चीन (तिब्बत), नेपाल और बंगला देश के साथ गंगा; ब्रह्मपुत्र चीन (तिब्बत), भूटान और बांग्ला देश के साथ और बराक म्यांमार (बर्मा) और बांग्ला देश के साथ।

भारत की लगभग सभी प्रमुख नदियाँ 'अंतरराज्यीय' हैं। हालाँकि, पश्चिमी और पूर्वी घाट की कुछ नदियाँ ऐसी नहीं हैं।

नदियों को कभी-कभी प्रकृति या व्यवहार के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है, इस प्रकारः

1) हिम-पोषित या पूरी तरह से वर्षा-पोषित,
2) स्थिर या अस्थिर (पाठ्यक्रम के व्यवहार के अनुसार),
3) भूवैज्ञानिक परिवर्तनों (जैसे उत्थान, मोड़ या दरार) द्वारा निर्मित या निर्मित चैनल,
4) जलोढ़ या आधारशिला
5) वे जो महासागरों में बह जाते हैं और वे जो नहीं बहते,
6) हिमालयी नदियों के मामले में, चाहे पूर्ववर्ती (हिमालयी क्षेत्र के उत्थान से पहले से मौजूद) या परिणामी।

(i) हिम-पोषित या पूरी तरह से वर्षा-पोषित - हिमालय की नदियाँ (जैसे सिंधु, गंगा, ब्रह्मपुत्र) और उनकी हिम-पोषित सहायक नदियाँ (जैसे रामगंगा) हिम-पोषित वर्ग के अंतर्गत शामिल हैं। गर्मियों के दौरान बर्फ पिघलने से इन नदियों को पानी मिलता है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि वे साल भर बहती रहें। अन्य, यानी पूरी तरह से वर्षा आधारित प्रकार की नदियाँ, मुख्य रूप से बरसात के मौसम में पानी की आपूर्ति प्राप्त करती हैं और मानसून से गर्मियों तक प्रगतिशील शुष्कता का

सामना करती हैं (उदाहरण के लिए, नर्मदा, तापी, कृष्णा, गोदावरी, कावेरी, आदि)। कुछ नदियाँ गर्मियों में पूरी तरह सूख जाती हैं (उदाहरण के लिए, कोंकण की नदियाँ)।

(ii) स्थिर या अस्थिर नदियाँ - नदियों को 'स्थिर' के रूप में जाना जाता है जब रूपात्मक पैटर्न, प्रोफ़ाइल, आयाम या ढलान जैसी विशेषताएं बड़ी अवधि में केवल सीमित परिवर्तन से गुजरती हैं, जबकि ऐसी विशेषताओं में अक्सर भिन्नता होती है। ऐसी स्थिर नदियाँ अपनी विशेषताओं को हाइड्रोलॉजिकल और भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार इस तरह समायोजित करती हैं कि उनका लगभग पूरा तलछट समुद्र में बह जाता है। गोदावरी और कृष्णा स्थिर नदियों के उदाहरण हैं । हालाँकि, सिंधु-गंगा बेसिन में कुछ नदियाँ बार-बार अपना रास्ता बदलती रहती हैं, जिससे तलछट का अत्यधिक जमाव होता है या चट्टान/तटों का क्षरण होता है, जिसके परिणामस्वरूप क्षरण (नदी के ढलान में कमी) या उन्नयन (नदी के ढलान में वृद्धि) होता है। क्रमश। इस विशेषता की दृष्टि से ऐसी नदियाँ 'अस्थिर' होती हैं जैसे - बिहार की कोशी नदी।

(iii) चैनल आकार में (आधार चट्टान) या भूवैज्ञानिक परिवर्तन (जैसे उत्थान, मोड़ या) द्वारा निर्मितदरार)-

दक्षिणी भारतीय प्रायद्वीप की नदियाँ सहस्राब्दियों की अवधि में अपनी धाराओं के बल से प्राकृतिक रूप से चट्टान में बने चैनलों के माध्यम से पहाड़ों से मैदानी इलाकों की ओर बहती हैं। गोदावरी, कृष्णा और भीम इस घटना के उदाहरण हैं। दूसरी ओर, कुछ नदियाँ पृथ्वी की पपड़ी के मुड़ने या फटने से बने चैनलों के माध्यम से बहती हैं। नर्मदा इस घटना का एक उदाहरण है। 'एंटीसेडेंट रिवर' की घटना हिमालयी नदियों के मामले में देखी जाती है, जो उस पर्वत श्रृंखला के निर्माण से पहले की अवधि से अस्तित्व में थीं, और अपने संबंधित, अच्छी तरह से परिभाषित चैनलों के माध्यम से बहती थीं। जब हिमालय का निर्माण हो रहा था तब इन चैनलों में उत्थान की प्रक्रिया हुई, जिसके परिणामस्वरूप अन्य नदियों के साथ उनके संगम की ओर प्रवाह कुछ अवधि के लिए रुक गया, जिससे पूल और झीलों का निर्माण हुआ। समय के साथ, ये नदियाँ इन झीलों के किनारों पर बहती थीं और संगम की ओर पहले की तरह बहने के लिए उभरी हुई चट्टान को काटकर अपना रास्ता खोज लेती थीं। ऐसी नदियों को "पूर्ववर्ती" कहा जाता है, जिनमें से रामगंगा (गंगा की एक सहायक नदी) एक उदाहरण है। इस क्षेत्र में हिमालय के निर्माण के बाद बनने वाली नदियों को "परवर्ती" के रूप में जाना जाता है।

(iv) जलोढ़ एवं चट्टानी नदियाँ - गंगा-यमुना बेसिन के मुख्य रूप से गाद वाले क्षेत्र की नदियाँ 'जलोढ़' हैं, जो अक्सर घुमावदार और बदलती चैनल प्रोफाइल की विशेषता रखती हैं। उनके द्वारा लायी जाने वाली गाद का अनुपात गोदावरी, कावेरी या कृष्णा जैसी नदियों में पाए जाने वाले गाद से अधिक है। दरअसल, इन नदियों में अधिक मात्रा में गाद ही अनेक कठिनाइयों का कारण बनती है।

चट्टानी नदियाँ मैदानी इलाकों के चट्टानी इलाकों में बहती हैं, उनके चैनल स्थिर होते हैं और उनमें कम गाद होती है (जैसे गोदावरी)। बार-बार मार्ग परिवर्तन और व्यापक कटाव या जमाव नहीं देखा जाता है, केवल समुद्र के साथ संगम के निकट एक प्रमुख नदी को छोड़कर जहां डेल्टा का निर्माण हो सकता है।

(v) नदियाँ जो समुद्र में नहीं गिरतीं, या 'वर्जिन' नदियाँ- नदियाँ, ज्यादातर मामलों में, अंततः अपनी सहायक नदियों के पानी के साथ समुद्र में मिल जाती हैं, जिसके कारण समुद्र को 'नदियों का पति' के रूप में शास्त्रीय वर्णन किया गया है। हालाँकि, गुजरात और राजस्थान में कुछ नदियाँ समुद्र से बिल्कुल नहीं मिलती हैं, और अपने रास्ते में कहीं-कहीं रेगिस्तान में चली जाती हैं। ऐसी नदियों के मामले में, समुद्र सख्ती से 'पति' के रूप में योग्य नहीं हो सकता है, और वे नदियाँ 'कुमारी' (= कुंवारी) नदियाँ ही रहती हैं। (इस शास्त्रीय संस्कृत शब्दावली का पुराणों में नर्मदा को कुमारी नदी कहे जाने से कोई संबंध नहीं है) ।

(vi) नदियों का 'कटावपूर्ण' और 'डेल्टा-निर्माण' व्यवहार वर्गीकरण की एक अन्य विधि भी प्रदान करता है।

चंबल बीहड़ के लोगो ने विशेषकर सवाईमाधौपुर, करौली, धौलपुर में जल संरक्षण करके अपने आप को पानीदार बनाया है। यहाँ लोगों ने बन्दूकें छोडी वो विश्व जल शान्ति दूत बनकर, जल संरक्षण करने के लिए दूसरे लोगो को तैयार करने हेतु जुट गये। उन्होने अपनी छोटी- छोटी नदियों को भी शुद्ध सदानीरा बना लिया; इनमें महेश्वरा, शैरनी, नहरो, तिवरा, बामनी आदि दर्जनों नदियां अब शुद्ध सदानीरा हो गयी। पहले ये बरसाती बनकर, सूखकर मर गयी थी, जैसे ही ये नदियां सूख कर मरी थी; वैसे ही यहाँ की सभ्यता भी हिंसा से सूख कर मर गयी थी। अब नदियाँ पुनर्जीवित हुई है तो यहां पुर्नप्रेम से अहिंसामय सभ्यता पुनर्जीवित हो गयी है।

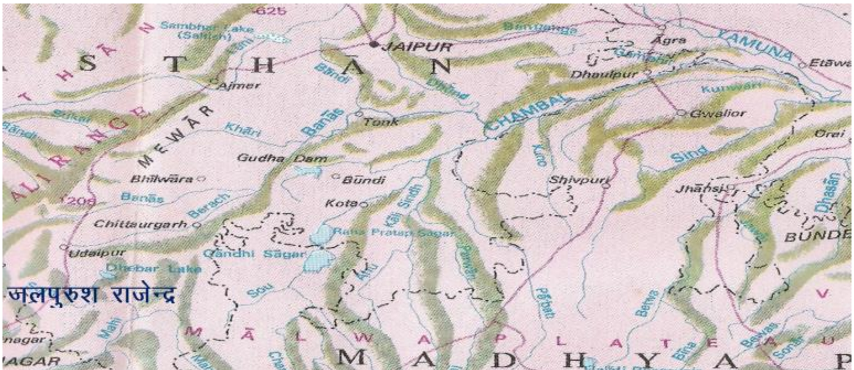

चित्र 4.1: नदियों का वर्गीकरण

राजस्थान के सवाई माधोपुर, दौसा, करौली, धौलपुर तथा मध्यप्रदेश के भिंड, मुरैना, श्योपुर, शिवपुरी, ग्वालियर उत्तर प्रदेश के इटावा जालौन, उरई आदि क्षेत्रों को यहाँ की वर्षा और हवा बीहड़ बनाती है। चंबल जिसे हम चंबल के बीहड़ क्षेत्र कहते है वो केवल चंबल नदी बेसिन क्षेत्र ही नही है, ये क्षेत्र आगरा ग्वालियर तक फैले हुए है, उक्त वर्णित तीनों राज्यों के बीहड़ चंबल बीहड़ कहलाते है। यहां पहले सम्पूर्ण क्षेत्रो में बन्दूको की धमक थी। अब यह सम्पूर्ण क्षेत्र शान्ति के रास्ते पर आगे बढ़ रहा है।जल की उपलब्धता ने इस क्षेत्र के युवाओं में बन्दूकों को छोड़कर खेती की तरफ रूझान बढ़ाया है। मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश में पर्याप्त रोजगार नहीं है। राजस्थान में भी सभी को खेती में पर्याप्त रोजगार, तरुण भारत संघ द्वारा जल उपलब्ध कराये गये सिंचाई जल से मिले है। लेकिन अतिरिक्त रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने की जरूरत है।

चित्र 4.2 : चम्बल, क्षिप्रा कालीसिंध और पार्वती नदियों का उद्गम और अंत

चंबल नदी मध्य भारत में यमुना नदी की सहायक नदी है। यह नदी जानापाव पर्वत बांगचु पॉइंट महू से निकलती है। इसका प्राचीन नाम चर्मण्वती है। इसकी सहायक नदियाँ शिप्रा, सिन्ध, काली सिंध और कुनू नदी है।यह नदी भारत में उत्तर तथा उत्तर-मध्य भाग में राजस्थान के चित्तौड़गढ़ के चौरासीगढ से आरंभ होकर कोटा, धौलपुर, सवाई माधोपुर, मध्य प्रदेश के धार, उज्जैन, रतलाम, मंदसौर, भिंड, मुरैना आदि जिलो से होकर बहती है। यह नदी दक्षिण की ओर मुडकर, उत्तर प्रदेश राज्य में यमुना में शामिल होने के पहले राजस्थान और मध्यप्रदेश के बीच सीमा बनाती है। चंबल एक बारहमासी नदी थी।अभी इस पर बने बांधों ने इसे बरसाती बना दिया है। इस नदी का उद्गम राजस्थान और मध्यप्रदेश है।

इस नदी पर चार जल विद्युत परियोजना-गांधी सागर राणा प्रताप सागर, जवाहर सागर और कोटा बैराज चल रही है। प्रसिद्ध चूलीय जलप्रपात चंबल; चंबल नदी रावतभाटा जिले में है चोलिया जलप्रपात की ऊंचाई 18 मीटर है और यह राजस्थान

का सबसे ऊँचा जलप्रपात है। कुल लम्बाई 1351 राजस्थान की औघोगिक नगरी कोटा इस नदी के किनारे स्थित है। इसका उद्गम स्थल जानापाव की पहाड़ी मध्यप्रदेश के दक्षिण में महू शहर के इंदौर के पास विंध्य रेंज में मध्यप्रदेश, दक्षिण ढलान से होकर गुजरती है। इसकी सहायक नदियां उतर पश्चिमी मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र के नाले जबकि, इसकी सहायक नदी बनास अरावली पर्वत से शुरू होती है, इसमें मिल जाती है। सवाईमाधौपुर में चम्बल, बनास, सीप नदी त्रिवेणी संगम बनाती है। चंबल, कावेरी, यमुना, सिंधु, पहुज और भरेह नदी (पंचनदा) के पास में उत्तर प्रदेश राज्य में जालौन उरई और इटावा जिले की सीमा इनका संगम होता है। यह नदी राजस्थान कि सबसे बडी नदी है।इस नदी में करौली, सवाई माधोपुर तथा धौलपुर में बीहड़ गहरे उबड-खाबड पाए जाते है।

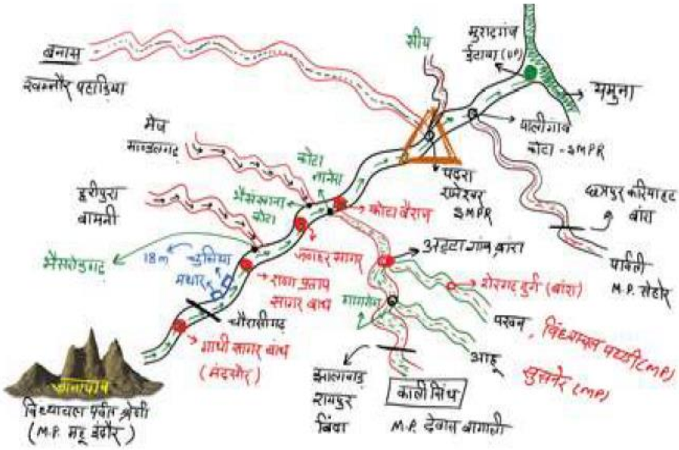

चित्र 4.3 : चम्बल की सहायक नदियों का उद्गम

चंबल नदी की सहायक नदियां, बनास,आहू परवन, कालीसिंध आदि है। चंबल नदी राजस्थान से आरम्भ होकर उत्तर प्रदेश में 965 किमी की यात्रा करके इटावा के मुरलीगंज में जाकर यमुना में मिलती है। यह राजस्थान और मध्यप्रदेश की 252 किमी की सीमा बनाती है। यह राजस्थान के चित्तौड़गढ़ के चौरासी गढ गांधी सागर मंदसौर, राणा प्रताप जवाहर सागर कोटा बैराज आदि बांधों को भरते हुए यमुना में जाकर मिलती है। इसकी सहायक नदियां बनास, क्षिप्रा नदी मेज, बानमी, सीप कालीसिंध पार्वती, छोटी, काली सिंध, कुनो ब्राह्मणी, परवन नदी, आलनिया गुजाली। महाभारत कथा अनुसार पांडवों की पत्नी द्रौपदी से श्रापित चम्बल मानी जाती है। कहते कि, राजा रंतिदेव निर्दोष जानवरों की बलि से निकले खून और पूजन -सामग्री अवशेष से पैदा होने के कारण ही चंबल नदी को श्रापित माना गया हैं। यही वजह है कि इस नदी को गंगा, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी नर्मदा, यमुना या इन जैसी अन्य नदियो के समान पवित्र नही माना गया, इसलिए ही चंबल में स्नान करने से पुण्य नहीं

होता यह शास्त्रों कथन अनुसार यह सिद्ध होता है कि वहां की मिट्टी के दोषो को अपने साथ बहाकर ले आती है जोकि मानवीय पेयजल एवं स्नान हेतु विशिष्ट गुंणकारी नहीं है इसलिए चंबल बेसिन की मिट्टी पानी में घुलकर तथा हवा के साथ बहकर बीहड़ निर्माण करती है।

चंबल, राजस्थान के लोगों ने छोड़े हथियार। हिंसक जीवन में अहिंसक बदलाव लाने हेतु जलपुरुष राजेन्द्र सिंह ने चार दशक पूर्व प्रयास शुरू किए थे। ये पीड़ितों की तलाश में कठोर ग्रामीण इलाकों में घूमते थे। वे लोगों के शुष्क, कठिन जीवन में बदलाव लाने के लिए उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करते थे। अब इन्होंने पीडितों को ही हिंसा की पीढ़ा से मुक्ति हेतु तैयार कर दिया है और इनके साथ मिलकर प्रकृति प्रेम से जल संरक्षण का काम करना सिखा दिया है।

चंबल यह विशिष्ट दस्यु बीहड़ क्षेत्र है। एक निर्जन, चट्टानी भयानक और खतरनाक जैसे कि प्रत्येक पथरीली चट्टान के पीछे खतरा छिपा हो। यहां का जगदीश गुज्जर छोटे से दस्यु दल का नेतृत्व करता था। यह ऐसे व्यक्ति के रूप में था, जिसका जीवन त्वरित प्रतिक्रियाओं पर निर्भर करता था। वह डरे हुए समूह का नेवले से प्रभावित जंगल में तब तक नेतृत्व करना जारी रखता था, जब तक कि, वे एक शिव मंदिर तक नहीं पहुंच जाते। वह कहते हैं, यहीं पर उन्होंने भक्तों को अपने पंचफेरा-एक बंदूक जो एक बार में पांच गोलियां दागती है - से डराया और उनसे उनकी संपत्ति छीन ली।

जगदीश का ये कबूलनामा राजस्थान के करौली जिले में आम होता गया था। चंबल और बनास नदियों के किनारे पहाड़ी इलाके में एक खूंखार डकैत राम सिंह गुज्जर के पसंदीदा के रूप में, जगदीश एक सफल सरदार (गिरोह नेता) के रूप में स्थापित था। वह शिक्षित था और गिरोह का हिसाब-किताब रख सकता था। जबरन वसूली, अपहरण और डकैती के इर्द-गिर्द घूमती जिंदगी में यह कोई आसान काम नहीं था। लेकिन 28 वर्षीय व्यक्ति ने यह सब तब छोड़ दिया, जब उसे एक रिश्तेदार के घर पर राजेन्द्र सिंह मिल गए। ये इसके रिस्तेदार के घर पर तालाब बनवा रहे थे। इनसे जगदीश का यहां पर प्यार और सम्मान से मिलना-जुलना हो गया। दोनों में स्नेह और सम्मान की बातचीत के बाद जगदीश ने तरूण भारत संघ के साथ मिलकर काम करने की मंशा दिखाई। तभी राजेन्द्र सिंह ने आपने साथ इन्हें मोड़ लिया और तभासं के कार्यकर्ता चमन सिंह के साथ इनको जोड दिया। 30 वर्षीय सरदार सिंह बैरवा एक बांध निर्माण स्थल पर राजमिस्त्री बन गए हैं। इनसे जलपुरुष राजेन्द्र सिंह को जगदीश गुर्जर ने मिलावाया था।

कुछ सप्ताह बाद, जगदीश ने सपोटरा पुलिस स्टेशन में आकर थानेदार को सूचित किया कि, वह जल साक्षरता कक्षाएं आयोजित करने के लिए डकैती छोड़ रहा है।

पुलिस अधिकारी, जिसने एक बार उसका कॉलर पकड़ा था और उसके साथ दुर्व्यवहार किया था, उसी ने एक कप चाय की पेशकश की। जगदीश कहते हैं, ''मुझे जो सम्मान दिया गया वह एक नई जिंदगी की तरह था। राजेन्द्र सिंह से प्यार, सम्मान, विश्वास सभी कुछ मिला। सरकारी डर निकला, तो नई खुशी और आनंद सभी के प्रेम व्यवहार में बनने लगा।''

जगदीश की तरह, कई अन्य कठोर लोग करौली में राजेन्द्र सिंह द्वारा शुरू किए गए जल संरक्षण के कार्यों को देखकर बंदूक छोड़कर जल संरक्षण का काम करने के लिए जंगलों से वापिस अपने घर लौट रहे हैं। पुलिस वाले कहते हैं, ''वर्ष 2001 से 2003 तक 100 से अधिक डकैत और उनके साथी गांवों में लौट आए थे। 2024 तक आते-आते अब यह संख्या 3000 से ज्यादा हो गई है। ये अब जल, जंगल, जमीन संरक्षण का काम करके खेती कर रहे है। अमन-चैन के साथ अपना काम कर रहे है। क्षेत्र में अब शांति है।'' - इन डकैतों ने आखिरकार खेतों पर पानी देखा है और हथियार छोड़ने को तैयार हैं। कई सालों में पहली बार, करौली में अपहरण के बिना साल बीतें है।

यहां सरासर पानी के बिना लाचारी, बीमारी, बेकारी की हताशा थी, जिसने इन लोगों को हिंसा के जीवन की ओर धकेल दिया। अन्यथा वे उस क्षेत्र में अपना जीवन यापन कैसे कर पाएंगें, जहां पक्की सड़क तक पहुंचने के लिए आपको 15 किमी पैदल चलना पड़ता था, जहां छात्रों को स्कूल तक पहुंचने में तीन घंटे लगते थे, हैंडपंप सूख जाते थे, जहां प्रसव के दौरान महिलाओं की नियमित रूप से मृत्यु हो जाती थी, दूर-दराज के प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों के रास्ते पर? मृत्यु, निराशा और सूखा था। हालाँकि इस क्षेत्र में पर्याप्त वर्षा होती है, लेकिन सिंचाई लगभग न के बराबर थी।

विश्व बैंक के पूर्व निदेशक बास्टियन मुहरम कहते हैं कि, नौकरशाही ने आसानी से इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया कि, चट्टानें और खड्डें पानी बरकरार नहीं रखती हैं। ग्रामीण फसलें नहीं उगा सके और जंगल उजड़ गए। ऐसे में जीवन, जीविका और जमीर पर संकट मंडराने लगा था। तब पुलिस से डरने के बजाय, मरने-मारने हेतु इन्होने बंदूक उठाई।

28 वर्षीय शिक्षित डकैत जगदीश गुर्जर ने जल साक्षरता कक्षाएं शुरू करने के लिए धन का त्याग कर दिया था। तरुण भारत संघ ने इस क्षेत्र में 300 से ज्यादा तालाबों और जल संरचनाओं का निमाण किया है। चार दशक के इन कामों से महेश्वरा, तिवारा, सैरनी नदी अब सदानीरा बन गई है।

65 वर्षीय नादान सिंह कहते हैं ''हमारे दरवाजे पर अचानक बहुत सारा काम आ गया।'' तीन दशक तक रावतसर के ग्रामीण नादान सिंह की हरकतों को झेलते रहे थे। वह एक घमंडी डाकू था, जो उसका विरोध करने वाले लोगों को बेरहमी से पीटता था। तब उनकी पत्नी करणबाई ने उनसे गांव में बांध बनाने के प्रयास में शामिल होने की बात कही। नादान न केवल सहमत हुआ, बल्कि उसने बाद में एक अन्य डकैत बानो द्वारा निर्माण स्थल से चुराए गए दो ट्रैक्टरों को वापस लाने में भी ग्रामीणों का नेतृत्व किया। नादान की कानूनी आय और पशुधन दस गुना बढ़ गए हैं। इसी तरह, 38 वर्षीय हट्टे-कट्टे भगवान सिंह, जिनकी लंबी मूंछें नेनिया की गुआरी गांव में खतरे का प्रतीक थी। इसने जल संरक्षणवादी बनने के लिए, जंगलों में जीवन छोड़ दिया था। अब दूसरों को जल संरक्षण के कामों में लगने हेतु तैयार करता था। क्रोधित पूर्व सहकर्मियों से खुद को बचाने के लिए, उन्हें पुलिस की अनुमति से फिर से बंदूक उठानी पड़ी, लेकिन उन्होंने मिट्टी के चेकडैम बनाने और पेड़ लगाने का काम शुरू कर दिया था। इसका इनाम उन्हें पिछले साल भरपूर फसल के रूप में मिला था।

65 वर्षीय नादान सिंह लोगों को जल संरक्षण के फायदों के बारे में बताते हैं। जैसे-जैसे लोग शुष्क मिट्टी को जीवन में लाने का प्रबंधन कर रहे हैं। हथियाकी गांव के हरि सिंह स्वीकार करते हैं, ''मैं अनाज चुराता था और डकैतों को बेचता था।'' पुलिस की छापेमारी के बाद वह घर से चला गया, लेकिन तालाब की खुदाई शुरू होने पर वापस लौट आया।

भगवान सिंह के साथी 60 वर्षीय सरदार सिंह बैरवा आज चोडकिया कलां में बांध बनाने वाले राजमिस्त्री हैं। एक साल जेल में बिताने वाले डकैतों के मास्टर गाइड 62 वर्षीय राम चरण जाटव ने तरुण भारत संघ के साथ मिलकर तालाब खोदा है और एक बांध बना रहे हैं। अब इसी काम में रात-दिन लगे हुए है। यह हिंसा छोड़कर ,अहिंसामय जीवन जीना बहुत बड़ी व्यवहार परिवर्तन की घटना है।

आज पूरी दुनिया हिंसामय बन रही है। भारत का चंबल दस्यु क्षेत्र अहिंसा के रास्ते पर चलने हेतु तैयार हुआ है। चंबल की यह तैयारी स्वयं पीडितों की है। अब ये स्वयं पीढ़ा से मुक्त होकर अपना जीवन आनंद से जी रहे है।

उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्य सचिव आर. के. तिवारी कहते है कि- *'' चंबल की यह घटना दुनिया को सीख देती है। जैसे भारत में शांति की क्रांति हुई है, वैसी आज पूरी दुनिया को शांति की जरूरत है। इसलिए सभी को चंबल में आकर देखना चाहिए।''*
जयनारायण विश्वविद्यालय, जोधपुर के कुलपति के. एल. श्रीवास्तव कहते है कि- *चंबल का खनन धरती के ऊपर गहरा घाव है। ये घाव जल स्त्रोतों को सुखाते है। अब जल संरक्षण से यहां की सैरनी नदी पुर्नभरण से बहने लगी है। नदी को शुद्ध*

सदानीरा देखकर मुझे आश्चर्य नहीं हैं, क्योंकि यह तो भूजल वैज्ञानिक काम है, ऐसा काम पूरी दुनिया में हो सकता है।''

4.4 भारतीय परिवेश में नदी जल प्रवाह का महत्व

भारतीय पौराणिक साहित्य में ऐसा उल्लेख है, "देश के लिए नदियां माताएं हैं और पर्वत पिता। यह पिता विशाल गंभीर, अडिग और चिंतामुक्त पुरुष पुरातन है और नदियां सचेष्ट मुक्तिदात्री, गतिशक्ति एवं रसवती सरस्वती हैं- खुले आकाश में स्वच्छंद विचरण करनेवाले मेघ जब क्षितिज की सेज पर हलचल मचाकर रिक्त हो जाते हैं, तब माता धरती उस तेजोमय जीवन पुरुष को अपनी सरिताओं के द्वारा धारण करती है। ये जलपूरित सरिताएं पृथ्वी में प्रजनन की गति तथा शक्ति भरती हैं। भूमंडल पर प्रवाहित ये सरिताएं ही शरीर में रक्त प्रवाही शिराओं का काम करती हैं।"

अनेक नदियों के देश भारत में भी जल धाराओं की भूमिका सदा से अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। फलस्वरूप नदी जल के उपयोग के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न किए जाते रहे हैं, जिनके प्रमाण उत्तर तथा दक्षिण भारत में अब भी कई स्थानों पर देखे जा सकते हैं। पालमपुर (हि. प्र.) में राजा की नहर, औरंगाबाद (महाराष्ट्र) में फकीर की पनचक्की तथा तंजौर (तमिलनाडु) में कावेरी नहर जल प्रणाली ऐसे कतिपय उदाहरण हैं।

आधुनिक युग में स्वतंत्र भारत को आरंभ में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा था, जिनमें गरीबी, बेकारी, सूखा, बाढ़, पिछड़ापन आदि प्रमुख रही हैं। एक नदी वह प्रणाली है जो युगों-युगों से वर्षा तथा हिमजल को प्रवाह पथ देती है। इस मामले में हमारे देश का सौभाग्य है कि, यहां छोटी और बड़ी अनेक नदियां हैं, जो प्रत्येक दिशा में बहती हुई सूखी और प्यासी भूमि को आवश्यक जल प्रदान करती हैं और अंततः सागर में जा गिरती हैं। नहरो नदी का जल भी सागर तक पहुंचे, ऐसा प्रयास जारी है।

संसार में नदी जल का सर्वाधिक उपयोग कृषि कार्य के लिए हुआ है, जिसमें सिंचाई मुख्य है। कृषि कार्य द्वारा अनाज पैदाकर मानव अपने भोजन के साधन जुटाया करता है। प्राकृतिक व्यवस्था के अनुसार अच्छी फसल के लिए मिट्टी के बाद उचित मात्रा में जल का होना परमावश्यक है। भारत जैसा कृषि प्रधान देश आज भी भोजन प्राप्ति के लिए कृषि पर निर्भर है। यहां कृषि की सफलता बहुत हद तक मानसून पर निर्भर करती है। भारत जैसे मानसूनी प्रकार की जलवायु वाले देश में जल वर्षा की अवधि, स्थिति और परिणाम सदैव अनिश्चित हैं। फलस्वरूप यह कहावत

प्रचलित हो गई है कि "भारत में कृषि कार्य वर्षा में जुए का खेल है, जहां हर साल किसान खेतों में जाकर भाग्य भरोसे होकर दांव लगाया करता है।" ऐसी स्थिति में फसलों की खेती के लिए सिंचाई की आवश्यकता होती है।

फसलों को उपजाने के लिए पानी की अधिक जरूरत है, जिसकी पूर्ति केवल वर्षा से ही संभव है। यह बात भारतियों को अभी तक समझ नहीं आयी है। पूरी दुनियों को इस सत्य को समझने का काम चंबल क्षेत्र के समाज ने चंबल क्षे.त्र की 23 नदियों पर शुरू किया है। इन्होंने अपनी जरूरत पूरी करके, दूसरों के लिए सूखी-मरी नहरो नदी को शुद्ध-सदानीरा बनाकर जल प्रवाह प्रदान किया है। अब इस नदी के किनारे के सभी गांव सुखी और शांतिमय हैं। जिन्होने समझदार बन कर पानी का काम किया, वे इज्जदार, पानीदार और मालदार बन गए और जिन्होने यह काम नहीं किया, वे आज भी बेघर और बेइज्जत हैं।

4.5 पृथ्वी निर्माण और नदियों का विकास

ऋग्वेद के अनुसार अग्नि की भगवानरूपी भूमिका मैं जब ''भारतीय आस्था एवं पर्यावरण रक्षा'' पुस्तक लिख रहा था, तब मुझे अपने वेदों, उपनिषदों व पुराणों का अध्ययन करना पड़ा था । तभी से मैं, अपने जीवन-भर जल ,जंगल, जमीन को समझने और इन्हे स्वस्थ्य समृद्ध बनाने के कामों पर ही लगा रहा। पंच महाभूतों से बने भगवान् पर अब पचास वर्ष कामों से स्पष्टता बनी है।

अग्नि को हमारे शास्त्रों में भगवान् माना गया है। वेदों में अग्नि को भगवान् के रूप में पूजा जाता रहा है। "समुद्र वासनी अग्नि'' भगवान् को आमंत्रित करने की प्रार्थना ऋग्वेद के दसों खंडो व 407 ऋचाओं में मौजूद है। ये सभी अग्नि की महानता हेतु आमंत्रण हैं। इनमें जगह-जगह पर अलग-अलग ऋचाओं में अलग-अलग तरह से लिखा है, जैसे- "समुद्र वासनी अग्नि" यह मान लिया कि, अग्नि जो है, वह समुद्र में वास करती है। उसी ऋचा के साथ लिखा है "गर्भों अपां गर्भो बनन्नां स्थिति गर्भश्चर्धम्, अदों चिदस्मां अंतदुरोणे विज्ञान न विश्रवे अमृताः" इसका अर्थ है कि, सभी जल स्रोतों, पेड़ पौधों, जंगलों, अंचलों पहाड़ों में रहने वाले अग्नि भगवान् मानवीय कल्याण हेतु सभी घरों में विराजमान होवें। राजा की तरह प्रजा के कल्याण हेतु आमंत्रण दे रहे हैं। साथ ही विश्व विजेता अग्नि से निवेदन करते हैं कि, पृथ्वी से जीवन समृद्ध बनाने हेतु खनिज दिलाएं।

ऋग्वेद में ज्वालामुखियों का उल्लेख मिलता है। वैदिक ग्रंथ हिंदुओं के सबसे प्राचीन और अनमोल खजाने हैं। भारत के साथ, वेदों के बारे में उत्सुक पश्चिमी विद्वानों की बातचीत के परिणामस्वरुप वैदिक युग के धर्म ग्रंथों पर अध्ययन ने एक नया आयाम और दिशा ग्रहण की है। इसके परिणामस्वरुप विभिन्न भाषाओं में उनके अनुवाद हुए

हैं, फिर भी कुछ वैदिक परंपराओं, सम्मेलनों, ऋचाओं, भजनों, किवदंतियों में अभी भी संतोषजनक व्याख्या की जरूरत है। ऐसी व्याख्या के लिए पुरातत्व, भू-विज्ञान तथा खगोल विज्ञान जैसे आधुनिक वैज्ञानिक विषयों द्वारा प्रस्तुत स्रोतों की तलाश करनी पड़ती है।

ऋग्वेद में दस मंडल (खंड) शामिल हैं। प्रत्येक मंडल में अग्नि, मरुत, इंद्र आदि जैसे विभिन्न देवताओं की स्तुति में ऋचाएं (भजन) हैं। कुल मिलाकर, 407 ऋचाएं अग्नि के बारे में हैं और लगभग सत्रह ऋचाएं रुद्र के बारे में हैं। अग्नि के बारे में इन 407 सूक्तों (ऋचाओं) का संक्षेप में अध्ययन इस प्रकार किया जा सकता है।

अग्नि' का अर्थ है जो चढ़ता है। ऋग्वेद अग्नि के लिए कई विशेषणों का उपयोग करता है। उदाहरण के लिए, वृषभ-रूप-धारी (जिसका रूप बैल जैसा है), यज्ञद्रष्टा नेता-यज्ञ का दूरदर्शी (पवित्र अग्नि), देवनायक-प्रमुख देवता, हव्यवाहक-प्रसाद का वाहक, गृह-हित-रक्षक (घरों के कल्याण का रक्षक), सर्वद्यना (सर्वज्ञ) बुद्धि-नियामक (बुद्धि का नियामक) रुतविजा-श्रेष्ठ (ऋषियों में महान्) लोकाधिपति (भगवान्) लोग, महान अतिथि (महान् अतिथि), यज्ञ-प्रेरक (यज्ञ को उत्तेजित करने वाला), वेगशालि (गति वाला) विश्व-श्रेष्ठ (ब्रह्मांड में सबसे महान्) सामर्थ्य-सम्पन्न (जो महान् शक्ति रखता है) आदि।

ध्यान देने योग्य कुछ अन्य विशेषण हैं- द्वावपृथ्वी-व्यापि (स्वर्ग और पृथ्वी पर कब्ज़ा करने वाला), संपत्तिदाता (जो धन प्रदान करता है), भक्तवत्सल पुरिष्य, उत्खनन उपकरण वाला, सागर-निवासी (जो महासागरों में रहता है), अपार (एक जो समुद्र व पहाड़ों में रहता है), पार्थिव (पृथ्वी से एक) आदि।

अग्नि के बारे में कई प्रकार का भी वर्णन किया गया है जो मुख्यतः उनके उत्पत्ति स्थान पर निर्भर है। अपानपात-जो जल में उत्पन्न होता है, दावानल-जो वृक्षों में उत्पन्न होता है, जठराग्नि जो चल-अचल में उत्पन्न होता हैः अपरा-पर्वतों में निर्मित, वैश्वानर-आसमान में उत्पन्न, मातारिश्वन-हवाओं के माध्यम से उत्पन्न; रक्षोहा- राक्षसों का नाश करने वाला।

पुरीष्य सूक्त में इसके पांच और स्वरूपों का वर्णन किया गया है। होम-साधक-यज्ञ की उत्तरवेदी से भक्त, द्युलोकस्थ सूर्य-आकाश में सूर्य, अन्तरिक्षीय विद्युतरूप-आकाश में विद्युत रूप में, पुरिष्य और लौकिक।

ऋग्वेद के अनुसार, अग्नि अपने सूक्ष्म और स्थूल रूपों में दुनिया के निर्माण से पहले भी धेनु-वृषभ रूप में मौजूद थी, साथ ही आकाश (द्यु), पृथ्वी (पृथ्वी) और स्वर्ग

(स्वर्ग) के निर्माण से पहले भी मौजूद थी। ऐसा कहा जाता है कि सूर्य स्वयं अग्नि की अभिव्यक्ति है। वेदों और बाद के ब्राह्मणों में, रुद्र और अग्नि को एक ही माना गया है।

पहली बार देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि, अपरा अग्नि, पार्थिव अग्नि और पृथ्वी-पुत्र अग्नि के बारे में ज्वालामुखी विस्फोट के दौरान अग्नि की अभिव्यक्ति का उल्लेख करते हैं। ऐसे श्लोक नीचे दिए गए हैं. लेकिन इससे पहले भी आधुनिक वैज्ञानिक भाषा में ज्वालामुखी कही जाने वाली घटना पर प्रकाश डाल लेना उचित होगा।

लोकमान्य तिलक ने अपने खंड 'आर्कटिक होम ऑफ द वेदाज़' में ऐसे कुछ मुद्दों के लिए प्रयास किया और परिणाम प्राप्त किया। इस खंड की प्रस्तावना में, उन्होंने पश्चिमी विद्वान मैक्स मुलर को उद्धृत किया है; जिसमें मैक्स मुलर ने राय व्यक्त की है कि, जहां तक संभव हो सके, वैदिक व्याख्याओं का अध्ययन करने और अंतराल को कम करने का दायित्व प्रत्येक पीढ़ी पर है। उन्होंने यह भी कहा है कि, आधुनिक विज्ञान के आगमन के साथ, प्रत्येक प्रगतिशील पीढ़ी के पास इसे हासिल करने का संभवतः अधिक मौका है।

4.6 नदी, प्रकृति एंव मानव सभ्यता का विकास

मानव सभ्यता के विकास का इतिहास वस्तुतः नदियों का इतिहास है। पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति जल से हुई और मानव ने अपनी प्रारम्भिक बस्तियाँ उन स्थानों पर बसाईं जहाँ जल की निरंतर उपलब्धता थी। इसलिए विश्व की लगभग सभी प्राचीन सभ्यताएँ नदियों के किनारे विकसित हुईं। नदी ने मानव को पेयजल, भोजन, कृषि, परिवहन, व्यापार, आवास तथा सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के लिए आवश्यक आधार प्रदान किया। इस प्रकार नदी, प्रकृति और मानव सभ्यता का विकास परस्पर अभिन्न एवं पूरक है।

भारतीय दर्शन में प्रकृति को सृष्टि की आधारशक्ति माना गया है। पंचमहाभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—में जल जीवन का मूल आधार है। नदियाँ पर्वतों, हिमनदों, वर्षा तथा भूजल से प्राप्त जल को समस्त भूभाग में प्रवाहित कर जीवन का संचार करती हैं। इसी कारण भारतीय संस्कृति में नदियों को 'माता' का सम्मान दिया गया है। गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी जैसी नदियाँ केवल भौगोलिक इकाइयाँ नहीं हैं, बल्कि भारतीय संस्कृति, आस्था और सभ्यता की अमूल्य धरोहर हैं।

ऋग्वेद के *नदी सूक्त* में नदियों का अत्यंत श्रद्धापूर्वक वर्णन किया गया है। वेदों में जल को अमृत, औषधि, पवित्रता तथा जीवन का आधार बताया गया है। अथर्ववेद में

वर्षा, जल संरक्षण तथा प्राकृतिक संतुलन पर विशेष बल दिया गया है। उपनिषदों एवं पुराणों में जल को सृष्टि की उत्पत्ति तथा समस्त प्राणियों के अस्तित्व का मूल कारण माना गया है। भारतीय मनीषियों ने हजारों वर्ष पूर्व ही यह समझ लिया था कि यदि नदियाँ सुरक्षित रहेंगी, तभी प्रकृति और मानव जीवन सुरक्षित रह सकेगा।

विश्व इतिहास यह प्रमाणित करता है कि सिंधु-सरस्वती सभ्यता, मिस्र की नील घाटी सभ्यता, मेसोपोटामिया की टिगरिस-यूफ्रेटिस सभ्यता तथा चीन की ह्वांगहो सभ्यता सभी महान नदियों के किनारे विकसित हुईं। इन सभ्यताओं की आर्थिक समृद्धि, कृषि उत्पादन, नगर नियोजन, व्यापार तथा सांस्कृतिक उन्नति का आधार नदियाँ ही थीं। भारत की सिंधु-सरस्वती सभ्यता में विकसित जल निकासी प्रणाली, कुएँ, स्नानागार तथा वर्षा जल संचयन की वैज्ञानिक व्यवस्था आज भी विश्व के लिए प्रेरणास्रोत है। धौलावीरा की जल संरक्षण प्रणाली भारतीय जल विज्ञान की उन्नत परंपरा का उत्कृष्ट उदाहरण है।

मानव के स्थायी जीवन की शुरुआत भी नदियों के किनारे ही हुई। नदी घाटियों की उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी ने कृषि को जन्म दिया और कृषि के विकास से अतिरिक्त खाद्यान्न उत्पादन संभव हुआ। इससे व्यापार, हस्तशिल्प, शिक्षा, सामाजिक संगठन तथा प्रशासनिक व्यवस्थाओं का विकास हुआ। इस प्रकार नदियों ने केवल जीवन ही नहीं दिया, बल्कि सभ्यता और संस्कृति की आधारशिला भी रखी।

नदी और प्रकृति का संबंध अत्यंत गहरा एवं वैज्ञानिक है। किसी नदी का अस्तित्व केवल उसके जल प्रवाह पर निर्भर नहीं करता, बल्कि उसके सम्पूर्ण जलग्रहण क्षेत्र पर आधारित होता है। पर्वत, हिमनद, वन, मिट्टी, वर्षा, भूजल तथा आर्द्रभूमियाँ मिलकर नदी तंत्र का निर्माण करती हैं। यदि वनों की कटाई होती है, तो वर्षा का जल तेजी से बहकर मिट्टी का अपरदन करता है, नदियों में गाद भरती है, भूजल पुनर्भरण घटता है और धीरे-धीरे नदियाँ मौसमी बनने लगती हैं। इसलिए नदी संरक्षण का अर्थ सम्पूर्ण प्राकृतिक पारिस्थितिकी का संरक्षण है।

भारतीय कृषि व्यवस्था सदैव नदी आधारित रही है। गंगा-यमुना का दोआब, ब्रह्मपुत्र घाटी, गोदावरी-कृष्णा का मैदान तथा कावेरी डेल्टा भारत के सर्वाधिक उपजाऊ कृषि क्षेत्रों में गिने जाते हैं। नदियाँ अपने साथ उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी लाकर भूमि की उर्वरता बनाए रखती हैं। इसी कारण प्राचीन काल से नदी घाटियाँ कृषि, पशुपालन तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आधारभूमि रही हैं।

नदियाँ जैव विविधता की भी संरक्षक हैं। इनमें असंख्य प्रकार की मछलियाँ, जलचर, पक्षी, कछुए, डॉल्फिन, घड़ियाल तथा अन्य जीव-जंतु निवास करते हैं। नदी तटों की

आर्द्रभूमियाँ बाढ़ नियंत्रण, भूजल पुनर्भरण तथा पक्षियों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। गंगा की डॉल्फिन तथा चम्बल के घड़ियाल स्वस्थ नदी तंत्र के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

मानव संस्कृति का विकास भी नदियों के साथ हुआ है। वाराणसी, प्रयागराज, हरिद्वार, उज्जैन, नासिक तथा पटना जैसे नगर नदियों के किनारे विकसित हुए। तीर्थस्थल, मेले, व्यापारिक केंद्र, शिक्षा संस्थान तथा सांस्कृतिक गतिविधियाँ प्रायः नदी तटों पर ही विकसित हुईं। भारतीय साहित्य, संगीत, चित्रकला एवं लोकजीवन में नदियों का विशेष स्थान रहा है। कालिदास, तुलसीदास, सूरदास और कबीर जैसे महान साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में नदियों की महिमा का सुंदर वर्णन किया है।

भारतीय समाज ने नदियों के संरक्षण के लिए तालाब, पोखर, जोहड़, बावड़ी, कुएँ तथा कुंड जैसी पारंपरिक जल संरचनाओं का विकास किया। ये संरचनाएँ वर्षा जल का संचयन कर भूजल का पुनर्भरण करती थीं, जिससे वर्षभर नदियों का आधार प्रवाह बना रहता था। प्रत्येक गाँव में जल स्रोतों का संरक्षण सामुदायिक उत्तरदायित्व माना जाता था और उनका रखरखाव श्रमदान एवं सामाजिक सहयोग से किया जाता था।

आधुनिक औद्योगिकीकरण, तीव्र शहरीकरण, जनसंख्या वृद्धि तथा प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन ने नदियों के अस्तित्व पर गंभीर संकट उत्पन्न कर दिया है। औद्योगिक अपशिष्ट, घरेलू सीवेज, प्लास्टिक प्रदूषण, रासायनिक उर्वरकों का बहाव, अवैध खनन तथा नदी तटों पर अतिक्रमण से नदियाँ प्रदूषित और क्षीण होती जा रही हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण हिमनदों का पिघलना, अनियमित वर्षा तथा बाढ़ और सूखे की घटनाओं में वृद्धि ने इस संकट को और गहरा किया है।

आज यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जा चुका है कि सतत विकास का आधार स्वस्थ नदी तंत्र है। स्वच्छ जल, खाद्य सुरक्षा, जैव विविधता संरक्षण, जलवायु संतुलन तथा ग्रामीण विकास सभी नदियों की निरंतरता पर निर्भर करते हैं। भारत में नमामि गंगे, जल जीवन मिशन, अटल भूजल योजना तथा अमृत सरोवर जैसी योजनाएँ नदी एवं जल संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास हैं। इसी प्रकार राजस्थान में तरुण भारत संघ तथा जलपुरुष श्री राजेन्द्र सिंह द्वारा जोहड़ों के पुनर्जीवन और अनेक सूखी नदियों को पुनः प्रवाहित करने का कार्य यह सिद्ध करता है कि पारंपरिक भारतीय जल विद्या आज भी अत्यंत प्रभावी और प्रासंगिक है।

अतः भविष्य की मानव सभ्यता का सतत विकास तभी संभव है जब नदी, प्रकृति और मानव के मध्य संतुलन पुनः स्थापित किया जाए। इसके लिए नदी को केवल

जल स्रोत न मानकर एक जीवंत पारिस्थितिक तंत्र के रूप में स्वीकार करना होगा। वर्षा जल संचयन, भूजल पुनर्भरण, वनीकरण, प्रदूषण नियंत्रण, नदी बेसिन का वैज्ञानिक प्रबंधन तथा पारंपरिक जल संरचनाओं का पुनर्जीवन समय की आवश्यकता है। आधुनिक विज्ञान एवं भारतीय जल विद्या के समन्वय से ही जल सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण और मानव सभ्यता के सतत विकास का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि नदी, प्रकृति और मानव सभ्यता एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं। नदियों का संरक्षण केवल पर्यावरणीय दायित्व नहीं, बल्कि मानव अस्तित्व, सांस्कृतिक विरासत और भावी पीढ़ियों के सुरक्षित भविष्य की अनिवार्य शर्त है। भारतीय जल दर्शन का मूल संदेश भी यही है—"जल का संरक्षण ही जीवन, प्रकृति और सभ्यता का संरक्षण है।"

4 **.7 सरिताएं: प्रेम, शांति एंव अहिंसा का संवाहक**

जब चंबल की सरिताएं मिट्टी के कटाव के कारण सूखी वादियों में बदलना शुरू हुई, तब धरती नंगी और वीरान होने लगी। तभी यहां से उजाड़ और विस्थापन आरंभ हो गया था। पशुपालन, खेती, उद्योग कुछ भी नहीं बचा था। मीलोंमील चलने पर भी पीने का पानी नहीं मिलता था। जब पीने के पानी की सुरक्षा समाप्त हुई, तो आशाओं के बीज भी सूखने लगे।

जब आशाएं मरने लगती हैं, तभी दूसरों की आशाओं को मारना आरंभ हो जाता है। चंबल की कहानी भी कुछ ऐसी ही है। चंबल के बीहड़ यही बोल रहे हैं कि, यहां के बागी अपनी इच्छा से बागी नहीं बने थे, उन सब बागियों की कहानी भी ऐसी ही है। भूखे मरते, बेइज्जत होते लोगों ने मजबूरी में बंदूके उठाकर बागी बनना तय किया था।

चंबल में मिट्टी के कटाव और पानी के बहाव ने इन्हें बेकाम, बेकार और लाचार बनाया था। वर्षा ने चंबल की चट्टानों से मिट्टी धोकर निकाल दी थी। जहां चट्टानें नहीं थी, वहां मिट्टी काटकर बहा दी थी। यह मिट्टी का कटाव और बहाव चंबल के लिए अभिशाप बन गया है। इसने चंबल को बागी-दस्यु क्षेत्र घोषित कराया था।

आजादी के आंदोलन में चंबल के बागियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही थी। आजादी के बाद इन्होंने बहुत बार आत्मसमर्पण किया था। 1972 में हुए आत्मसमर्पण में लोकनायक जयप्रकाश नारायण, विनोबा भावे, महावीर भाई तथा एस.एन. सुब्बाराव की भूमिका खास रही थी, उस वक्त 52 डाकुओं ने आत्मसमर्पण किया था। मलखान

सिंह तहसीलदार ने स्वयं आत्मसमर्पण करके, अन्य बागियों को भी आत्मसमर्पण करवाया था। आत्मसमर्पण के बाद ये लोग शांति से तो जिए, लेकिन जीविका को चलाने का संकट इनके सामने बना ही रहा। कुछ बागियों को बाद में गांधी आश्रम जौरा, मध्यप्रदेश में खादी के काम का सहारा देने का अच्छा प्रयास हुआ था। पी. वी. राजगोपाल, रनसिंह परमार आदि ने इस काम को मध्यप्रदेश के क्षेत्र में आगे बढ़ाया था।

राजेन्द्र सिंह इस काम से आरंभ से ही अवगत थे, लेकिन इन्हें यह मालूम नहीं था कि इन्हें भी आगे चलकर यही काम करना पड़ेगा। अप्रैल 1980 में जलपुरुष ने जयपुर व अलवर जिले में भारत सरकार के युवा विभाग के साथ मिलकर काम शुरू किया था। तब ये सरकारी कामों में युवा कल्याण, सामाजिक चेतना तथा ग्रामीण युवाओं को गांव में ही कुछ काम मिले; इस हेतु व्यवसाय, कौशल विकास तथा स्वास्थ्य प्रशिक्षण आयोजित करवाते थे। तब भी इन्होंने रामपुरा और बंजारों की ढाणी में पानी का काम किया था, तालाब बनवाये थे।

जब राजेन्द्र सिंह ने सरकार छोड़कर, अलवर की थानागाजी तहसील के गांव गोपालपुरा में काम किया, तब गांव में मिट्टी कटाव के कारण सिर्फ नंगे पहाड़ थे। पहाड़ की तपन से गांव में बेमौसम वर्षा होती थी, कुएं सभी सूखे थे। लोग बेरोजगार, लाचार और बेकार बनकर रोजी-रोटी के लिए बाहर चले गए थे। जब यहां खनन बंद हुआ, तो सभी को पानी बचाने के काम में लगा दिया। सभी पानी बचाने के काम में जुटे।

लेकिन चंबल क्षेत्र में ऐसा नहीं हुआ, वहां खनन बंद हुआ, तो बंदूकधारियों ने बंदूकों से खनन चलवाया था। लूटपाट में लगे लोगों के पास पानी होता तो ये अपनी खेती और पशुपालन में लग जाते। इन्हें पानी का काम करना आता था, लेकिन वह नहीं किया था। जल, जीवन, जीविका बचाने जैसे खास कामों को समझना उनके लिए मुश्किल था। खैर! चंबल के लोगों को तरुण भारत संघ के अलवर के काम ने ही क्रांति करना सिखाया था।

करौली के सपोटरा, मंडरायल, कैला देवी, मासलपुर तथा धौलपुर जिले के सरमथुरा क्षेत्र की 9 जलधाराओं बामनी, बम्हाया, खर्रावाई, सैरनी, नेहरो, तेवर, काला सिंह, महेश्वरा व चोरघान (गुटा) पर जल संरक्षण का काम शुरू हुआ था; तब इन्हें खेती में बहुत ही उत्साहजनक रोजगार मिला। तब बंदूकों का स्थान पशुपालन और खेती ने ले लिया। जल संरक्षण से हरियाली बढ़ी। हरियाली ने बागियों के मन में भी प्यार से हरियाली के बीज बो दिए। बागियों के मन भी हरे होने लगे। तरुण भारत संघ ने 35 सालों में जो प्यार के बीज बोये, उनसे पहले तो इनका डर निकाला, फिर इसी निडरता ने इनके आत्म-विश्वास को और बढ़ा दिया।

विश्वास घात करना उनकी आदत में था; तरुण भारत संघ के साथ बहुत बार विश्वासघात हुआ, लेकिन तरुण भारत संघ कभी भी आहत नहीं हुआ। जब कभी आहत हुआ भी तो 3 से 7 दिनों में उन्हें अपनी गलती का अहसास हो गया। अपनी गलती का अहसास करके, वे जल्दी ही अच्छे काम कराने का आभास करा लेते थे। तरुण भारत संघ के कार्यकर्ता प्रशिक्षित थे, उनकी गलती सुधार करके, उन्हें प्रेम से अपने साथ जोड़ लेते थे। तरुण भारत संघ का कोई भी कार्यकर्ता कभी भी डर कर नहीं भागा, वर्ष दर वर्ष यह विश्वास बढ़ता ही चला गया।

विश्वास ही व्यक्ति को अनुशासित बनाता है। यही अनुभव बागियों के साथ हुआ। अब पिछले 10 वर्षों से विश्वासघात समाप्त हो गया है और अनुशासन इनके जीवन का स्वाभाविक हिस्सा बन गया है। कभी जो लोग परिस्थितियों के कारण व्यवस्था से दूर हो गए थे, आज वही समाज के विश्वासपात्र नागरिक बनकर शांति, सहयोग और सामाजिक उत्तरदायित्व का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। यह परिवर्तन किसी भय, दमन या बल प्रयोग से नहीं, बल्कि विश्वास, संवाद और सहभागिता से संभव हुआ है। जब समाज किसी व्यक्ति को सम्मान देता है और उसे अपनेपन का अनुभव कराता है, तब उसके भीतर सकारात्मक परिवर्तन स्वतः जन्म लेता है। चंबल क्षेत्र का यह अनुभव इस सत्य का जीवंत प्रमाण है कि विश्वास से बड़ा कोई सुधार का साधन नहीं होता।

इनके जीवन पर फिल्म बनाने वाली लूसी मार्टिन लंबे समय तक इन्हीं लोगों के साथ रहीं। वे उनके घरों में ठहरीं, बागियों के परिवारों, विशेषकर महिलाओं के साथ रहीं, उनके सुख-दुःख को निकट से देखा और उनके जीवन को समझने का प्रयास किया। इस पूरे प्रवास के दौरान उनके साथ कभी कोई अप्रिय घटना नहीं हुई। अपने अनुभव साझा करते हुए लूसी कहती हैं, **"ये बहुत सरल, सीधे और सज्जन लोग हैं। पता नहीं सरकारें इन्हें क्यों बागी बनाती हैं?"** उनका यह कथन केवल एक विदेशी शोधकर्ता की प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि उस सामाजिक वास्तविकता का दर्पण है, जिसमें परिस्थितियों ने लोगों की छवि को विकृत कर दिया था, जबकि उनके भीतर मानवीय संवेदनाएं सदैव जीवित थीं। उनके अनुसार चंबल का वास्तविक चेहरा हिंसा नहीं, बल्कि आत्मीयता, अतिथि-सत्कार और विश्वास है।

नवंबर 2023 में इस क्षेत्र में आयोजित तीन दिवसीय अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन ने इस परिवर्तन को वैश्विक मंच पर स्थापित किया। इस सम्मेलन में विश्व के सभी महाद्वीपों से 55 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह रही कि प्रतिभागियों को केवल सभागारों में विचार-विमर्श तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि उन्हें गांवों में ले जाकर स्थानीय परिवारों के बीच भोजन कराया गया। उन्होंने ग्रामीण जीवन, जल संरक्षण कार्यों और सामाजिक परिवर्तन को प्रत्यक्ष देखा, अनुभव किया

और लोगों के साथ संवाद स्थापित किया। इस आत्मीय संपर्क ने उनके मन में चंबल के प्रति बनी पुरानी धारणाओं को पूरी तरह बदल दिया। सभी प्रतिनिधियों ने यहां के लोगों की सादगी, विनम्रता और आत्मीय व्यवहार की मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

चिली से आईं बारबरा ने कहा, **"मैंने ऐसे अच्छे लोग दुनिया में कहीं नहीं देखे।"** उनके शब्द केवल भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं थे, बल्कि इस बात का प्रमाण थे कि मानवीय व्यवहार की भाषा विश्वभर में एक समान समझी जाती है। अमेरिका की टीना ने कहा, **"ये बहुत अच्छे लोग हैं। यह क्षेत्र हमारे लिए तीर्थ-स्थान जैसा है, जहां आकर लोग अच्छे काम करने की प्रेरणा लेते हैं।"** उनके अनुसार चंबल अब केवल एक भौगोलिक क्षेत्र नहीं, बल्कि सामाजिक पुनर्जागरण और शांति की प्रयोगशाला बन चुका है।

पेरू से आए प्रतिनिधियों ने अपने अनुभव साझा करते हुए कहा कि उनके देश की पारंपरिक ज्ञान-परंपरा और लोककथाओं में भी उन्हें ऐसा उदाहरण देखने या पढ़ने को नहीं मिला, जैसा धौलपुर-करौली क्षेत्र में जल संरक्षण के माध्यम से शांति स्थापित करने का कार्य उन्होंने प्रत्यक्ष देखा। उन्होंने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा कि यहां जल केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं रहा, बल्कि सामाजिक समरसता, विश्वास और शांति का आधार बन गया है। जल ने यहां लोगों को जोड़ा, विवादों को कम किया और जीवन को नई दिशा दी। उनके लिए यह अनुभव अत्यंत प्रेरणादायक और अभूतपूर्व था।

पुर्तगाल से आए प्रतिनिधियों और महिलाओं ने भी कहा कि वे स्वयं शांतिप्रिय समाज से आते हैं, किंतु चंबल के बारे में जो उन्होंने पहले पढ़ा था और यहां आकर जो देखा, उसमें बहुत बड़ा अंतर है। उन्होंने स्वीकार किया कि जल संरक्षण के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन का ऐसा अद्‌भुत उदाहरण उन्होंने पहले कभी नहीं देखा। उन्होंने कहा, **"यह चमत्कार हम पूरी दुनिया को बताएंगे।"** उनके अनुसार चंबल ने सिद्ध कर दिया है कि यदि प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण समाज की भागीदारी से किया जाए, तो वह केवल पर्यावरण ही नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों और मानवीय मूल्यों का भी पुनर्निर्माण कर सकता है।

बेनिन से आए दारा सलीम ने कहा, **"मैं यहां से जो सीखकर जा रहा हूं, उसे अपने देश में भी लागू करने का प्रयास करूंगा। मैं अपनी काउंटी का किंग हूं, लेकिन मैं भी ऐसा नहीं कर पाया। मेरे जीवन का लक्ष्य भी सत्य और शांति है।"** उनके शब्द इस बात का प्रमाण थे कि चंबल का यह अनुभव केवल भारत तक सीमित नहीं है, बल्कि विश्व के अनेक देशों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन चुका है। उन्होंने माना कि नेतृत्व केवल अधिकार का विषय नहीं, बल्कि समाज को जोड़ने और विश्वास जगाने की प्रक्रिया है, जिसे उन्होंने यहां प्रत्यक्ष रूप से देखा।

कोनहोह ने कहा कि, **"यह कार्य हमारे लिए सच्चा तीर्थ है।"** उनके अनुसार तीर्थ केवल धार्मिक आस्था का स्थान नहीं होता, बल्कि वह स्थान भी तीर्थ बन जाता है, जहां मानवता, प्रकृति और समाज के बीच संतुलन स्थापित करने का सफल प्रयास किया गया हो। अफ्रीका के विभिन्न देशों से आए प्रतिनिधि इस परिवर्तन को देखकर अत्यंत आश्चर्यचकित थे। उनके लिए यह उदाहरण इस बात का प्रमाण था कि जल संरक्षण केवल पर्यावरणीय कार्यक्रम नहीं, बल्कि सामाजिक शांति, आर्थिक आत्मनिर्भरता और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्रभावी माध्यम भी बन सकता है।

आज चंबल जल-आधारित शांति का विश्वमॉडल बन चुका है। यहां विश्व के अनेक देशों से शोधकर्ता, सामाजिक कार्यकर्ता, नीति-निर्माता और विद्यार्थी आकर इस कार्य को देख रहे हैं, समझ रहे हैं और अपने-अपने देशों के लिए इससे सीख ले रहे हैं। कभी जिस क्षेत्र की पहचान भय, हिंसा और बागियों के कारण होती थी, वही आज जल, विश्वास और शांति की वैश्विक पहचान बन चुका है। यह परिवर्तन किसी संयोग का परिणाम नहीं, बल्कि वर्षों की सतत सामाजिक साधना, लोकभागीदारी और जल संरक्षण के प्रति समर्पित प्रयासों का फल है।

इस परिवर्तनकारी कार्य का प्रारंभ जलपुरुष के नेतृत्व में हुआ। इस अभियान को सफल बनाने में श्रवण शर्मा, छोटेलाल मीणा, राहुल सिंह, मीना सिंह, मौलिक सिसोदिया, पूजा भाटी, चमन सिंह, रणवीर सिंह, छाजूराम तथा तरुण भारत संघ के अनेक समर्पित कार्यकर्ताओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इन सभी ने गांव-गांव जाकर लोगों को जोड़ा, श्रमदान कराया, जल संरचनाओं का निर्माण कराया और समाज में विश्वास का वातावरण तैयार किया। यह सामूहिक प्रयास ही चंबल के सामाजिक और पर्यावरणीय पुनर्जागरण की आधारशिला बना।

जलपुरुष का कथन इस पूरे आंदोलन का सार प्रस्तुत करता है—***"सभ्यताओं का पुनर्जीवन एक व्यक्ति नहीं कर सकता, लेकिन एक सरिता सभ्यता का पुनर्जीवन कर सकती है।"*** वास्तव में चंबल की सभ्यता का पुनर्जीवन जल सरिताओं के पुनर्जीवन से ही संभव हुआ। जब तरुण भारत संघ ने चंबल की 23 छोटी-छोटी सहायक नदियों पर जल संरक्षण और पुनर्भरण के कार्य किए, तब केवल जलधाराएं ही पुनर्जीवित नहीं हुईं, बल्कि गांवों की अर्थव्यवस्था, सामाजिक संबंध, विश्वास, आजीविका और सांस्कृतिक चेतना भी पुनः प्रवाहित होने लगी। इसी ऐतिहासिक प्रयास ने उस स्वप्न को साकार किया जिसे लोग आज इस भावपूर्ण वाक्य में स्मरण करते हैं—**"फिर से बही नदी चंबल।"**

5.
नदी पुनर्जीवन एंव जल सरंक्षण

5.1 भू-जल पुनर्भरण दवारा नदियों का पुनर्जीवन

5.1.1 प्रस्तावना

जल पृथ्वी पर जीवन का आधार है। मानव सभ्यता का विकास सदैव नदियों, झीलों, झरनों तथा अन्य प्राकृतिक जलस्रोतों के आसपास हुआ है। भारत की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक संरचना भी गंगा, यमुना, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी तथा ब्रह्मपुत्र जैसी महानदियों के साथ-साथ हजारों लघु नदियों और मौसमी जलधाराओं पर आधारित रही है। कृषि, पेयजल, पशुपालन, उद्योग, जैव विविधता तथा पारिस्थितिक संतुलन सभी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जल संसाधनों पर निर्भर हैं।

विगत कुछ दशकों में तीव्र जनसंख्या वृद्धि, अनियोजित शहरीकरण, भू-जल का अत्यधिक दोहन, वनों का क्षरण, प्राकृतिक जल निकास मार्गों का अवरोध तथा वर्षा जल संचयन की उपेक्षा के कारण देश के अनेक भागों में जल संकट गहराता गया है। अनेक नदियाँ, जो कभी बारहमासी थीं, आज केवल वर्षा ऋतु तक सीमित होकर रह गई हैं। सामान्यतः इस स्थिति का कारण वर्षा की कमी को माना जाता है, जबकि वैज्ञानिक दृष्टि से इसका प्रमुख कारण वर्षा जल का पर्याप्त मात्रा में भूमि के भीतर समाहित न हो पाना तथा भू-जल भण्डारों का निरंतर क्षय होना है।

आधुनिक जल विज्ञान के अनुसार किसी भी नदी का स्थायी प्रवाह केवल वर्षा से प्राप्त **सतही अपवाह (Surface Runoff)** पर निर्भर नहीं करता, बल्कि उसका दीर्घकालिक अस्तित्व भू-जल द्वारा प्राप्त होने वाले **आधार प्रवाह (Base Flow)** पर आधारित होता है। जब वर्षा जल भूमि में प्रवेश कर जलभृतों (Aquifers) का पुनर्भरण करता है, तब वही जल धीरे-धीरे नदी की ओर प्रवाहित होकर वर्षभर उसकी जलधारा को बनाए रखता है। इसके विपरीत यदि वर्षा जल तीव्र गति से बहकर बाहर निकल जाए, तो भू-जल स्तर निरंतर नीचे जाता है और नदी का आधार प्रवाह समाप्त होने लगता है। परिणामस्वरूप नदी मौसमी (Seasonal) बन जाती है। भारत के विभिन्न राज्यों में किए गए नदी पुनर्जीवन कार्यों ने यह सिद्ध किया है कि यदि सम्पूर्ण जलागम क्षेत्र (Watershed) में वर्षा जल संरक्षण, भू-जल पुनर्भरण तथा प्राकृतिक जल निकास प्रणाली का वैज्ञानिक प्रबंधन किया जाए, तो सूखी नदियों को भी पुनर्जीवित किया जा सकता है। राजस्थान की अरवरी, सरसा तथा अन्य नदियों

के पुनर्जीवन से लेकर बमाया एवं कोटवाली नदी के अध्ययन तक अनेक उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि नदी पुनर्जीवन का आधार केवल इंजीनियरिंग संरचनाएँ नहीं, बल्कि जल विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, पारिस्थितिकी तथा जनसहभागिता का समन्वित अनुप्रयोग है।

इस अध्याय का उद्देश्य वर्षा जल संचयन, भू-जल पुनर्भरण तथा नदी पुनर्जीवन के वैज्ञानिक सिद्धान्तों का विवेचन करना, उनके गणितीय एवं भूवैज्ञानिक आधार को स्पष्ट करना तथा विभिन्न क्षेत्रों में प्राप्त व्यवहारिक अनुभवों के माध्यम से इन सिद्धान्तों का सत्यापन प्रस्तुत करना है। यह अध्याय यह भी स्पष्ट करता है कि भारत की प्राचीन जल परम्परा और आधुनिक हाइड्रोलॉजी परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे की पूरक हैं।

5.1. 2 भारतीय परम्परा में जल विज्ञान

भारतीय सभ्यता विश्व की उन प्राचीन सभ्यताओं में से है जहाँ जल को केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि जीवन, संस्कृति और धर्म का आधार माना गया है। वैदिक साहित्य, उपनिषदों, पुराणों, अर्थशास्त्र, बृहत्संहिता तथा विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों में जल के संरक्षण, वितरण, संचयन तथा उपयोग के सम्बन्ध में अनेक वैज्ञानिक संकेत मिलते हैं। यद्यपि उस समय आधुनिक वैज्ञानिक शब्दावली उपलब्ध नहीं थी, तथापि प्राकृतिक जल चक्र, वर्षा, भू-जल, नदियों तथा जल संरक्षण के मूल सिद्धान्तों की गहरी समझ भारतीय मनीषियों को थी।

ऋग्वेद में जल को समस्त जीवन का आधार बताते हुए उसे शुद्धि, स्वास्थ्य एवं समृद्धि का स्रोत कहा गया है। अथर्ववेद में वर्षा को पृथ्वी के पोषण का माध्यम माना गया है, जबकि यजुर्वेद में जल के संतुलित उपयोग तथा संरक्षण का संदेश मिलता है। इन वैदिक विचारों से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में वर्षा और भू-जल के पारस्परिक सम्बन्ध को समझा गया था।

प्राचीन भारत में जल संरक्षण केवल सैद्धान्तिक विचार नहीं था, बल्कि उसका व्यापक व्यावहारिक स्वरूप भी विकसित हुआ। देश के विभिन्न भागों में स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप जोहड़, बावड़ी, कुण्ड, तालाब, आहर-पइन, एरी (दक्षिण भारत), झीलें, नाड़ियाँ तथा विभिन्न प्रकार की जल संचयन प्रणालियाँ विकसित की गईं। इन संरचनाओं का उद्देश्य वर्षा जल को रोकना, भूमि में उसका अवशोषण बढ़ाना तथा भू-जल भण्डारों का पुनर्भरण करना था। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से देखें तो ये सभी संरचनाएँ **Groundwater Recharge Structures** के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में विकसित जोहड़ प्रणाली विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वर्षा ऋतु में जोहड़ों में संचित जल धीरे-धीरे भूमि में समाहित होकर आसपास के कुओं एवं जलभृतों को पुनर्भरित करता था। इसी प्रकार गुजरात के वाव (Step Wells), दक्षिण भारत के टैंक सिस्टम तथा मध्य भारत के तालाब केवल जल संग्रहण के साधन नहीं थे, बल्कि सम्पूर्ण जलागम क्षेत्र के जल संतुलन को बनाए रखने वाली वैज्ञानिक व्यवस्थाएँ थीं।

आधुनिक जल विज्ञान ने जिन सिद्धान्तों—जैसे जल चक्र (Hydrological Cycle), अवशोषण (Infiltration), भू-जल पुनर्भरण (Recharge), जलभृत (Aquifer) तथा आधार प्रवाह (Base Flow)—को वैज्ञानिक रूप से स्थापित किया है, उनके व्यावहारिक स्वरूप भारतीय परम्परागत जल प्रबंधन प्रणालियों में हजारों वर्षों से विद्यमान रहे हैं। यही कारण है कि आज नदी पुनर्जीवन की आधुनिक अवधारणा पुनः इन पारम्परिक प्रणालियों के वैज्ञानिक पुनर्मूल्यांकन की ओर अग्रसर है।

5.1.3 जल चक्र (Hydrological Cycle)

जल चक्र (Hydrological Cycle) पृथ्वी पर जल के निरन्तर संचरण की प्राकृतिक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से जल महासागरों, नदियों, झीलों, वायुमण्डल, भूमि तथा भू-जल के बीच निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। पृथ्वी पर उपलब्ध जल की कुल मात्रा लगभग स्थिर रहती है, परन्तु उसकी अवस्थाएँ और स्थान निरंतर बदलते रहते हैं। यही प्रक्रिया पृथ्वी पर जल की निरंतर उपलब्धता तथा समस्त जैवमण्डल के अस्तित्व को बनाए रखती है।

जल चक्र का मूल प्रेरक स्रोत सूर्य की ऊर्जा है। सूर्य के प्रभाव से समुद्रों, नदियों, झीलों तथा भूमि की सतह से जल वाष्पित (Evaporation) होता है, जबकि वनस्पतियों द्वारा वाष्पोत्सर्जन (Transpiration) की प्रक्रिया भी वायुमण्डल में जलवाष्प की मात्रा बढ़ाती है। यह जलवाष्प ऊपर उठकर ठंडी वायु में संघनित (Condensation) होकर बादलों का निर्माण करती है। उपयुक्त परिस्थितियों में यही बादल वर्षा (Precipitation) के रूप में पुनः पृथ्वी पर जल उपलब्ध कराते हैं।

पृथ्वी पर गिरने वाले वर्षा जल का एक भाग वनस्पतियों द्वारा अवशोषित हो जाता है, एक भाग नदियों एवं जलाशयों में सतही अपवाह (Surface Runoff) के रूप में प्रवाहित होता है तथा शेष भाग भूमि के भीतर प्रवेश कर अवशोषण (Infiltration) एवं रिसाव (Percolation) के माध्यम से भू-जल भण्डारों तक पहुँचता है। यही पुनर्भरित जल आगे चलकर जलभृतों में संचित रहता है और प्राकृतिक प्रवणता (Hydraulic Gradient) के अनुसार धीरे-धीरे नदियों की ओर प्रवाहित होकर आधार प्रवाह (Base Flow) उत्पन्न करता है।

नदी पुनर्जीवन की दृष्टि से जल चक्र का सबसे महत्त्वपूर्ण चरण **वर्षा जल का भूमि में समावेशन (Infiltration and Recharge)** है। यदि वर्षा का अधिकांश जल सतह पर बहकर शीघ्र ही नदी से बाहर निकल जाए, तो भू-जल पुनर्भरण कम होगा और नदी का स्थायी प्रवाह समाप्त होने लगेगा। इसके विपरीत यदि वर्षा जल को चेकडैम, जोहड़, तालाब तथा अन्य पुनर्भरण संरचनाओं द्वारा रोका जाए, तो भूमि में जल का प्रवेश बढ़ेगा, जलभृत पुनर्भरित होंगे तथा नदी का आधार प्रवाह दीर्घकाल तक बना रहेगा।

अतः जल चक्र केवल प्राकृतिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि नदी संरक्षण, भू-जल प्रबंधन एवं जल सुरक्षा का मूल वैज्ञानिक आधार है। सम्पूर्ण नदी पुनर्जीवन कार्यक्रम इसी सिद्धान्त पर आधारित है कि वर्षा की प्रत्येक सम्भव बून्द को स्थानीय स्तर पर भूमि में समाहित किया जाए, जिससे प्राकृतिक जल चक्र का संतुलन पुनः स्थापित हो सके।

5.1.4 वर्षा से भू-जल पुनर्भरण की प्रक्रिया

भू-जल पुनर्भरण (Groundwater Recharge) वह प्राकृतिक अथवा कृत्रिम प्रक्रिया है जिसके माध्यम से वर्षा अथवा सतही जल भूमि में प्रवेश करके जलभृतों (Aquifers) तक पहुँचता है और भू-जल भण्डारों की पुनः पूर्ति करता है। नदी पुनर्जीवन की सम्पूर्ण अवधारणा इसी प्रक्रिया पर आधारित है, क्योंकि भू-जल का पुनर्भरण ही आगे चलकर नदियों को आधार प्रवाह (Base Flow) उपलब्ध कराता है। जब वर्षा होती है, तब जल का एक भाग वृक्षों एवं वनस्पतियों द्वारा अवशोषित हो जाता है, कुछ भाग सतही अपवाह (Surface Runoff) के रूप में बह जाता है तथा शेष भाग भूमि की सतह से भीतर प्रवेश करता है। इस प्रवेश की प्रक्रिया को **अवशोषण (Infiltration)** कहा जाता है। अवशोषित जल गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से धीरे-धीरे नीचे की ओर बढ़ता है। यह पहले असंतृप्त क्षेत्र (Vadose Zone) से होकर गुजरता है, जहाँ मिट्टी के कणों के बीच वायु तथा जल दोनों उपस्थित रहते हैं। इसके बाद जल उस गहराई तक पहुँचता है जहाँ सभी रिक्त स्थान जल से भर जाते हैं। इस क्षेत्र को **संतृप्त क्षेत्र (Saturated Zone)** कहा जाता है तथा इसका ऊपरी स्तर **जल स्तर (Water Table)** कहलाता है।

जल स्तर तक पहुँचने वाला जल स्थानीय जलभृतों में संग्रहित हो जाता है। जब वर्षा लगातार होती रहती है अथवा जल संरक्षण संरचनाओं द्वारा भूमि में पर्याप्त जल समाहित कराया जाता है, तब जलभृतों में जल की मात्रा बढ़ती है और भू-जल स्तर ऊपर उठने लगता है। यही पुनर्भरित जल प्राकृतिक ढाल (Hydraulic Gradient) के अनुसार धीरे-धीरे नदी, झरनों अथवा अन्य निम्न क्षेत्रों की ओर प्रवाहित होकर आधार प्रवाह उत्पन्न करता है।

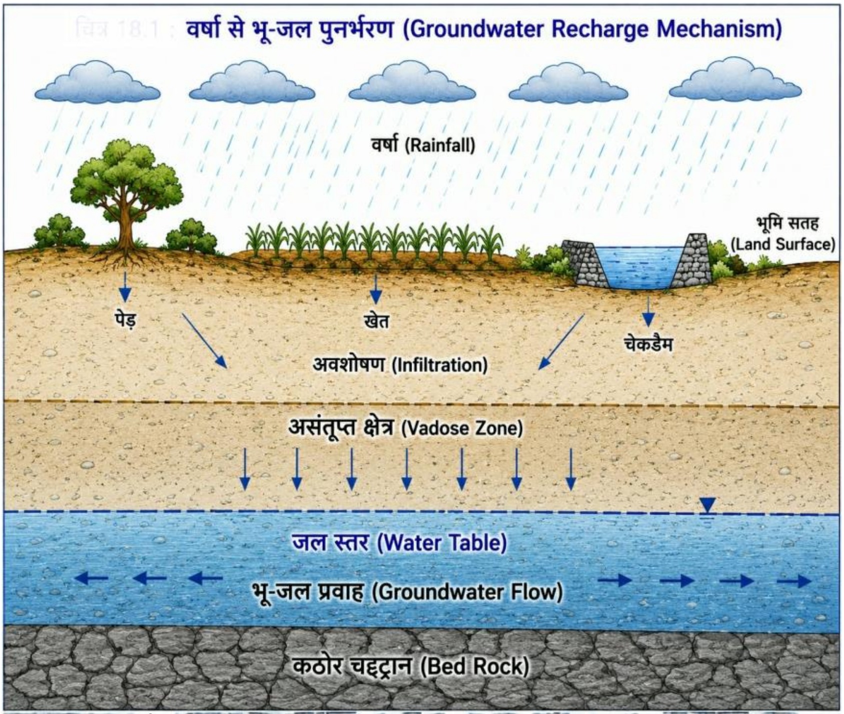

चित्र 5.1: वर्षा से भू-जल पुनर्भरण (Groundwater Recharge Mechanism)

चेकडैम, जोहड़, एनीकट, तालाब, परकोलेशन टैंक तथा खेत-तालाब जैसी संरचनाएँ इस प्रक्रिया को अत्यधिक प्रभावी बनाती हैं। ये संरचनाएँ वर्षा जल के प्रवाह वेग को कम करती हैं, जल को कुछ समय तक रोककर रखती हैं तथा भूमि में उसके प्रवेश की अवधि बढ़ाती हैं। परिणामस्वरूप भू-जल पुनर्भरण की मात्रा कई गुना बढ़ जाती है।

भू-जल पुनर्भरण की दर अनेक प्राकृतिक कारकों पर निर्भर करती है, जैसे—

- वर्षा की मात्रा एवं अवधि
- मिट्टी की पारगम्यता (Permeability)
- भूगर्भीय संरचना
- भूमि की ढाल
- वनस्पति आवरण
- जल संरक्षण संरचनाओं की उपलब्धता

इसी कारण समान वर्षा प्राप्त करने वाले दो क्षेत्रों में भी भू-जल पुनर्भरण की मात्रा भिन्न हो सकती है। जहाँ जलागम क्षेत्र का वैज्ञानिक प्रबंधन किया जाता है, वहाँ वर्षा जल का बड़ा भाग भूमि में समाहित होकर भू-जल स्तर को बढ़ाता है और नदी पुनर्जीवन की प्रक्रिया को गति प्रदान करता है।

5.1.5 जल संतुलन सिद्धान्त (Water Balance Principle)

जल संसाधन प्रबंधन का सबसे महत्वपूर्ण वैज्ञानिक सिद्धान्त **जल संतुलन (Water Balance)** है। यह सिद्धान्त बताता है कि किसी भी जलागम क्षेत्र में प्राप्त होने वाला कुल वर्षा जल विभिन्न प्रक्रियाओं में विभाजित हो जाता है तथा उसका प्रत्येक भाग जल चक्र में विशिष्ट भूमिका निभाता है।

जल संतुलन का सामान्य समीकरण निम्न प्रकार व्यक्त किया जाता है—

P = ET + Q + R + ΔS

जहाँ—

- **P** = कुल वर्षा (Precipitation)
- **ET** = वाष्पोत्सर्जन (Evapotranspiration)
- **Q** = सतही अपवाह (Surface Runoff)
- **R** = भू-जल पुनर्भरण (Recharge)
- **ΔS** = जल भण्डारण में परिवर्तन (Change in Storage)

इस समीकरण का अर्थ है कि किसी क्षेत्र में प्राप्त होने वाला कुल वर्षा जल चार प्रमुख भागों में विभाजित होता है। एक भाग वाष्पीकरण एवं वाष्पोत्सर्जन द्वारा पुनः वायुमण्डल में लौट जाता है। दूसरा भाग सतही अपवाह के रूप में नदियों की ओर बह जाता है। तीसरा भाग भूमि में समाहित होकर भू-जल भण्डारों का पुनर्भरण करता है तथा शेष भाग विभिन्न जलाशयों, मिट्टी एवं जलभृतों में संग्रहीत रहता है। नदी पुनर्जीवन की दृष्टि से इस समीकरण में सबसे महत्त्वपूर्ण घटक **भू-जल पुनर्भरण (R)** है। यदि किसी क्षेत्र में वर्षा तो पर्याप्त हो, परन्तु अधिकांश जल सतही अपवाह के रूप में बह जाए, तो भू-जल पुनर्भरण कम होगा और नदी का आधार प्रवाह धीरे-धीरे समाप्त होने लगेगा। इसके विपरीत यदि वर्षा जल का अधिक भाग भूमि में समाहित किया जाए, तो भू-जल स्तर बढ़ेगा और नदी वर्षभर प्रवाहित रह सकेगी।

अतः जलागम प्रबंधन का मूल उद्देश्य केवल जल संग्रहण नहीं, बल्कि सतही अपवाह को नियंत्रित करके भू-जल पुनर्भरण की मात्रा को अधिकतम करना होना चाहिए। यही सिद्धान्त आधुनिक जल संसाधन प्रबंधन तथा नदी पुनर्जीवन कार्यक्रमों का आधार है।

5.1.6 भू-जल पुनर्भरण का गणितीय आकलन

किसी जलागम क्षेत्र में भू-जल पुनर्भरण की संभावित मात्रा का अनुमान लगाने के लिए वैज्ञानिक एवं अभियान्त्रिकीय अध्ययनों में विभिन्न गणितीय मॉडल अपनाए जाते हैं। प्रारम्भिक स्तर पर सर्वाधिक प्रचलित विधि **Recharge Coefficient Method** है।

भू-जल पुनर्भरण का अनुमान निम्नलिखित समीकरण द्वारा लगाया जाता है—

$R = P \times A \times Cr$

जहाँ—

- **R** = पुनर्भरित जल की कुल मात्रा (Recharge Volume)
- **P** = वार्षिक वर्षा (मीटर में)
- **A** = जलागम क्षेत्रफल (वर्गमीटर में)
- **Cr** = पुनर्भरण गुणांक (Recharge Coefficient)

पुनर्भरण गुणांक उस अनुपात को दर्शाता है जो यह बताता है कि कुल वर्षा का कितना भाग वास्तव में भूमि के भीतर जाकर भू-जल का पुनर्भरण करता है। इसका मान स्थानीय भूगर्भीय संरचना, मिट्टी के प्रकार, भूमि उपयोग, वनस्पति तथा वर्षा की प्रकृति के अनुसार परिवर्तित होता है। सामान्यतः इसका मान 0.10 से 0.40 के मध्य पाया जाता है।

उदाहरण

मान लीजिए—

- वार्षिक वर्षा = **850 मि.मी. (0.85 मी.)**
- जलागम क्षेत्र = **5 वर्ग किलोमीटर (5×10^6 m^2)**
- Recharge Coefficient = **0.25**

तब,

$R = 0.85 \times 5 \times 10^6 \times 0.25$

R = 1,062,500 घनमीटर

अर्थात् इस जलागम क्षेत्र में लगभग **10.63 लाख घनमीटर** जल प्रति वर्ष भू-जल भण्डार में पुनर्भरित हो सकता है।

यदि जल संरक्षण संरचनाओं के माध्यम से पुनर्भरण गुणांक 0.25 से बढ़कर 0.35 हो जाए, तो बिना वर्षा बढ़े ही भू-जल पुनर्भरण में लगभग **40 प्रतिशत तक वृद्धि** सम्भव है। यही कारण है कि नदी पुनर्जीवन कार्यक्रमों में वर्षा बढ़ाने की अपेक्षा वर्षा जल के संरक्षण और पुनर्भरण पर अधिक बल दिया जाता है।

5.1.7 अवशोषण (Infiltration)

अवशोषण (Infiltration) वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा वर्षा अथवा सतही जल भूमि की सतह से भीतर प्रवेश करता है। यही प्रक्रिया भू-जल पुनर्भरण का प्रथम एवं सबसे महत्त्वपूर्ण चरण है। यदि भूमि की अवशोषण क्षमता अधिक होगी, तो अधिक जल भू-जल भण्डार तक पहुँचेगा; यदि यह क्षमता कम होगी, तो अधिकांश जल सतही अपवाह के रूप में बह जाएगा।

अवशोषण की दर (Infiltration Rate) समय के साथ बदलती रहती है। वर्षा के प्रारम्भ में शुष्क मिट्टी अधिक मात्रा में जल ग्रहण करती है, किन्तु जैसे-जैसे मिट्टी संतृप्त होती जाती है, अवशोषण की दर घटती जाती है। अंततः यह एक लगभग

स्थिर मान प्राप्त कर लेती है, जिसे **स्थिर अवशोषण दर (Steady Infiltration Rate)** कहा जाता है।

अवशोषण को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं—

- **मिट्टी का प्रकार** – रेतीली मिट्टी में अवशोषण सर्वाधिक तथा चिकनी मिट्टी में न्यूनतम होता है।
- **भूगर्भीय संरचना** – दरारयुक्त एवं छिद्रयुक्त चट्टानों में जल शीघ्र प्रवेश करता है।
- **वनस्पति आवरण** – वृक्षों की जड़ें मिट्टी को छिद्रयुक्त बनाती हैं, जिससे अवशोषण बढ़ता है।
- **भूमि की ढाल** – तीव्र ढाल वाले क्षेत्रों में जल शीघ्र बह जाता है, जबकि समतल क्षेत्रों में अधिक समय तक रुककर भूमि में समाहित होता है।
- **वर्षा की तीव्रता** – यदि वर्षा की तीव्रता मिट्टी की अवशोषण क्षमता से अधिक हो, तो अतिरिक्त जल सतही अपवाह बन जाता है।
- **भूमि उपयोग** – कंक्रीट, डामर तथा शहरी निर्माण अवशोषण को कम करते हैं, जबकि कृषि भूमि एवं वन क्षेत्र इसे बढ़ाते हैं।

नदी पुनर्जीवन की दृष्टि से अवशोषण क्षमता बढ़ाना अत्यंत आवश्यक है। चेकडैम, जोहड़, कंटूर ट्रेंच, परकोलेशन टैंक, खेत-तालाब, मेडबंदी तथा वनीकरण जैसी गतिविधियाँ वर्षा जल के ठहराव का समय बढ़ाकर अवशोषण को कई गुना बढ़ा देती हैं। फलस्वरूप भू-जल पुनर्भरण बढ़ता है, जल स्तर ऊपर उठता है तथा नदी का आधार प्रवाह दीर्घकाल तक बना रहता है।
इस प्रकार अवशोषण केवल एक भौतिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि सम्पूर्ण जल चक्र, भू-जल संरक्षण तथा नदी पुनर्जीवन की आधारशिला है।

5.1.8 जलभृत (Aquifer) की भूमिका

भू-जल विज्ञान (Hydrogeology) में **जलभृत (Aquifer)** उस भूगर्भीय संरचना को कहा जाता है, जिसमें पर्याप्त मात्रा में जल संग्रहित रहता है तथा जो आवश्यकता पड़ने पर उस जल को प्राकृतिक अथवा कृत्रिम रूप से उपलब्ध कराने में सक्षम होती है। जलभृत सामान्यतः बालू, बजरी, कंकड़, बलुआ पत्थर (Sandstone), चूना पत्थर (Limestone) तथा दरारयुक्त बेसाल्ट जैसी छिद्रयुक्त एवं पारगम्य चट्टानों से निर्मित होते हैं। इनकी संरचना में उपस्थित सूक्ष्म छिद्र (Pores) तथा दरारें (Fractures) जल के संचयन एवं प्रवाह के लिए स्थान प्रदान करती हैं।

जलभृत केवल भू-जल का भण्डार नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण नदी तंत्र का अदृश्य जलाशय (Subsurface Reservoir) है। वर्षा ऋतु में जब वर्षा जल भूमि में प्रवेश करता है, तब वह धीरे-धीरे जलभृतों में संचित होता है। वर्षा समाप्त होने के बाद

यही संचित जल प्राकृतिक जल-दाब (Hydraulic Pressure) एवं ढाल (Hydraulic Gradient) के कारण धीरे-धीरे नदियों, झरनों तथा जलस्रोतों की ओर प्रवाहित होता रहता है। यही प्रक्रिया नदी के आधार प्रवाह (Base Flow) का निर्माण करती है। यदि जलभृतों का पुनर्भरण निरंतर होता रहे, तो नदी का प्रवाह वर्षभर बना रहता है। इसके विपरीत यदि भू-जल का अत्यधिक दोहन किया जाए और पुनर्भरण अपर्याप्त हो, तो जलभृतों का जल स्तर नीचे चला जाता है। ऐसी स्थिति में नदी की ओर होने वाला भूमिगत प्रवाह कम हो जाता है तथा अंततः नदी मौसमी (Seasonal) बन जाती है।

[अ] जलभृतों के प्रमुख प्रकार

- **असंवृत जलभृत (Unconfined Aquifer)**
  यह जलभृत सीधे भूमि की सतह से जुड़े होते हैं तथा वर्षा जल से सबसे पहले पुनर्भरित होते हैं। इनका जल स्तर वर्षा एवं भू-जल दोहन के अनुसार बदलता रहता है। भारत के अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों के कुएँ एवं उथले नलकूप इसी प्रकार के जलभृतों से जल प्राप्त करते हैं।
- **संवृत जलभृत (Confined Aquifer)**
  इन जलभृतों के ऊपर एवं नीचे कम पारगम्य (Impermeable) चट्टानों की परतें होती हैं। इनमें संचित जल सामान्यतः अधिक दाब में रहता है। यदि ऐसे जलभृत में कुआँ खोदा जाए, तो अनेक बार जल स्वतः ऊपर उठने लगता है। इसे आर्टीज़ियन (Artesian) दशा कहा जाता है।
- **अधोस्थित जलभृत (Perched Aquifer)**
  कभी-कभी मुख्य जलभृत के ऊपर किसी स्थानीय अपारगम्य परत के कारण सीमित मात्रा में जल एकत्र हो जाता है। इसे अधोस्थित जलभृत कहते हैं। इसका विस्तार सीमित होता है तथा यह स्थानीय जलापूर्ति में उपयोगी हो सकता है।

[ब] जलभृत के प्रमुख गुण

किसी जलभृत की उपयोगिता उसके निम्नलिखित गुणों पर निर्भर करती है—

- **रन्ध्रता (Porosity)** – जल संग्रहित करने की क्षमता।
- **पारगम्यता (Permeability)** – जल को प्रवाहित करने की क्षमता।
- **जल चालकता (Hydraulic Conductivity)** – जल प्रवाह की गति।
- **भण्डारण क्षमता (Storage Coefficient)** – संचित जल की उपलब्धता।

नदी पुनर्जीवन की दृष्टि से इन गुणों का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि इन्हीं के आधार पर यह निर्धारित होता है कि किसी क्षेत्र में जल संरक्षण संरचनाओं से कितना पुनर्भरण सम्भव होगा।

राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा अन्य राज्यों में किए गए नदी पुनर्जीवन अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि जहाँ जलभृतों की संरचना अनुकूल थी और वर्षा जल का पर्याप्त पुनर्भरण किया गया, वहाँ सूखी नदियों में कुछ वर्षों के भीतर पुनः स्थायी प्रवाह स्थापित हो गया। इससे यह सिद्ध होता है कि जलभृत नदी पुनर्जीवन की आधारभूत वैज्ञानिक इकाई हैं।

5.1.9 डार्सी का नियम (Darcy's Law)

भू-जल प्रवाह को वैज्ञानिक रूप से समझाने वाला सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त **डार्सी का नियम (Darcy's Law)** है। इस नियम का प्रतिपादन फ्रांसीसी अभियंता **हेनरी डार्सी (Henry Darcy)** ने सन् 1856 में किया था। आज भी विश्वभर में भू-जल विज्ञान, जल संसाधन अभियान्त्रिकी तथा नदी पुनर्जीवन अध्ययनों में यही मूलभूत सिद्धान्त स्वीकार किया जाता है।

डार्सी के अनुसार—

"किसी संतृप्त एवं पारगम्य माध्यम में जल का प्रवाह उस माध्यम की जल चालकता, प्रवाह क्षेत्रफल तथा जल-ढाल के समानुपाती होता है।"

गणितीय रूप में—

$$\mathbf{Q = K \times A \times i}$$

जहाँ—

- **Q** = जल प्रवाह (Discharge) (m^3/s)
- **K** = जल चालकता (Hydraulic Conductivity) (m/s)
- **A** = प्रवाह का अनुप्रस्थ क्षेत्रफल (m^2)
- **i** = जल-ढाल (Hydraulic Gradient)

और,

$$\mathbf{i = \Delta h / L}$$

जहाँ—

- **Δh** = जल स्तर का अन्तर (Hydraulic Head Difference)
- **L** = दोनों बिन्दुओं के बीच की दूरी

अर्थात् यदि जल स्तर में अन्तर अधिक होगा अथवा चट्टान अधिक पारगम्य होगी, तो भू-जल का प्रवाह भी अधिक होगा।

[स] नदी पुनर्जीवन में डार्सी के नियम का महत्व

नदी पुनर्जीवन की प्रक्रिया में वर्षा जल द्वारा पुनर्भरित जलभृतों में जल स्तर बढ़ जाता है। इससे नदी और जलभृत के बीच जल-ढाल (Hydraulic Gradient) उत्पन्न होती है। डार्सी के नियम के अनुसार यही ढाल भू-जल को धीरे-धीरे नदी की ओर प्रवाहित करती है। यही भूमिगत प्रवाह आगे चलकर नदी के आधार प्रवाह का निर्माण करता है।

यदि भू-जल का अत्यधिक दोहन कर दिया जाए, तो जल स्तर नीचे चला जाता है और जल-ढाल घट जाती है। फलस्वरूप नदी की ओर होने वाला भूमिगत प्रवाह कम हो जाता है। यही कारण है कि अनेक नदियाँ धीरे-धीरे सूख जाती हैं। इसके विपरीत जब जोहड़, चेकडैम, एनीकट तथा अन्य पुनर्भरण संरचनाओं द्वारा भू-जल स्तर ऊपर उठाया जाता है, तब जल-ढाल पुनः स्थापित होती है और नदी की ओर जल प्रवाह बढ़ने लगता है। इस प्रकार डार्सी का नियम नदी पुनर्जीवन की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करता है।

5.1.10 नदी पुनर्जीवन का भूगर्भीय मॉडल

नदी पुनर्जीवन को समझने के लिए केवल नदी तल का अध्ययन पर्याप्त नहीं है। इसके लिए सम्पूर्ण जलागम क्षेत्र, भूगर्भीय संरचना, जलभृतों की स्थिति तथा भू-जल प्रवाह का समेकित अध्ययन आवश्यक है। इस आधार पर नदी पुनर्जीवन का एक समग्र **भूगर्भीय मॉडल (Hydrogeological Model)** विकसित किया जा सकता है।

इस मॉडल के अनुसार नदी पुनर्जीवन निम्नलिखित क्रम में होता है—

वर्षा → जल संचयन → अवशोषण → रिसाव (Percolation) → जलभृत पुनर्भरण → भू-जल स्तर में वृद्धि → भू-जल प्रवाह → आधार प्रवाह → नदी पुनर्जीवन

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में जलागम क्षेत्र की प्रत्येक गतिविधि नदी के भविष्य को प्रभावित करती है। यदि ऊपरी क्षेत्र में वर्षा जल को रोक लिया जाए, तो उसका प्रभाव कई किलोमीटर दूर स्थित नदी पर भी दिखाई देता है।

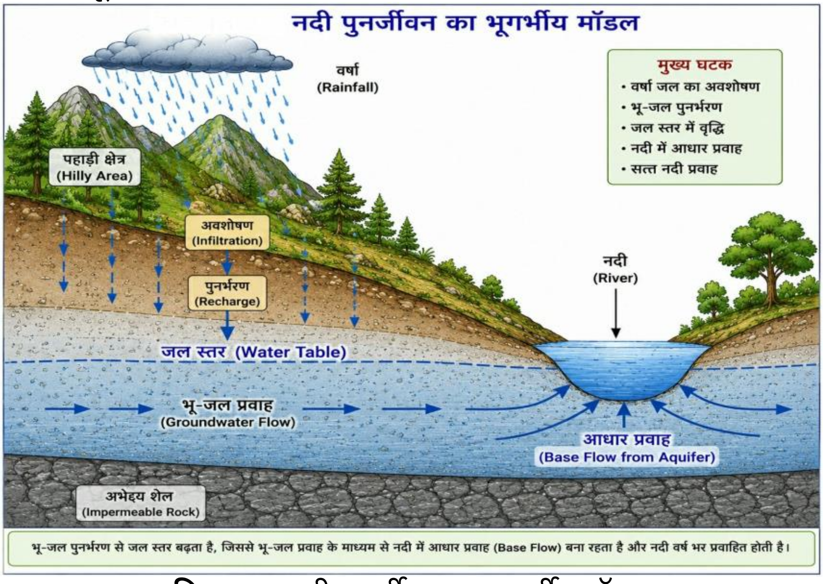

चित्र 5.2: नदी पुनर्जीवन का भूगर्भीय मॉडल

नदी पुनर्जीवन के भूगर्भीय मॉडल के प्रमुख घटक निम्नलिखित हैं—

1. **जलागम क्षेत्र (Watershed):** वह सम्पूर्ण क्षेत्र जहाँ गिरने वाला वर्षा जल किसी एक नदी अथवा जलधारा की ओर प्रवाहित होता है।
2. **पुनर्भरण क्षेत्र (Recharge Zone):** वह क्षेत्र जहाँ वर्षा जल अधिक मात्रा में भूमि के भीतर प्रवेश करता है।
3. **जलभृत (Aquifer):** भूमिगत जल संग्रहण एवं प्रवाह का माध्यम।
4. **भू-जल प्रवाह क्षेत्र (Groundwater Flow Zone):** जलभृत के भीतर जल के संचरण का मार्ग।
5. **निर्गमन क्षेत्र (Discharge Zone):** वह स्थान जहाँ भू-जल नदी, झरने अथवा अन्य जलस्रोत के रूप में सतह पर प्रकट होता है।

इस मॉडल से स्पष्ट होता है कि नदी वास्तव में सम्पूर्ण जलागम क्षेत्र की अंतिम अभिव्यक्ति है। यदि जलागम क्षेत्र स्वस्थ रहेगा, तो नदी भी स्वस्थ रहेगी; यदि जलागम क्षेत्र में जल संरक्षण, वनीकरण तथा भू-जल पुनर्भरण की उपेक्षा होगी, तो नदी का प्रवाह भी प्रभावित होगा।

बमाया एवं कोटवाली नदी सहित राजस्थान की अनेक पुनर्जीवित नदियों के अध्ययन से यह मॉडल व्यवहार में सत्य सिद्ध हुआ है। जहाँ जलागम क्षेत्र में वैज्ञानिक आधार पर वर्षा जल संरक्षण, पुनर्भरण संरचनाओं का निर्माण तथा सामुदायिक जल प्रबंधन अपनाया गया, वहाँ कुछ वर्षों के भीतर भू-जल स्तर में वृद्धि, कुओं का पुनर्जीवन तथा नदी के आधार प्रवाह की पुनर्स्थापना स्पष्ट रूप से देखी गई। यह मॉडल भविष्य की सभी नदी पुनर्जीवन योजनाओं के लिए वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है।

5.1.11 आधार प्रवाह (Base Flow) का सिद्धान्त

किसी भी नदी के प्रवाह का वैज्ञानिक विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि उसका प्रवाह दो प्रमुख स्रोतों से प्राप्त होता है—(i) वर्षा के समय उत्पन्न होने वाला सतही अपवाह (Surface Runoff) तथा (ii) भू-जल से प्राप्त होने वाला आधार प्रवाह (Base Flow)। इनमें से सतही अपवाह अल्पकालिक होता है, जबकि आधार प्रवाह नदी को वर्षभर जीवित बनाए रखने वाला स्थायी स्रोत है। इसलिए आधुनिक जल विज्ञान में आधार प्रवाह को किसी भी नदी की **"जीवनरेखा" (Lifeline of a River)** माना जाता है।

चित्र 5.3 में दर्शाया गया है कि वर्षा का जल भूमि पर गिरने के पश्चात् विभिन्न मार्गों से प्रवाहित होता है। एक भाग सतह पर बहकर सीधे नदी में पहुँचता है, जबकि दूसरा भाग भूमि में अवशोषित होकर (Infiltration) असंतृप्त क्षेत्र (Vadose Zone) से गुजरते हुए जलभृतों (Aquifers) तक पहुँचता है। जलभृतों में संचित यह जल

प्राकृतिक जल-ढाल (Hydraulic Gradient) के प्रभाव से धीरे-धीरे नदी की ओर प्रवाहित होता है। यही धीमा किन्तु निरन्तर भूमिगत प्रवाह आधार प्रवाह कहलाता है।

नदी के जलग्रहण क्षेत्र में यदि पर्याप्त वर्षा जल भूमि में समाहित होता रहे, तो जलभृतों का पुनर्भरण निरन्तर बना रहता है। परिणामस्वरूप वर्षा समाप्त होने के कई महीनों बाद भी नदी में जल प्रवाहित होता रहता है। इसके विपरीत यदि वर्षा जल का अधिकांश भाग तीव्र गति से बहकर बाहर निकल जाए तथा भू-जल का अत्यधिक दोहन किया जाए, तो जलभृतों का जलस्तर नीचे चला जाता है। ऐसी स्थिति में नदी की ओर होने वाला भूमिगत प्रवाह रुकने लगता है और नदी धीरे-धीरे मौसमी (Seasonal River) बन जाती है।

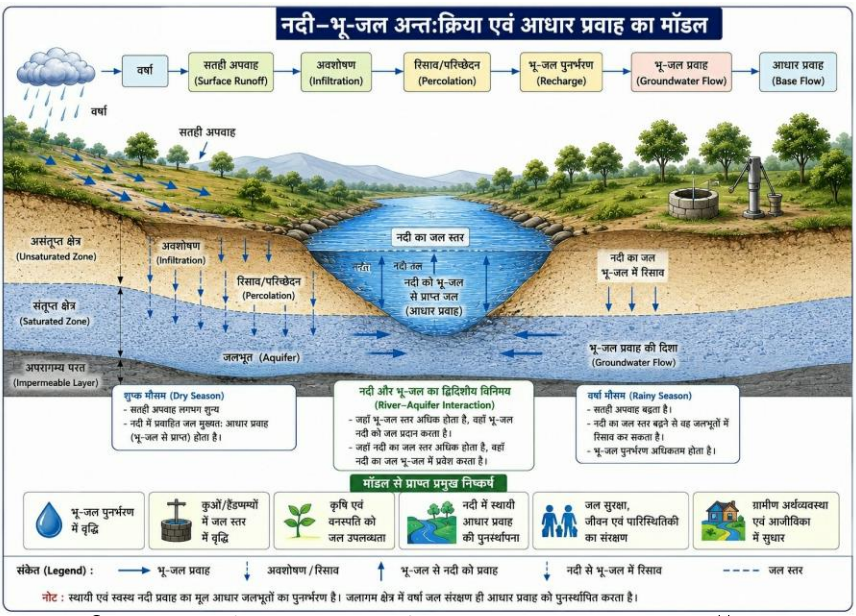

चित्र 5.3: नदी–भू-जल अन्तःक्रिया एवं आधार प्रवाह का मॉडल

नदी प्रवाह का वैज्ञानिक समीकरण निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

कुल नदी प्रवाह = सतही अपवाह + आधार प्रवाह

या

Q = Qs + Qb

जहाँ—

- **Q** = नदी का कुल प्रवाह
- **Qs** = सतही अपवाह
- **Qb** = आधार प्रवाह

शुष्क मौसम में प्रायः **Qs ≈ 0** हो जाता है, अतः उस समय नदी का सम्पूर्ण प्रवाह लगभग आधार प्रवाह पर ही निर्भर करता है। यही कारण है कि भू-जल संरक्षण और नदी संरक्षण परस्पर अभिन्न हैं।

डार्सी के नियम के अनुसार जब जलभृत में जल स्तर नदी के जल स्तर से अधिक होता है, तब भूमिगत जल प्राकृतिक रूप से नदी की ओर प्रवाहित होता है। इसके विपरीत यदि नदी का जल स्तर अधिक हो, तो नदी का जल भी जलभृत में प्रवेश कर सकता है। इस प्रकार नदी और भू-जल के बीच निरन्तर द्विदिशीय (Two-way) जल विनिमय होता रहता है।

राजस्थान की अरवरी, सरसा, रूपारेल तथा बमाया एवं कोटवाली नदी क्षेत्रों में किए गए अध्ययनों से यह प्रमाणित हुआ कि वर्षा जल संचयन संरचनाओं के निर्माण के पश्चात् भू-जल स्तर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई तथा कुछ वर्षों के भीतर नदियों का आधार प्रवाह पुनः स्थापित हो गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि किसी भी नदी का स्थायी पुनर्जीवन उसके जलभृतों के पुनर्जीवन पर निर्भर करता है।

अतः आधार प्रवाह नदी की दृश्य जलधारा का अदृश्य आधार है। नदी का वास्तविक संरक्षण तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण जलागम क्षेत्र में भू-जल पुनर्भरण की प्रक्रिया को वैज्ञानिक रूप से सुदृढ़ किया जाए।

5.1.12 चेकडैम, जोहड़ एवं पारम्परिक जल संरचनाओं की वैज्ञानिक भूमिका

भारत की पारम्परिक जल संरक्षण प्रणालियाँ केवल ऐतिहासिक धरोहर नहीं हैं, बल्कि वे आधुनिक जल विज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित अत्यन्त प्रभावी भू-जल पुनर्भरण प्रणालियाँ हैं। राजस्थान के जोहड़, गुजरात की बावड़ियाँ, दक्षिण भारत के टैंक, मध्य भारत के तालाब तथा विभिन्न क्षेत्रों के चेकडैम वर्षा जल को स्थानीय स्तर पर रोककर प्राकृतिक जल चक्र को सुदृढ़ करते हैं।

चित्र 5.4 में यह दर्शाया गया है कि वर्षा ऋतु में तीव्र गति से बहने वाले जल को चेकडैम अथवा जोहड़ द्वारा रोक दिया जाता है। इससे जल का वेग कम हो जाता है तथा उसका ठहराव समय (Residence Time) बढ़ जाता है। जल अधिक समय तक संरचना में ठहरने के कारण धीरे-धीरे भूमि में समाहित होने लगता है। यह जल असंतृप्त क्षेत्र से होकर जलभृतों तक पहुँचता है और उनका पुनर्भरण करता है।

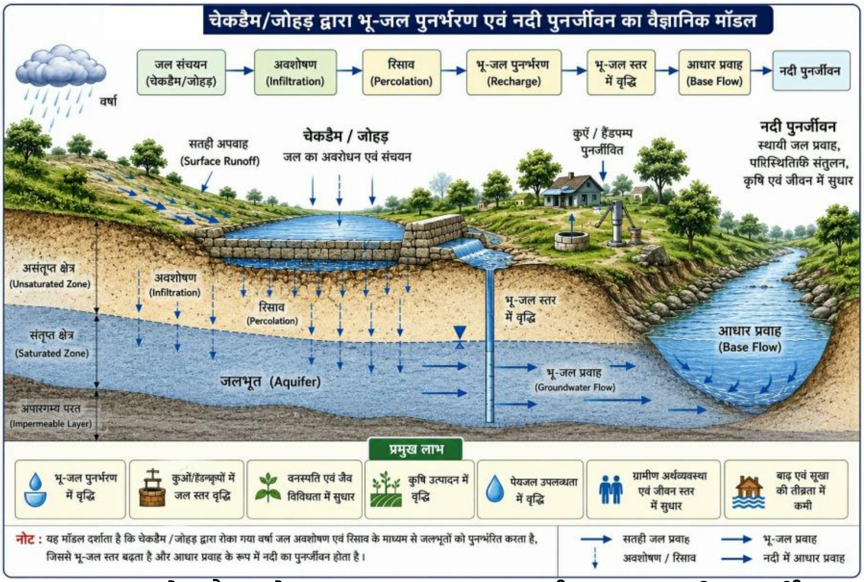

चित्र 5.4(अ): चेकडैम/जोहड़ द्वारा भू-जल पुनर्भरण एवं नदी पुनर्जीवन का वैज्ञानिक मॉडल

जब अनेक वर्षों तक यह प्रक्रिया निरन्तर चलती है, तब जलभृतों में संचित जल की मात्रा बढ़ती है। परिणामस्वरूप—

- भू-जल स्तर ऊपर उठता है।
- सूखे कुएँ एवं नलकूप पुनः जलयुक्त हो जाते हैं।
- पेयजल एवं सिंचाई जल की उपलब्धता बढ़ती है।
- वनस्पति एवं जैव विविधता का विकास होता है।
- और अन्ततः नदी में आधार प्रवाह पुनः स्थापित हो जाता है।

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को निम्न वैज्ञानिक अनुक्रम द्वारा समझा जा सकता है—

वर्षा → जल संचयन → अवशोषण → रिसाव → जलभृत पुनर्भरण → भू-जल स्तर में वृद्धि → आधार प्रवाह → नदी पुनर्जीवन

यह अनुक्रम स्पष्ट करता है कि चेकडैम अथवा जोहड़ का उद्देश्य केवल जल संग्रहण नहीं, बल्कि भूमिगत जल भण्डार को पुनर्जीवित करना है। नदी पुनर्जीवन इसी भूमिगत प्रक्रिया का प्रत्यक्ष परिणाम है।

चेकडैम एवं जोहड़ों के वैज्ञानिक लाभ

इन संरचनाओं से निम्नलिखित वैज्ञानिक लाभ प्राप्त होते हैं—

1. वर्षा जल का स्थानीय स्तर पर संरक्षण होता है।
2. सतही अपवाह एवं मृदा अपरदन में कमी आती है।
3. अवशोषण (Infiltration) एवं रिसाव (Percolation) की मात्रा बढ़ती है।

4. जलभृतों का पुनर्भरण तीव्र गति से होता है।
5. भू-जल स्तर में क्रमिक वृद्धि होती है।
6. नदी का आधार प्रवाह पुनः स्थापित होता है।
7. सूखा एवं बाढ़ दोनों की तीव्रता कम होती है।
8. कृषि, पशुपालन, वनस्पति तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को स्थायी जल उपलब्ध होता है।

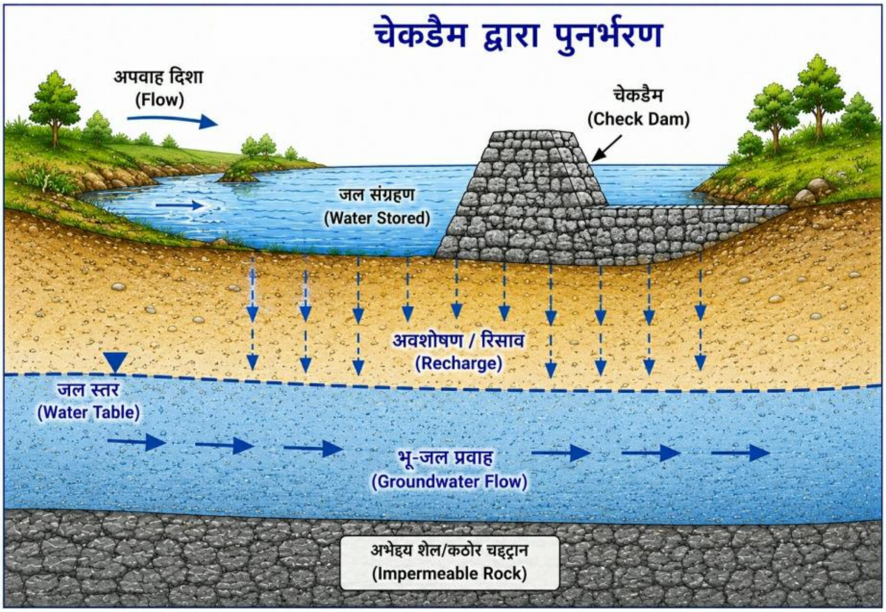

चित्र 5.4(ब): चेकडैम द्वारा भू-जल पुनर्भरण

राजस्थान में पिछले चार दशकों के दौरान हजारों जोहड़ों एवं चेकडैमों के निर्माण से अरवरी, सरसा, रूपारेल सहित अनेक नदियों का पुनर्जीवन सम्भव हुआ। इसी वैज्ञानिक मॉडल का उपयोग बमाया एवं कोटवाली नदी जलागम क्षेत्र में भी किया गया, जहाँ वर्षा जल संचयन एवं भू-जल पुनर्भरण के परिणामस्वरूप नदी प्रवाह, भू-जल स्तर तथा स्थानीय जल सुरक्षा में उल्लेखनीय सुधार प्राप्त हुआ।

इन अध्ययनों से यह निष्कर्ष स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि **नदी पुनर्जीवन का सबसे प्रभावी एवं टिकाऊ उपाय नदी के जलागम क्षेत्र में वर्षा जल का वैज्ञानिक संचयन, भू-जल पुनर्भरण तथा पारम्परिक जल संरचनाओं का संरक्षण एवं सुदृढ़ीकरण है।** यही सिद्धान्त भारत की भावी जल नीति तथा समेकित

जल संसाधन प्रबंधन (Integrated Water Resources Management) का आधार होना चाहिए।

5.1.13 वैज्ञानिक सिद्धान्तों का व्यवहारिक सत्यापन: राजस्थान एवं अन्य राज्यों के अनुभव

पूर्ववर्ती अनुभागों में वर्षा जल संचयन, अवशोषण (Infiltration), भू-जल पुनर्भरण (Groundwater Recharge), जलभृत (Aquifer), आधार प्रवाह (Base Flow) तथा नदी पुनर्जीवन के जिन वैज्ञानिक सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है, उनकी वास्तविक पुष्टि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में किए गए जल संरक्षण एवं नदी पुनर्जीवन कार्यों से होती है। विशेष रूप से राजस्थान में तरुण भारत संघ तथा स्थानीय समुदायों द्वारा किए गए कार्य इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि यदि वर्षा जल को स्थानीय स्तर पर रोककर भूमि में समाहित किया जाए, तो भू-जल स्तर में वृद्धि होती है और सूखी नदियाँ पुनः प्रवाहित होने लगती हैं।

सन् 1980 के दशक में राजस्थान के अलवर जिले सहित अनेक क्षेत्रों में लगातार पड़ने वाले अकाल के कारण जल संकट अत्यन्त गंभीर हो गया था। कुएँ सूख चुके थे, कृषि प्रभावित थी तथा ग्रामीणों का बड़े पैमाने पर पलायन प्रारम्भ हो गया था। इसी अवधि में अलवर जिले के ***गोपालपुरा ग्राम में स्थानीय ग्रामीणों*** तथा ***डा. राजेंद्र सिंह, जलपुरुष,तरुण भारत संघ ने*** पारम्परिक जल संरक्षण प्रणालियों को पुनर्जीवित करने का निर्णय लिया। ग्रामीणों की सक्रिय सहभागिता से जोहड़ एवं लघु बाँधों का निर्माण किया गया, जिनका उद्देश्य वर्षा जल को रोककर उसका अधिकतम अवशोषण सुनिश्चित करना था।

प्रथम वर्षा ऋतु के उपरान्त ही इन संरचनाओं के नीचे स्थित सूखे कुओं में पुनः जल उपलब्ध होने लगा। यह परिवर्तन इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण था कि वर्षा जल भूमि में प्रवेश कर स्थानीय जलभृतों का पुनर्भरण कर रहा था। इस सफलता से प्रेरित होकर आसपास के अनेक गाँवों—जैसे किशोरी, कालालांका, बछड़ी, सूरतगढ़, क्यारा, बीसूनी, जयसिंहपुरा तथा अन्य ग्रामों—ने भी इसी प्रकार के जल संरक्षण कार्य प्रारम्भ किए।

इसके पश्चात् सरसा एवं अरवरी नदी जलागम क्षेत्रों में वैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त स्थलों का चयन कर जोहड़ों एवं चेकडैमों का निर्माण किया गया। इन संरचनाओं ने सतही अपवाह को नियंत्रित किया, वर्षा जल के अवशोषण को बढ़ाया तथा भू-जल पुनर्भरण की प्रक्रिया को तीव्र किया। परिणामस्वरूप भू-जल स्तर में निरंतर वृद्धि हुई और अनेक वर्षों से सूखी पड़ी नदियों में पुनः आधार प्रवाह (Base Flow) स्थापित होने लगा। यह वही प्रक्रिया है जिसका वर्णन इस अध्याय में भू-जल प्रवाह एवं आधार प्रवाह के वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत किया गया है।

इन कार्यों के दौरान अनेक व्यावहारिक प्रयोग भी किए गए। उदाहरणस्वरूप, जलभृतों के आपसी सम्पर्क को समझने के लिए एक जलाशय में रंग मिश्रित जल छोड़ा गया। कुछ समय पश्चात् वही रंगयुक्त जल नीचे स्थित अन्य संरचनाओं के समीप दिखाई दिया। इस प्रयोग ने यह स्पष्ट किया कि भूमिगत जल का प्रवाह अदृश्य होते हुए भी निरंतर चलता रहता है तथा विभिन्न जलभृत परस्पर जुड़े हो सकते हैं। यह परिणाम आधुनिक भू-जल विज्ञान तथा डार्सी के प्रवाह सिद्धान्त के पूर्णतः अनुरूप है।

इन अनुभवों से यह भी स्पष्ट हुआ कि केवल जल संरचना का निर्माण पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसका स्थान चयन (Site Selection), स्थानीय भूगर्भीय संरचना, जलागम क्षेत्र की प्रकृति, भूमि की ढाल, मिट्टी की पारगम्यता तथा समुदाय की सहभागिता समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। जहाँ इन वैज्ञानिक एवं सामाजिक पहलुओं का समुचित समन्वय किया गया, वहाँ नदी पुनर्जीवन के परिणाम अधिक स्थायी और प्रभावी रहे। अरवरी एवं सरसा नदियों की सफलता के बाद यही मॉडल राजस्थान के सवाई माधोपुर, करौली तथा धौलपुर जिलों में भी अपनाया गया। बाद में इसी अनुभव के आधार पर महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के अनेक नदी क्षेत्रों में भी वर्षा जल संचयन एवं भू-जल पुनर्भरण आधारित नदी पुनर्जीवन कार्यक्रम संचालित किए गए। विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों के बावजूद इन क्षेत्रों में प्राप्त परिणामों ने यह सिद्ध किया कि नदी पुनर्जीवन का मूल आधार वर्षा जल का स्थानीय संचयन, भू-जल पुनर्भरण तथा आधार प्रवाह की पुनर्स्थापना है।

लगभग चार दशकों से अधिक समय के इन अनुभवों से यह निष्कर्ष निकलता है कि नदी पुनर्जीवन केवल इंजीनियरिंग संरचनाओं का निर्माण नहीं है, बल्कि यह जल विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, पारिस्थितिकी तथा सामुदायिक सहभागिता का समन्वित विज्ञान है। जब वैज्ञानिक सिद्धान्तों को स्थानीय पारम्परिक ज्ञान और जनसहभागिता के साथ लागू किया जाता है, तब सूखी नदियाँ पुनः प्रवाहित हो सकती हैं, भू-जल स्तर में स्थायी सुधार होता है तथा सम्पूर्ण क्षेत्र की पारिस्थितिकी एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था का पुनर्जीवन संभव हो जाता है।

5.1.14 बमाया एवं कोटवाली नदी: वैज्ञानिक सिद्धान्तों का अनुप्रयोग

राजस्थान तथा देश के अन्य क्षेत्रों में प्राप्त अनुभवों से विकसित नदी पुनर्जीवन की वैज्ञानिक अवधारणा का व्यावहारिक अनुप्रयोग बमाया एवं कोटवाली नदी जलागम क्षेत्र में भी सफलतापूर्वक देखा गया। इस क्षेत्र में किए गए कार्यों का मूल उद्देश्य केवल जल संरचनाओं का निर्माण करना नहीं था, बल्कि वर्षा जल को अधिकतम

मात्रा में भूमि के भीतर समाहित कर भू-जल भण्डारों का पुनर्भरण करना तथा नदी के प्राकृतिक आधार प्रवाह (Base Flow) को पुनर्स्थापित करना था।

अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि वर्षा ऋतु में क्षेत्र में पर्याप्त वर्षा होने के बावजूद उसका अधिकांश भाग तीव्र सतही अपवाह के रूप में बह जाता था। परिणामस्वरूप भू-जल स्तर निरन्तर नीचे जाता रहा, कुएँ एवं नलकूप सूखने लगे तथा नदी का प्रवाह वर्षा ऋतु के कुछ समय बाद ही समाप्त हो जाता था। इस समस्या के समाधान हेतु सम्पूर्ण जलागम क्षेत्र का सर्वेक्षण कर ऐसे स्थानों का चयन किया गया जहाँ प्राकृतिक ढाल, मिट्टी की संरचना तथा भूगर्भीय परिस्थितियाँ वर्षा जल के अधिकतम अवशोषण के लिए उपयुक्त थीं।

इन स्थलों पर चेकडैम, एनीकट, लघु अवरोध बाँध, खेत-तालाब तथा अन्य पुनर्भरण संरचनाओं का निर्माण किया गया। इन संरचनाओं ने वर्षा जल के वेग को कम किया, जल के ठहराव की अवधि बढ़ाई तथा भूमि में जल के प्रवेश की प्रक्रिया को तीव्र बनाया। परिणामस्वरूप असंतृप्त क्षेत्र (Vadose Zone) से होकर जल स्थानीय जलभृतों तक पहुँचा और भू-जल स्तर में क्रमिक वृद्धि होने लगी।

भू-जल स्तर में वृद्धि के साथ ही नदी की ओर होने वाला प्राकृतिक भूमिगत प्रवाह पुनः सक्रिय हुआ। यही प्रवाह आगे चलकर आधार प्रवाह के रूप में नदी में मिलने लगा। परिणामस्वरूप नदी का प्रवाह केवल वर्षा पर निर्भर न रहकर भू-जल द्वारा भी पोषित होने लगा। इस प्रकार बमाया एवं कोटवाली नदी में जलधारा का पुनः स्थापित होना इस अध्याय में वर्णित भू-जल पुनर्भरण एवं आधार प्रवाह के वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करता है।

इस क्षेत्र में किए गए कार्यों से यह भी स्पष्ट हुआ कि जल संरक्षण संरचनाओं का प्रभाव केवल नदी तक सीमित नहीं रहता। भू-जल स्तर बढ़ने से कुओं एवं हैंडपम्पों में जल उपलब्धता बढ़ी, सिंचाई का क्षेत्र विस्तृत हुआ, कृषि उत्पादन में सुधार हुआ, वनस्पति एवं जैव विविधता का पुनर्विकास हुआ तथा स्थानीय समुदाय की जल सुरक्षा सुदृढ़ हुई। इस प्रकार नदी पुनर्जीवन ने सम्पूर्ण जलागम क्षेत्र के सामाजिक, आर्थिक तथा पारिस्थितिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

बमाया एवं कोटवाली नदी का अनुभव यह सिद्ध करता है कि यदि नदी पुनर्जीवन कार्यक्रम वैज्ञानिक जलागम प्रबंधन, भू-जल विज्ञान तथा जनसहभागिता के समन्वित आधार पर संचालित किए जाएँ तो अपेक्षाकृत अल्प वर्षा वाले क्षेत्रों में भी स्थायी जल उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकती है।

5.1.15 समेकित तकनीकी विश्लेषण

इस अध्याय में वर्णित वैज्ञानिक सिद्धान्तों तथा विभिन्न नदी पुनर्जीवन परियोजनाओं के अनुभवों के आधार पर नदी पुनर्जीवन की प्रक्रिया को एक समेकित वैज्ञानिक अनुक्रम के रूप में समझा जा सकता है—

वर्षा → सतही जल संचयन → अवशोषण → भू-जल पुनर्भरण → जलभृत का पुनर्भरण → भू-जल स्तर में वृद्धि → आधार प्रवाह → नदी पुनर्जीवन → पारिस्थितिक एवं सामाजिक पुनर्स्थापना

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया का वैज्ञानिक आधार जल संतुलन सिद्धान्त (Water Balance), डार्सी का नियम (Darcy's Law), जलभृत गतिकी (Aquifer Dynamics) तथा आधार प्रवाह (Base Flow) की अवधारणाओं पर आधारित है। जब वर्षा जल का अधिक भाग भूमि में समाहित होता है, तब सतही अपवाह नियंत्रित होता है तथा भू-जल पुनर्भरण की मात्रा बढ़ जाती है। पुनर्भरित जल धीरे-धीरे प्राकृतिक प्रवणता (Hydraulic Gradient) के अनुसार नदी की ओर प्रवाहित होकर उसके स्थायी प्रवाह को बनाए रखता है।

इसी तथ्य को निम्नलिखित वैज्ञानिक सम्बन्ध द्वारा व्यक्त किया जा सकता है—

River Flow = Surface Runoff + Base Flow

अर्थात किसी भी नदी का कुल प्रवाह दो प्रमुख घटकों से निर्मित होता है—प्रत्यक्ष वर्षा से उत्पन्न सतही अपवाह तथा भू-जल द्वारा प्राप्त आधार प्रवाह। यदि आधार प्रवाह निरन्तर बना रहता है, तो नदी वर्ष भर प्रवाहित रह सकती है; किन्तु यदि भू-जल स्तर अत्यधिक नीचे चला जाए, तो आधार प्रवाह समाप्त हो जाता है और नदी मौसमी बन जाती है।

बमाया एवं कोटवाली नदी, अरवरी, सरसा तथा अन्य नदी पुनर्जीवन परियोजनाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि नदी पुनर्जीवन का स्थायी समाधान केवल नदी तल की सफाई अथवा गहरीकरण नहीं है। वास्तविक समाधान सम्पूर्ण जलागम क्षेत्र में वर्षा जल का संरक्षण, भू-जल पुनर्भरण तथा प्राकृतिक जल चक्र की पुनर्स्थापना है। यही कारण है कि जहाँ वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुरूप जलागम आधारित हस्तक्षेप किए गए, वहाँ भू-जल स्तर में वृद्धि, आधार प्रवाह की पुनर्स्थापना तथा नदी के स्थायी पुनर्जीवन जैसे परिणाम प्राप्त हुए।

अतः नदी पुनर्जीवन को पृथक् परियोजना के रूप में न देखकर समग्र जल संसाधन प्रबंधन (Integrated Water Resources Management) की प्रक्रिया के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है, जिसमें जल विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, स्थानीय पारम्परिक ज्ञान तथा जनसहभागिता समान रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

5.1.16 निष्कर्ष एवं नीतिगत संदेश

इस अध्याय में वर्षा जल संचयन, भू-जल पुनर्भरण तथा नदी पुनर्जीवन के वैज्ञानिक आधार का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक जल विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान तथा क्षेत्रीय अनुभवों के समन्वित विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि किसी भी नदी का स्थायी प्रवाह केवल प्रत्यक्ष वर्षा पर निर्भर नहीं होता, बल्कि उसका प्रमुख आधार भू-जल द्वारा प्राप्त होने वाला **आधार प्रवाह (Base Flow)** है। जब वर्षा जल का पर्याप्त भाग भूमि में समाहित होकर जलभृतों (Aquifers) का पुनर्भरण करता है, तब वही जल धीरे-धीरे नदी की ओर प्रवाहित होकर वर्षभर उसकी जलधारा को बनाए रखता है।

अध्याय में वर्णित जल चक्र, जल संतुलन सिद्धान्त, अवशोषण प्रक्रिया, डार्सी का नियम तथा जलभृत गतिकी (Aquifer Dynamics) यह सिद्ध करते हैं कि नदी पुनर्जीवन का वास्तविक समाधान नदी के भीतर नहीं, बल्कि उसके सम्पूर्ण जलागम क्षेत्र में निहित है। यदि वर्षा जल को उसके गिरने के स्थान के समीप ही रोककर भूमि में समाहित किया जाए, तो भू-जल स्तर में वृद्धि होती है, जलभृत पुनर्भरित होते हैं तथा नदी का प्राकृतिक आधार प्रवाह पुनः स्थापित हो जाता है।

राजस्थान में अरवरी, सरसा तथा अन्य नदियों के पुनर्जीवन के अनुभवों ने इन वैज्ञानिक सिद्धान्तों की व्यवहारिक पुष्टि की है। स्थानीय समुदायों द्वारा निर्मित जोहड़ों, चेकडैमों तथा अन्य जल संरक्षण संरचनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि परम्परागत ज्ञान और आधुनिक विज्ञान परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं। जहाँ वर्षा जल का स्थानीय स्तर पर संचयन किया गया, वहाँ भू-जल स्तर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, सूखे कुएँ पुनर्जीवित हुए, कृषि उत्पादन बढ़ा तथा अनेक नदियाँ पुनः प्रवाहित होने लगीं।

इसी प्रकार **बमाया एवं कोटवाली नदी के अध्ययन** से यह स्पष्ट हुआ कि नदी पुनर्जीवन की सफलता किसी एक संरचना या एक तकनीकी उपाय पर निर्भर नहीं करती। इसके लिए सम्पूर्ण जलागम क्षेत्र का वैज्ञानिक अध्ययन, उपयुक्त स्थलों का चयन, वर्षा जल संचयन, भू-जल पुनर्भरण, प्राकृतिक जल निकास मार्गों का संरक्षण तथा स्थानीय समुदाय की सक्रिय सहभागिता आवश्यक है। इन सभी घटकों के समन्वित प्रयास से ही स्थायी नदी पुनर्जीवन सम्भव हो सका।

इस अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह भी है कि जल संकट का मूल कारण वर्षा की कमी नहीं, बल्कि वर्षा जल का अपर्याप्त संरक्षण है। भारत के अधिकांश भागों में प्राप्त होने वाली वर्षा यदि वैज्ञानिक ढंग से संरक्षित एवं पुनर्भरित की जाए, तो भू-जल संकट, पेयजल संकट तथा नदी सूखने जैसी समस्याओं का दीर्घकालिक

समाधान सम्भव है। अतः भविष्य की जल नीति का केन्द्र बड़े बाँधों और दूरस्थ जल स्थानान्तरण योजनाओं के साथ-साथ विकेन्द्रीकृत वर्षा जल संचयन एवं भू-जल पुनर्भरण को भी बनाया जाना चाहिए।

जलवायु परिवर्तन (Climate Change) के वर्तमान परिदृश्य में वर्षा की अनिश्चितता बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में वर्षा की प्रत्येक बून्द का स्थानीय स्तर पर संरक्षण केवल पर्यावरणीय आवश्यकता नहीं, बल्कि राष्ट्रीय जल सुरक्षा की अनिवार्यता बन गया है। अतः प्रत्येक नदी जलागम क्षेत्र के लिए वैज्ञानिक जल बजट (Water Budget), भू-जल पुनर्भरण योजना तथा समुदाय आधारित जल प्रबंधन प्रणाली विकसित करना समय की आवश्यकता है।

नीतिगत दृष्टि से निम्नलिखित बिन्दुओं पर विशेष बल दिया जाना चाहिए—

1. प्रत्येक नदी के लिए सम्पूर्ण जलागम क्षेत्र आधारित प्रबंधन योजना तैयार की जाए।
2. वर्षा जल संचयन एवं भू-जल पुनर्भरण को नदी संरक्षण कार्यक्रमों का अनिवार्य भाग बनाया जाए।
3. जोहड़, चेकडैम, एनीकट, खेत-तालाब तथा पारम्परिक जल संरचनाओं के संरक्षण एवं पुनर्निर्माण को प्रोत्साहन दिया जाए।
4. भू-जल दोहन एवं भू-जल पुनर्भरण के मध्य वैज्ञानिक संतुलन स्थापित किया जाए।
5. प्रत्येक विकास परियोजना में जलभृत संरक्षण तथा प्राकृतिक जल निकास मार्गों की सुरक्षा सुनिश्चित की जाए।
6. नदी पुनर्जीवन कार्यक्रमों में स्थानीय समुदायों, ग्राम संस्थाओं तथा स्वैच्छिक संगठनों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाए।
7. विद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा तकनीकी संस्थानों में जलागम विज्ञान एवं नदी पुनर्जीवन को अध्ययन एवं अनुसंधान का महत्त्वपूर्ण विषय बनाया जाए।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि नदी पुनर्जीवन केवल जल उपलब्धता बढ़ाने का कार्यक्रम नहीं है, बल्कि यह प्राकृतिक संसाधनों के सतत् प्रबंधन, पारिस्थितिक संतुलन, ग्रामीण विकास तथा भावी पीढ़ियों की जल सुरक्षा से जुड़ा एक समग्र राष्ट्रीय अभियान है। विज्ञान, परम्परागत ज्ञान और जनसहभागिता का समन्वित मॉडल ही भारत की नदियों को पुनर्जीवित करने का सर्वाधिक प्रभावी एवं टिकाऊ मार्ग सिद्ध हो सकता है।

बमाया एवं कोटवाली नदी सहित देश के विभिन्न नदी पुनर्जीवन प्रयास इस सत्य के सशक्त प्रमाण हैं कि *यदि वर्षा की प्रत्येक बून्द को भूमि में समाहित किया जाए, तो भू-जल पुनर्जीवित होगा; भू-जल पुनर्जीवित होगा, तो नदी पुनर्जीवित होगी; और नदी पुनर्जीवित होगी, तो सम्पूर्ण जीवन एवं पारिस्थितिकी पुनः समृद्ध होगी।*

5.2 छोटी नदियों को पुनर्जीवित की आवश्यकता

भारत के भूजल भंडार खाली होने से हमारी सारी छोटी नदियां सूख कर मर रही है। इसलिए छोटी नदियों को पुनर्जीवित करना सबसे पहला काम होना चाहिए। वेदों के अनुसार 14.6 किलोमीटर लंबाई वाली जलधारा को नदी कहा जा सकता है। आधुनिक में नदी की परिभाषा, विन्यास और स्वरूप के नाप में परिवर्तन आया है। पर भारतीय शास्त्रों में जिसे नदी का सकते हैं वह 14.6 किलोमीटर लंबी होना जरूरी है। इतनी या उससे अधिक लंबाई वाली जलधारा को भी भारत में नदी कहा जा सकता था।

यूं तो भारत की नदियां की लंबाई 2800 किलोमीटर तक है, परंतु इस 2800 किलोमीटर लंबी नदी में सैकड़ांे और हजारों छोटी नदियां बन जाती है। इन छोटी नदियों को जब तक हम शुद्ध सदानीरा बनाकर, पुनर्जीवित नहीं करेंगे, तब तक भारत को पानीदार बने रहने में शंका है। भारत को यदि पानीदार बनना है तो छोटी नदियों को शुद्ध सदानीरा बनाने के लिए धरती का पेट पानी से भरना होगा। जब हम धरती का पेट पानी से भरेंगे, तब हमारी नदियां शुद्ध सदानीरा होकर बहने लगेंगी। आज नदियों का सतही प्रवाह, अधो भूजल और भूजल प्रवाह के साथ गहरा योग रखता है। इस योग को देखना और समझना बहुत जरूरी है। तरुण भारत संघ ने सबसे पहले अरवरी को पुनर्जीवित करने का काम किया था। इस नदी को पुनर्जीवित करने में 12 साल लगे थे। लेकिन इस नदी की लंबाई भी 60 किलोमीटर है। इस 60 किलोमीटर लंबी नदी में बहुत सारी छोटी धारा है जो 14.6 किलोमीटर से ज्यादा लंबी है; उन्हें नदी बोला जा सकता है। पर वहां का समाज केवल इसकी जो मुख्य धारा को ही "अरवरी" नदी बोलते हैं। तरुण भारत संघ ने यह तनिक भी प्रयास नहीं किया कि, उसकी अलग धाराओं को कुछ नए नाम देकर नदी बोलंे। क्योंकि ज्ञान, लोक विज्ञान और लोक समझदारी में नाम के निर्धारण है, उन्हीं को मानना और उन्हीं के अनुरूप आगे चलकर, काम करना ही अच्छा होता है। इसलिए तरुण भारत संघ ने उन्हें प्राचीन लोगों के दिए हुए नाम का पालन किया, उन्हीं को अपनाया है।

इसी तरह यमुना में कई सहायक, उपसहायक अलग-अलग नदियों को नदी मानना जरूरी है। आजकल भारत सरकार और राज्य सरकारें नदियों के पुनर्जीवन के लिए बहुत बातें कर रही हैं। नदी पुनर्जीवन का भारत सरकार ने एक अलग से मंत्रालय भी बनाया, लेकिन नदियां तो मंत्रालय बनने के बाद भी तेजी से सूख ही रही है।

नदियां गंदे नाले बन रहे हैं और बेपानी होकर मर रही हैं। यह नदियों का मरना यह बताता है कि, जब किसी देश की नदियां सूखने लगती है, तो वहां की सभ्यताएं भी सूखकर मर जाती है। भारत एक सांस्कृतिक समृद्ध सभ्यता का धनी है। इस भारतीय सभ्यता और सांस्कृतिक समृद्ध राष्ट्र की नदियां यदि सूख रही है , फिर हम कैसे कहें कि, हमारी सभ्यता और संस्कृति समृद्ध है? सभ्यता और संस्कृति को जन्म देने वाली नदियां सूख गई है। हमे अपनी सभ्यता और संस्कृति का संरक्षण करने के लिए, अपनी सभ्यताओं को नदियों के साथ जोड़कर देखने की जरूरत है।

नदियों के पुनर्जीवन और भूजल के पुनर्भरण इन दोनों का गहरा रिश्ता है। भारत सरकार को अटल भूजल योजना और नदी पुनर्जीवन इन सबको एक साथ जोड़कर, एक बड़े अभियान के तौर पर काम शुरू करना चाहिए। यदि सरकार की भूजलपुनर्भरण का काम तेज नहीं करेगी, तो भारत की छोटी नदियां सूखती ही जाएंगी। साल में कभी भी एक महीना या दो महीना वर्षा देरी से होगी तो सब बेपानी होने लगेंगे। इसलिए भूजल के भंडारों को भरना होगा।

भारत में जब तक जल का संरक्षण करके, भूजल पुनर्भरण नहीं होगा, तब तक भारत समझदार, इज्जतदार और पानीदार नहीं बन सकता। भारत को वर्षा जल की एक-एक बूंद का संग्रह करके, भूजल में सुरक्षित रखना होगा। ऐसे काल में उस वर्षा जल से पुनर्भरण होने वाले जल को हम संरक्षित और सुरक्षित करके, अनुशासित होकर उपयोग करने के काम में लगे। तब भारत की बेपानी धरती व नदियां पानीदार बन जाएगी। इस हेतु नदियों के पर छोटे-छोटे काम भी बहुत प्रभावित परिवर्तन कर सकते हैं। छोटी नदियों के जल ग्रहण क्षेत्र में जितने भी जलधाराएं हैं, उनको उद्गम से लेकर संगम तक रक्षण-संरक्षण किनारों पर रहने वाले समाज के द्वारा करना जरूरी है । उस जल संरक्षण से ही वहां का भूजल पुनर्भरण होगा। भूजल पुनर्भरण से सूखी छोटे-छोटे झरने व जलधाराएं फिर से बहने लगेंगी। इस समय हमें छोटी जलधाराओं को बहने योग्य शुद्ध सदानीरा होकर, धरती को हरा-भरा बनाकर, धरती पर रहने वाले लोगों को नदियों के साथ जुड़ना होगा।

भारत छोटी नदियों को पुनर्जीवित करेगा, तो भारत का समाज नदियों के साथ जुड़कर, नदियों को शुद्ध सदानीरा बनाने में जुट जाएगा। इसकी शुरुआत सरकारों को करनी होगी क्योंकि समाज जब भी कोई नदी पर काम करता है, तो सरकार उसके खिलाफ कानूनी कार्रवाई कर देती है। इसलिए लोग नदी पर काम करने से डरते हैं। सरकारी यदि आगे आकर इस तरह के काम करेगी तो मेरी समझ में एक सुखद बदलाव होगा। जैसे महाराष्ट्र में ''जल साक्षरता और चला जानूया नदीला'' कार्यक्रम आरंभ होने से प्रदेश के युवा नदियों के साथ जुड़ गए और युवा लोगों ने अपने नदियों को पुनर्जीवित करने के लिए नदियों के संकट समाधान करने में लगे

है। इससे छोटी नदियों को पुनर्जीवित करने बड़ा सहयोग हो रहा है। जब समाज एक साथ मिलकर ऐसे कार्य करे तो नदियां भी पुनर्जीवित हो जाती है।

5.3 जल सरंक्षण की भारतीय परम्परा

5.3.1 भूमिका

भारत प्राचीन काल से ही जल संस्कृति का अग्रदूत रहा है। भारतीय सभ्यता का विकास नदियों, झीलों, सरोवरों तथा वर्षा आधारित जल प्रणालियों के आसपास हुआ। जल को केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि **'जीवन', 'धर्म', 'संस्कृति' और 'समृद्धि'** का आधार माना गया। यही कारण है कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, उपनिषद, पुराण, रामायण तथा महाभारत सहित अनेक प्राचीन ग्रंथों में जल की महिमा का विस्तृत वर्णन मिलता है।

भारतीय चिंतन में जल को पंचमहाभूतों में एक महत्वपूर्ण तत्व माना गया है। ऋग्वेद में जल को औषधि, अमृत तथा जीवनदाता कहा गया है—

"आपो हिष्ठा मयोभुवस्ताना ऊर्जे दधातन।"
(ऋग्वेद 10.9.1)

अर्थात्—हे जल! तुम सुख, शक्ति, स्वास्थ्य और समृद्धि प्रदान करने वाले हो।
इस प्रकार भारतीय संस्कृति में जल संरक्षण केवल तकनीकी आवश्यकता नहीं बल्कि धार्मिक, सामाजिक और नैतिक उत्तरदायित्व रहा है।

5.3.2 प्राचीन भारत की जल संरक्षण व्यवस्था

भारत में वर्षा का अधिकांश भाग केवल कुछ महीनों में प्राप्त होता है। इसलिए हमारे पूर्वजों ने वर्षाजल का अधिकतम संचयन करने के लिए स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप अनेक जल संरचनाओं का विकास किया। इनमें प्रमुख हैं—

- जोहड़
- बावड़ी (बावली)
- कुएँ
- तालाब
- पोखर
- सरोवर
- एनीकट
- बंध
- आहर–पाइन प्रणाली
- कुंड एवं टांके

ये संरचनाएँ केवल जल संग्रहण के साधन नहीं थीं, बल्कि भू-जल पुनर्भरण (Groundwater Recharge), सिंचाई, पशुपालन तथा पेयजल आपूर्ति का स्थायी आधार थीं। **परिशिष्ट-I ; चित्र संख्या 5.5**(**अ**)**, (ब)** व **(स)** देखे ।

5.3.3 भारतीय जल संरचनाओं की विशेषताएँ

भारतीय जल संरक्षण प्रणाली निम्न सिद्धांतों पर आधारित रही—

- **वर्षा की प्रत्येक बूंद का संचयन**
- **वर्षा जल को भूमि में समाहित करना**- बहकर नष्ट होने से रोकना
- **भू-जल पुनर्भरण-** तालाब, जोहड़ तथा कुओं के माध्यम से जल को धरती के भीतर पहुँचाकर जल स्तर बनाए रखना।
- **स्थानीय सामग्री का उपयोग-** पत्थर, मिट्टी, चूना तथा स्थानीय संसाधनों से जल संरचनाओं का निर्माण।
- **सामुदायिक प्रबंधन-** जल स्रोत किसी व्यक्ति के नहीं, पूरे समाज की सामूहिक संपत्ति माने जाते थे।
- **प्रकृति के साथ संतुलन-** नदियों के प्राकृतिक प्रवाह में न्यूनतम हस्तक्षेप करते हुए जल संरक्षण करना।

5.3.4 भारत की प्रमुख पारम्परिक जल संरक्षण प्रणालियाँ

(क) जोहड़

राजस्थान में विकसित जोहड़ वर्षाजल संचयन की अत्यंत प्रभावी तकनीक है। छोटे-छोटे मिट्टी अथवा पत्थर के बाँध बनाकर वर्षा जल को रोका जाता है जिससे भू-जल स्तर बढ़ता है तथा समीपवर्ती कुएँ एवं नदियाँ पुनर्जीवित होने लगती हैं।

तरुण भारत संघ द्वारा चम्बल क्षेत्र में हजारों जोहड़ों के निर्माण से अनेक मृतप्राय नदियों में पुनः प्रवाह स्थापित हुआ।

(ख) बावड़ी एवं बावली

गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा उत्तर भारत में निर्मित बावड़ियाँ जल संरक्षण के साथ-साथ उत्कृष्ट स्थापत्य कला का उदाहरण हैं।

इनकी विशेषताएँ—

- वर्ष भर जल उपलब्धता
- भू-जल संरक्षण
- तापमान नियंत्रण
- सामाजिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में उपयोग

रानी की वाव (गुजरात) इसका विश्वप्रसिद्ध उदाहरण है।

(ग) तालाब

भारत के लगभग प्रत्येक गाँव में तालाब निर्माण की परम्परा रही है।

तालाबों के प्रमुख लाभ—

- वर्षाजल संचयन
- सिंचाई
- मत्स्य पालन
- भू-जल पुनर्भरण

- जैव विविधता संरक्षण

(घ) कुंड एवं टांके

मरुस्थलीय क्षेत्रों में प्रत्येक परिवार वर्षाजल संग्रह हेतु भूमिगत टांकों का निर्माण करता था। यह प्रणाली आज भी जल संरक्षण का अत्यंत प्रभावी उदाहरण मानी जाती है।

5.3.5 वैदिक साहित्य में जल संरक्षण

वेदों में- जल को दिव्यता प्रदान करते हुए उसके संरक्षण का संदेश दिया गया है। अथर्ववेद में जल को रोगनाशक एवं जीवनदाता कहा गया है।

मनुस्मृति तथा अर्थशास्त्र में- जलाशयों के निर्माण, संरक्षण तथा रखरखाव को राज्य एवं समाज दोनों का दायित्व माना गया है।

सम्राट अशोक ने- मार्गों के किनारे कुएँ, तालाब तथा वृक्ष लगाने की व्यवस्था कराई थी। चोल, पल्लव, चालुक्य एवं राजपूत शासकों ने विशाल जलाशयों एवं सिंचाई प्रणालियों का निर्माण कराया।

5.3.6 भारतीय जल संस्कृति एवं जनभागीदारी

भारत की जल परम्परा की सबसे बड़ी विशेषता सामुदायिक सहभागिता रही है।
ग्राम समाज—

- श्रमदान करता था।
- जलाशयों की सफाई करता था।
- जल वितरण के नियम बनाता था।
- जल स्रोतों का संरक्षण करता था।

इसी कारण जल संरक्षण समाज का उत्सव बन जाता था।

5.3.7 आधुनिक समय में भारतीय परम्परा की प्रासंगिकता

वर्तमान समय में—

- जलवायु परिवर्तन,
- भू-जल का अत्यधिक दोहन,
- अनियोजित शहरीकरण,
- नदियों का प्रदूषण,
- वर्षा की अनिश्चितता

जैसी समस्याओं के समाधान के लिए भारतीय पारम्परिक जल प्रणालियाँ पुनः अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही हैं।
आज वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं कि—

- वर्षा जल संचयन,
- लघु जल संरचनाएँ,
- जलागम विकास,

- भू-जल पुनर्भरण,
- सामुदायिक भागीदारी

ही जल संकट का दीर्घकालिक समाधान हैं।

5.3.8 नदी पुनर्जीवन में भारतीय परम्परा की भूमिका

बमाया एवं कोटवाली नदी के पुनर्जीवन में भी यही सिद्धांत अपनाए गए—

- वर्षाजल संचयन
- जोहड़ों का निर्माण
- लघु बाँध एवं चेकडैम
- भू-जल पुनर्भरण
- जनसहभागिता
- स्थानीय नेतृत्व
- पारम्परिक ज्ञान एवं आधुनिक विज्ञान का समन्वय

इन प्रयासों से नदी के आधार प्रवाह (Base Flow) में वृद्धि हुई तथा सूखी नदी पुनः प्रवाहित होने लगी।

5.3.9 निष्कर्ष

भारतीय जल संरक्षण परम्परा विश्व की सबसे समृद्ध एवं वैज्ञानिक जल प्रबंधन प्रणालियों में से एक है। यह केवल जल संचयन की तकनीक नहीं, बल्कि प्रकृति के साथ संतुलित जीवन-दर्शन का प्रतीक है। आज जब विश्व जल संकट का सामना कर रहा है, तब भारत की पारम्परिक जल संरचनाएँ, सामुदायिक सहभागिता तथा वर्षाजल संचयन की संस्कृति सतत विकास का प्रभावी मार्ग प्रस्तुत करती हैं।

बमाया एवं कोटवाली नदी के पुनर्जीवन ने यह सिद्ध कर दिया है कि यदि भारतीय जल परम्परा को आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों के साथ पुनः अपनाया जाए, तो न केवल भू-जल स्तर में सुधार संभव है, बल्कि मृतप्राय नदियों को भी पुनर्जीवित किया जा सकता है। अतः भारतीय जल संस्कृति का पुनर्जागरण ही जल सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण तथा सतत विकास की दिशा में सबसे सशक्त कदम सिद्ध होगा।

5.4 जल संरचनाओं का स्थान चयन

5.4.1 भूमिका

किसी भी जल संरक्षण अथवा नदी पुनर्जीवन कार्यक्रम की सफलता केवल जल संरचनाओं (Water Conservation Structures) के निर्माण पर निर्भर नहीं करती, बल्कि इस बात पर अधिक निर्भर करती है कि उन संरचनाओं का **स्थान चयन (Site Selection)** कितना वैज्ञानिक, तकनीकी तथा भौगोलिक दृष्टि से उपयुक्त है।

यदि जल संरचना का स्थान सही चुना जाए तो सीमित लागत में अधिक जल संचयन, भू-जल पुनर्भरण तथा नदी के आधार प्रवाह (Base Flow) में उल्लेखनीय वृद्धि संभव होती है। इसके विपरीत, अनुचित स्थान पर निर्मित संरचना अपेक्षित परिणाम नहीं दे पाती तथा कई बार जलभराव, कटाव अथवा संरचना की विफलता का कारण भी बन जाती है।

भारत की पारम्परिक जल संस्कृति में भी जल संरचनाओं के निर्माण से पूर्व स्थलाकृति, वर्षा, मिट्टी, चट्टानों, प्राकृतिक ढाल, जलागम क्षेत्र तथा स्थानीय जलधाराओं का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता था। आधुनिक जल विज्ञान (Hydrology), भू-जल विज्ञान (Hydrogeology) तथा भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS) ने इन सिद्धान्तों को और अधिक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है।

5.4.2 जल संरचनाओं के स्थान चयन के उद्देश्य

जल संरचना के उपयुक्त स्थान चयन का प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है—

- वर्षा जल का अधिकतम संचयन।
- भू-जल पुनर्भरण में वृद्धि।
- सतही अपवाह (Runoff) को नियंत्रित करना।
- मिट्टी के कटाव को रोकना।
- नदी के आधार प्रवाह को बनाए रखना।
- सिंचाई एवं पेयजल की उपलब्धता बढ़ाना।
- निर्माण लागत को न्यूनतम रखना।
- संरचना की दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित करना।

5.4.3 स्थान चयन के वैज्ञानिक आधार

(क) जलागम क्षेत्र (Watershed Area)

जलागम क्षेत्र वह सम्पूर्ण भू-भाग है जहाँ गिरने वाला वर्षाजल किसी एक जलधारा अथवा नदी में एकत्रित होता है। जल संरचना का निर्माण ऐसे स्थान पर किया जाना चाहिए जहाँ पर्याप्त जलागम क्षेत्र उपलब्ध हो, जिससे वर्षा ऋतु में पर्याप्त जल संचयन हो सके।

(ख) स्थलाकृति (Topography)

ढाल (Slope) जल प्रवाह को नियंत्रित करती है।

- अत्यधिक ढाल पर जल तीव्र गति से बह जाता है।
- बहुत कम ढाल पर जलभराव की समस्या उत्पन्न होती है।
- मध्यम ढाल वाले क्षेत्र जल संरचना के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माने जाते हैं।

इसके लिए कंटूर मैप (Contour Map) का उपयोग अत्यंत उपयोगी है।

(ग) भूगर्भीय संरचना (Geology)

जल पुनर्भरण के लिए चट्टानों की प्रकृति अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

उपयुक्त चट्टानें—

- बलुआ पत्थर
- दरारयुक्त बेसाल्ट
- कंकरीली परतें
- जलधारक (Aquifer) क्षेत्र

अनुपयुक्त—

- कठोर ग्रेनाइट
- अभेद्य शैल (Impervious Rocks)

(घ) मृदा का प्रकार (Soil Type)

जल संरचना के स्थान चयन में मिट्टी की जलधारण क्षमता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

मिट्टी का प्रकार	उपयुक्तता
दोमट	सर्वश्रेष्ठ
बलुई दोमट	अच्छी
चिकनी मिट्टी	जल संग्रह हेतु उपयुक्त
अत्यधिक रेतीली	कम उपयुक्त

(ङ) वर्षा की मात्रा

कम वर्षा वाले क्षेत्रों में छोटी-छोटी जल संरचनाएँ अधिक प्रभावी होती हैं, जबकि अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में बड़े जलाशय एवं चेकडैम उपयुक्त होते हैं।

5.4.4 जल संरचनाओं के चयन के तकनीकी मानदण्ड

उपयुक्त स्थान चयन करते समय निम्नलिखित तकनीकी बिंदुओं का अध्ययन आवश्यक है—

- जलागम क्षेत्र का आकार
- अधिकतम बाढ़ प्रवाह
- प्राकृतिक नाले की चौड़ाई
- आधार शिला
- नदी की ढाल
- अपवाह (Runoff) गुणांक Coefficient)
- अवसादन (Sediment Load)
- जल निकासी की व्यवस्था
- आसपास की कृषि भूमि
- पर्यावरणीय प्रभाव

5.4.5 विभिन्न जल संरचनाओं हेतु उपयुक्त स्थान

(क) चेकडैम

उपयुक्त स्थान—

- संकरे नाले

- मजबूत आधार शिला
- मध्यम ढाल
- कम चौड़ाई वाले नदी भाग

(ख) एनीकट

उपयुक्त स्थान—

- चट्टानी नदी तल
- स्थायी जलधारा
- मध्यम प्रवाह

(ग) जोहड़

उपयुक्त स्थान—

- छोटे जलागम क्षेत्र
- प्राकृतिक अवसाद (Depression)
- ग्रामीण क्षेत्र
- कृषि भूमि के ऊपरी भाग

(घ) परकोलेशन टैंक

उपयुक्त स्थान—

- अधिक पारगम्य मिट्टी
- गहरे जलभृत (Aquifer)
- समतल भूमि

(ङ) फार्म पॉण्ड

उपयुक्त स्थान—

- खेत का निचला भाग
- वर्षा जल का प्राकृतिक बहाव क्षेत्र
- सिंचाई की आवश्यकता वाले खेत

5.4.6 आधुनिक तकनीकों का उपयोग

आज जल संरचनाओं के स्थान चयन में निम्न तकनीकों का व्यापक उपयोग किया जा रहा है—

- GIS (Geographical Information System)
- Remote Sensing
- Digital Elevation Model (DEM)
- Drone Survey
- GPS Mapping
- Hydrogeological Survey

इन तकनीकों से जलागम क्षेत्र, ढाल, मिट्टी, चट्टान तथा जल प्रवाह का सटीक विश्लेषण किया जा सकता है।

5.4.7 नदी पुनर्जीवन में स्थान चयन का महत्व
बमाया एवं कोटवाली नदी के पुनर्जीवन के दौरान प्रत्येक जल संरचना का चयन विस्तृत क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर किया गया। स्थानीय भू-आकृति, जलागम क्षेत्र, प्राकृतिक जलधाराओं तथा भू-जल स्तर का अध्ययन कर जोहड़, चेकडैम, एनीकट एवं अन्य संरचनाएँ निर्मित की गईं।

फलस्वरूप—
- वर्षाजल का अधिक संचयन हुआ।
- भू-जल स्तर में वृद्धि हुई।
- नदी का आधार प्रवाह पुनः स्थापित हुआ।
- कृषि उत्पादन बढ़ा।
- जैव विविधता में सुधार हुआ।
- ग्रामीण आजीविका मजबूत हुई।

यह उदाहरण सिद्ध करता है कि *सही स्थान पर निर्मित छोटी जल संरचना भी बड़े बाँधों से अधिक प्रभावी सिद्ध हो सकती है।*

5.4.8 स्थान चयन में सामुदायिक सहभागिता
भारतीय परम्परा में जल संरचनाओं का चयन केवल अभियन्ताओं द्वारा नहीं किया जाता था, बल्कि स्थानीय किसानों, ग्राम पंचायतों, चरवाहों एवं अनुभवी ग्रामीणों के ज्ञान को भी महत्व दिया जाता था।
सामुदायिक सहभागिता से—
- स्थानीय जल प्रवाह की जानकारी मिलती है।
- पुराने जल स्रोतों का इतिहास ज्ञात होता है।
- रखरखाव सरल होता है।
- संरचनाओं की दीर्घकालिक सफलता सुनिश्चित होती है।

5.4.9 निष्कर्ष
जल संरचनाओं का स्थान चयन नदी पुनर्जीवन एवं जल संरक्षण की आधारशिला है। यदि स्थल चयन वैज्ञानिक सर्वेक्षण, भू-वैज्ञानिक अध्ययन, जलागम विश्लेषण तथा स्थानीय अनुभव के समन्वय से किया जाए, तो कम लागत में अधिकतम जल संरक्षण संभव है। आधुनिक तकनीकों एवं भारतीय पारम्परिक ज्ञान का समन्वित उपयोग भविष्य के जल प्रबंधन की सबसे प्रभावी रणनीति सिद्ध होगा।

बमाया एवं कोटवाली नदी पुनर्जीवन का अनुभव स्पष्ट करता है कि उचित स्थान पर निर्मित जोहड़, चेकडैम, एनीकट तथा परकोलेशन संरचनाएँ न केवल भू-

जल पुनर्भरण करती हैं, बल्कि नदी के प्राकृतिक प्रवाह को पुनर्स्थापित कर सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र को पुनर्जीवित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

5.5 बजट, कार्य संचालन, उत्तरदायित्व एंव जनभागीदारी

तरुण भारत संघ द्वारा जल संरक्षण संरचनाओं के स्थल-चयन (साइट सलैक्शन) की प्रक्रिया विभिन्न्ा चरणों में पूरी की जाती है। सर्व प्रथम प्रति वर्ष की जाने वाली तीन स्थायी पदयात्राओं (पेड़ लगाओ पेड़ बचाओ, जोहड़ बनाओ, पानी बचाओ व ग्राम स्वावलम्बन पदयात्रा) के दौरान विभिन्न्ा गाँवों में लोगों से जन-सम्पर्क करते हुए वर्षा-जल संरक्षण के महŸव पर चर्चा करते हैं। स्थानीय बुजुर्गों के माध्यम से युवाओं के मन में पानी के काम के प्रति चेतना व जागृति लाने का प्रयास करते हैं। जल संरचना के निर्माण में तरुण भारत संघ के आर्थिक योगदान तथा गाँव की सहभागिता व श्रमदान के बारे में भी विस्तार से समझाते हैं। इस दौरान यदि किसी साइट के लिए प्रस्ताव आता है और यदि सम्भव हुआ, तो उसी समय साइट देख लेते हैं; अन्यथा तरुण भारत संघ कार्यालय में आकर सम्पर्क करने को कहते हैं।

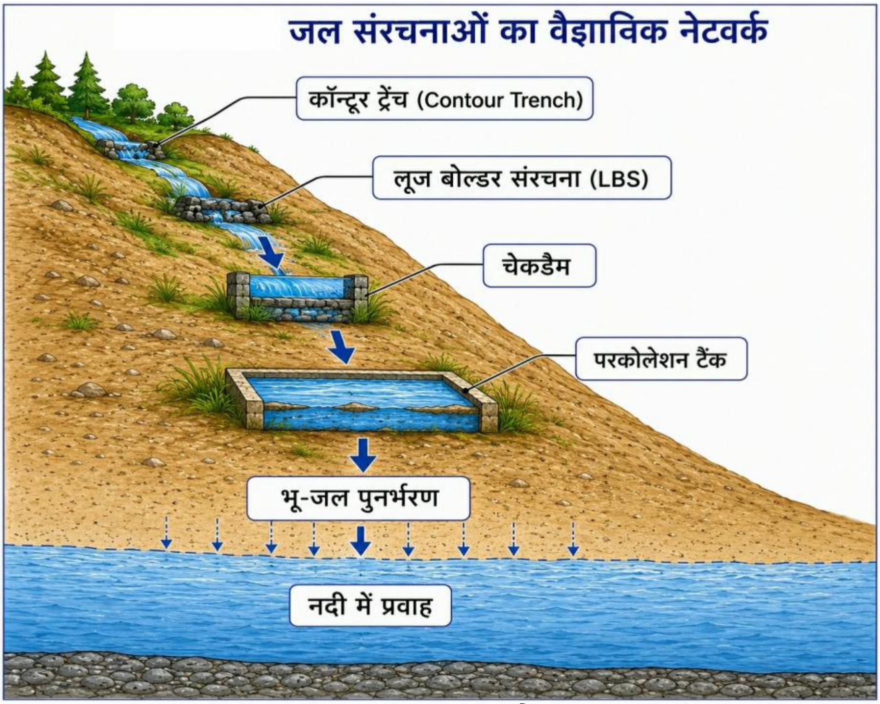

चित्र 5.6: जल संरचनाओं का वैज्ञानिक नेटवर्क

पदयात्राओं के अलावा समय में भी जोहड़ निर्माण के लिए विभिन्न क्षेत्र व विभिन्न गाँवो के लोग तरुण भारत संघ कार्यालय में आकर सम्पर्क करते हैं, अथवा दूरभाष से सम्पर्क करते हैं। उनसे बातचीत करने के पश्चात् सम्बन्धित क्षेत्र में कार्यरत कार्यकर्ता अथवा अन्य कार्यकर्ता वहाँ जाते हैं। वहाँ ग्राम समुदाय के साथ बैठक (मीटिंग) करते हैं। बैठक में तरुण भारत संघ का परिचय, कार्य पद्धति, सिद्धान्त व संगठन आदि के बारे में जानकारी देने के बाद प्रस्तावित जल संरचना के निर्माण में तरुण भारत संघ का आर्थिक योगदान तथा गाँव का श्रमदान कितना-कितना रहेगा ? इस विषय पर स्पष्ट चर्चा होती है। प्रस्तावित काम में गाँव के किसी व्यक्ति का विरोध तो नहीं है ? यह जानकारी लेते हैं। इन सभी शर्तों के मानने पर गाँव की तरफ से संस्था के नाम एक प्रार्थना-पत्र दिया जाता है।

तत्पश्चात् गाँव के अनुभवी और सक्रिय लोगों, विषेष रूप से बुजुर्ग किसानों व पशु पालकों के साथ साइट पर जाते हैं। साइट सलैक्शन में गाँव के इन्हीं अनुभवी लोगों द्वारा पहले से निर्धारित की हुई साइट को अथवा अब देख कर निर्धारित की जाने वाली साइट को प्राथमिकता देते हुए पिछले दस-बीस-पचास साल के दौरान यहाँ वर्षा में बह कर जाने वाले पानी की क्या स्थिति रही होगी, इसकी जानकारी लेते हैं। उनके द्वारा साइट निर्धारित हो जाने के बाद हम अपने तरीके से पुनरावलोकन करते हैं। ऐसा करते हुए साइट को विभिन्न्ा दृष्टिकोणों से देखना जरूरी है। इसे संक्षेप में नीचे बताया जा रहा है।

- संरचना (जोहड़) बनाने का उद्देश्य क्या है? यदि पशुओं पानी पीने के लिए जोहड़ बनाना है तो हमें ऐसी जगह चयनित करनी होगी, जहाँ पर जमीन के अन्दर की चट्टानों की संधियाँ (दरारें) क्षैतिज अर्थात् समतल हों। क्षैतिज चट्टानों के ऊपर भरा हुआ पानी धरती में जल्दी नीचे नहीं जाता। इसलिए ऐसी जगह पर रोका गया पानी पशु-पक्षियों व जंगली जानवरों के लिए साल-भर रुक जाता है। जमीन के अन्दर की चट्टानों की सळ कैसी हैं ? इसका अंदाजा आसपास के कच्चे कुओं से, खोदी गई जमीन से अथवा पेड़ों की श्रेणी से लगा सकते हैं। जहाँ काँटेदार व छोटी जड़ों के पेड़ होंगे, वहाँ जमीन के अन्दर की चट्टानों की दरारें (संधियाँ) क्षैतिज होंगीं, अर्थात् वहाँ पानी जल्दी नीचे नहीं जायेगा।
- यदि वर्षा-जल को भू-जल पुनर्भरण (रीचार्ज) के लिए संग्रहीत करना हो, तो वहाँ ऐसी जगह चयनित करनी होगी, जहाँ पर जमीन के अन्दर की चट्टानों की संधियाँ (दरारें) ऊर्ध्वाधर अर्थात् ढालू होनी चाहिए। इसकी पहचान है कि जहाँ चौड़ी पत्ती वाले, छायादार व लम्बी जड़ों वाले पेड़ होंगे, वहाँ पर जमीन के अन्दर की चट्टानों की संधियाँ (दरारें) ऊर्ध्वाधर अर्थात् ढालू होंगी। ऐसी जगह पर रोका गया पानी तिरछी दरारों के कारण तेजी से भूमिगत हो जाता है, जिससे कुओं का जल-स्तर ऊपर आ जाता है।

- वर्षा-जल संरक्षण हेतु स्थल (साइट) ऐसा होना चाहिए, पाल बनाने की जगह ज्यादा से ज्यादा सँकड़ी होनी चाहिए और जल-भराव क्षेत्र की जगह पर्याप्त गहरी और अधिकतम विस्तार वाली होनी चाहिए। पाल के दोनों सिरों की तरफ की जगह पाल के टॉप लेवल से ऊँची होनी चाहिए।
- स्थल (साइट) का जलागम क्षेत्र (जलग्रहण क्षेत्र) पर्याप्त होना चाहिए। बड़े जलागम क्षेत्र को टोपो शीट के माध्यम से सहज ही निकाल सकते हैं। जलागम क्षेत्र का ढाल कैसा है, जंगल सघन है या विरल तथा बह कर आने वाली मिट्टी रेतीली है या चिकनी ? इन सब बातों की जानकारी होना भी बहुत जरूरी है। जलागम का ढाल (स्लोप) ज्यादा होगा तो पानी तेजी से बह कर आयेगा और ढाल कम होगा तो पानी सहजता से आयेगा। जंगल सघन होगा तो ऊपर की मिट्टी कम कट कर अयेगी तथा जंगल विरल होगा तो मिट्टी ज्यादा कट कर आयेगी। इसी प्रकार चिकनी मिट्टी कम कट कर आती है तथा रेतीली मिट्टी तेजी से कट कर आती है। बह कर आने वाली मिट्टी जल्दी ही भराव क्षेत्र को मिट्टी से भर देती है। इसलिए इन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।
- अपरा की जगह, यदि सम्भव हो तो पाल के दोनों सिरों से दूर होना ज्यादा सुरक्षित है। पर यदि दूर नहीं मिले तो पाल के दोनों में से कोई से भी एक ऐसे सिरे की तरफ रखें, जहाँ की नीचे की जमीन दूसरे सिरे के नीचे की जमीन से अपेक्षाकृत ऊँची हो तथा प्राकृतिक रूप से पुख्ता (पक्का) भी हो। ऐसा न होने पर पाल के किसी एक तरफ पक्की (सीमेंटेड) अपरा बनाते हैं। अपरा पाल के बीच में तभी बनानी चहिए, जब बाँध किसी मुख्य नाले या नदी पर बनाना आवश्यक हो, और साथ ही साइड में अपरा के लिए कोई उपयुक्त जगह नहीं हो।
- जोहड़ बाँध के काम में मिट्टी के काम को प्राथमिकता देनी चाहिए। साइट ऐसी होनी चाहिए, जहाँ पाल के लिए आवश्यक मिट्टी की मात्रा वहीं पर स्थानीय रूप से उपलब्ध हो। मिट्टी के काम में, खास तौर पर ऊँचे व बड़े बाँध में, पाल बनाते समय नीचे पाल की चौड़ाई के बीच में पूरी लम्बाई में एक खाई खोद कर उसमें चिकनी मिट्टी भरवा देना चाहिए। ऐसे बड़े बाँध में ऊपर की पाल में भी गीली मिट्टी करके कॉम्पैक्शन करना बहुत जरूरी है। छोटे कामों में इतना जरूरी नहीं है।
- काम शुरू करने से पहले साइट का सर्वे कर के लेवल व नाप आदि लेकर गाँव वालों की आवश्यकता, क्षमता व तकनीकी दृष्टि से उपयुक्तता के आधार पर जोहड़, बाँध की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई आदि तय करके एक रेखाचित्र (डिजाइन) बना कर गाँव वालों के समक्ष साइट की जमीन पर लाइनिंग कर दें।
- मिट्टी के काम में मोटे तौर पर पाल की ऊँचाई से पाँच गुणा चौड़ाई लेते हैं। स्लोप की चौड़ाई और ऊँचाई का अनुपात 2:1 अन्दर की तरफ व 2:1 का

अनुपात बाहर की तरफ तथा पूर्ण होने से पूर्व पाल के ऊपर की चौड़ाई को पाल की ऊँचाई के बराबर ले लें। फिर कार्यपूर्ण होने के बाद ऊपर की चौड़ाई को काट कर आधा कर दें। कॉम्पैक्शन शुरू से ही करते रहें। अन्त में अपरा का काम भी पूरा कर दें।

पक्के काम में हैड वाल में मोटे तौर पर ऊँचाई की तीन-चौथाई माप में नीचे की चौड़ाई ले लें। जिसमें ऊँचाई का आधा तो स्लोप में ले लें तथा ऊँचाई की एक-चौथाई माप में हैड वाल के टॉप की चौड़ाई रख दें। हैड वाल के दोनों तरफ साइड वाल व की वाल बना कर हैड वाल के बाहर की तरफ नीचे एप्रन बना दें। साइड वाल और की वाल के बीच मिट्टी भर कर अच्छी तरह से कॉम्पैक्ट कर दें। भविष्य में कार्य के टूट-फूट की जिम्मेदारी ग्राम-सभा या समुदाय को दे दें।

किसी भी जल संरचना को बनाने हेतु उपयुक्त स्थल का चयन (साइट सलैक्शन) तथा निष्कपट जन-सहभागिता का होना बहुत जरूरी काम है। तरुण भारत संघ द्वारा बनाई जाने वाली जल संरचनाओं में इन दोनों ही कामों की जिम्मेदारी मुख्यतः ग्राम-सभा या समुदाय पर छोड़ी जाती है। संस्था के कार्यकर्ता केवल यह देखते हैं कि समुदाय द्वारा लिये गये निर्णय में कोई भूल, गलती अथवा चालाकी तो नहीं हो रही है। तरुण भारत संघ के सम्पूर्ण कार्य क्षेत्र में साइट सलैक्शन मुख्यतः भू-जल पुनर्भरण (रीचार्ज) को ध्यान में रख कर ही किया जाता है, लेकिन करौली-धौलपुर का चम्बल क्षेत्र इस सिद्धान्त का अपवाद है। चूँकि इस क्षेत्र में जमीन के अन्दर की चट्टानों में समतल सळ (क्षैतिज दरारें) हैं, जो वर्षा जल को जमीन के अन्दर नहीं जाने देतीं। इसलिए यहाँ के किसान अपने खेतों के ऊपर बाँध (पोखरं) बना कर वर्षा-जल को रोक लेते हैं और उस पानी से प्रायः बिना इंजन के ही जमीन के ढाल के आधार पर अपने खेतों में ले जाकर सिंचाई कर लेते हैं।

इस क्षेत्र में चूँकि तालाब में संग्रहित पानी से किसान सीधी सिंचाई करते हैं; इसलिए लाभार्थी समुदाय जल की जरूरत, जल का नजरिया और जल उपयोग की विधि को समझकर सामुदायिक संवाद के साथ सर्वसम्मति से जल संरचना का स्थान चयन करता है। तरुण भारत संघ का कार्यकर्ता वहाँ की भू-बनावट, मिट्टी के प्रकार, जमीन के ढाल, जलागम क्षेत्र, जल धारण क्षमता स्थानीय औसत वर्षा तथा जल संरचनाओं का निर्माण करने वाले सभी पक्षों की जल उपलब्धता व जरूरत आदि का प्राथमिकता के तौर पर ध्यान रखता है। प्राथमिकता तय करने में भी सामुदायिक सर्वसम्मति और निर्णय की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है। काम को करने वाले समुदाय का सामुदायिक, आर्थिक, पारिश्रमिक तथा स्थानीय सामग्री का योगदान भी सामुदायिक निर्णय से ही तय होता है।

मूल रूप से जल संरक्षण का कार्य 'शुभ' का कार्य है, जिसमें पेड़-पौधे, कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी, जंगली जानवर व मानव सभी का हक समान है। जहाँ सबका हक समान होता है, वहाँ केवल 'शुभ' होता है। लेकिन मानव चूँकि प्रकृति के अन्य जीवों से अधिक हक प्राप्त करता है, जिससे वह शुभ के साथ-साथ लाभ भी प्राप्त करता है। इसलिए जो व्यक्ति या समुदाय शुभ के साथ लाभ भी प्राप्त करता है, उसे उस लाभ के अनुपात में शारीरिक अथवा आर्थिक योगदान भी करना चाहिए। इसीलिए लाभार्थी समुदाय को जल संरचना निर्माण हेतु, सार्वजनिक या सामुदायिक संरचना-निर्माण में आने वाली अनुमानित कुल लागत का कम से कम एक तिहाई अंशदान श्रमदान के रूप में देना जरूरी होता है। व्यक्तिगत संरचना-निर्माण में लाभार्थी को कुल लागत का आधा भाग देना जरूरी होता है। इन्हीं शर्तों पर काम आगे बढ़ता है। यही तरुण भारत संघ के कार्यों को पूर्ण करने का सिद्धांत और सूत्र है। जमीनी दौरा करके पहले जल संरक्षण संरचना का स्थान चयन होता है। फिर जन बैठकों में कार्य संचालन हेतु कच्चे व पक्के कार्यों के संचालन हेतु कार्य की नाप तोल मानचित्र, खर्चे का हिसाब किताब करके मानचित्रण के बाद तरूण भारत संघ का योगदान एवं श्रमदान निर्धारण होता है। यह निर्धारण प्रक्रिया नाप तोल व मानचित्र के आधार पर ही संपादित होती है। मिट्टी कार्यों का मानचित्र चिकनी मिट्टी, बलुई, पथरीली मिट्टी के डिजाईन अलग-अलग होते है। ये सभी कन्टूर लाईन को ध्यान में रखकर निर्धारित होते है, **परिशिष्ट-II ; चित्र संख्या 5.7**(अ),(ब) व (स) देखें।

पक्के कार्यों का भी आयतन व लागत **चित्र संख्या 5.7(ब)** में और **चित्र संख्या 5.7(स)** में कच्चे-पक्के कामों की उपरा (ओवर फ्लो) की लम्बाई निर्धारण और खर्च आदि निकालने की विधि समझें। यह सभी कार्य तरूण भारत संघ द्वारा आरम्भ करने के पूर्व अभ्यास करता है। ये सभी कार्य गाँव के लोगों के साथ बैठकर साझा किया जाता है। यह पक्की सीधी-सरल सिविल इंजनियरिंग है। लेकिन आज भी खरी है। सभी को आसानी से समझ आती है।

5.6 पर्यावरणीय प्रभाव एवं मूल्यांकन रिर्पोट

5.6.1. पृष्ठभूमि:

18 मार्च से 21 मार्च 2024 तक डॉ0 राजेंन्द्र सिंह और तरुण भारत संघ (टी.बी.एस) द्वारा चंबल नदी के बेसिन धौलपुर-करौली क्षेत्र में किए गए जल संरक्षण कार्यों का प्रभाव और मूल्यांकन करने के लिए एक क्षेत्रीय दौरे का आयोजन किया गया था। इस दौरे में मेरे साथ नीदरलैंड के विश्व बैंक के पूर्व अधिकारी श्री बास्टियन मुर्हरम, फ्रांसीसी श्री टॉम गैबलियर, नीलम गुप्ता और आगरा के सामाजिक कार्यकर्ता श्री सी.एम. पाराशर भी शामिल थे।

इस दौरे के दौरान, डॉ0 राजेंद्र सिंह और तरूण भारत संस्था द्वारा किए गए कार्यों का मूल्यांकन करने के लिए ग्रामीणों के साथ संवाद किया गया। इसके अलावा, क्षेत्र में किए गए जल संरक्षण के महत्वपूर्ण पहलूओं और प्रयासों को भी देखा गया। क्षेत्र में सभी संगठनात्मक कार्यों के माध्यम से जल संरक्षण, संवेदनशीलता, और समुदाय की गुणवत्ता में सुधार को लेकर एक सकारात्मक प्रभाव डालने का प्रयास हुआ है। इस दौरे के माध्यम से, चंबल नदी के बेसिन में संचालित कार्यों के प्रभाव का मूल्यांकन किया गया और संभावित लाभों व चुनौतियों को ध्यान में रखा गया। इसके अलावा, स्थानीय समुदाय के साथ सहयोग और सहभागिता के माध्यम से सामाजिक और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने का प्रयास किया गया। डॉ0 राजेंद्र सिंह और टी.बी.एस ने चंबल नदी के बेसिन में सामाजिक और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण कार्यों को कई चरणों में संम्पन्न किया है। इसके अलावा, उन्होंने जल संरक्षण और प्राकृतिक संवेदनशीलता को बढ़ावा देने के लिए सामाजिक जागरूकता और जल विद्या को भी प्रोत्साहित किया।

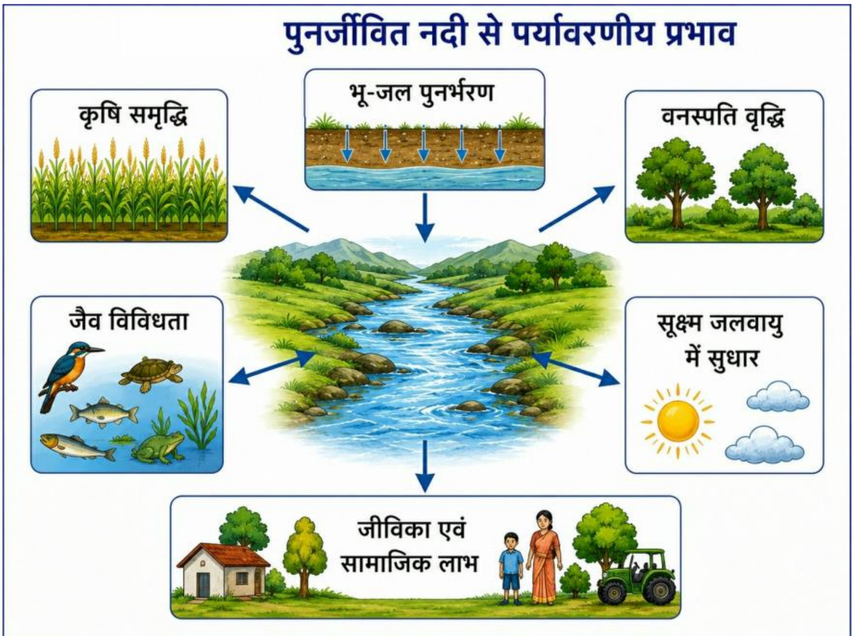

चित्र 5.8: पुनर्जीवित नदी से पर्यावरणीय प्रभाव

5.6.2. कार्यप्रणाली:

मथारा करौली जिले का एक छोटा सा गाँव है, जहाँ मुझे डॉ0 राजेन्द्र सिंह के नेतृत्व में प्रतिनिधिमंडल के आगमन से पहले ग्रामीणों से मिलने का मौका मिला। ग्रामीणों ने तरुण भारत संघ के सहयोग से किए गए जल संरक्षण के कार्यों के लाभों के बारे में अपना दृष्टिकोण प्रदान किया। उन्होंने बताया कि, टी.बी.एस के लोग काफी कठिनाई

के बाद ग्रामीणों के साथ बातचीत करने में सक्षम थे। लोगों ने अपनी आजीविका के लिए हिंसा को अपना लिया था क्योंकि उनके क्षेत्र में कोई सार्थक कृषि गतिविधि करने के लिए पानी नहीं था। ग्रामीणों ने बताया कि, टी.बी.एस की शुरुआती अड़चनों के बाद बातचीत शुरू हुई और एक विश्वास स्थापित हुआ। डॉ0 राजेन्द्र सिंह जी द्वारा विभिन्न योजनाओं के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक और आर्थिक उत्थान को प्रोत्साहित किया गया है।

ग्रामीणों से चर्चा के दौरान निम्नलिखित मुख्य प्रमुख बातें स्पष्ट हुई-

- नदियों का प्रबंधनः बरसात के मौसम में नदियों का पानी संरक्षित करने के लिए कई कार्य किए गए हैं। जिनसे भूजल पुर्नभरण द्वारा जलस्तर ऊपर नदी शुद्ध सदानीरा बनकर बढ़ने लगे।
- वित्तीय योजनाः लागत का एक भाग ग्रामीणों द्वारा वहन किया और सार्वजनिक भूमि के काम पर दो भाग तरुण भारत संघ ने वहन किया। निजी खातेदारी की भूमि के कामों में आधा ग्रामीणों के समूह ने और आधा तरुण भारत संघ ने दिया। इस प्रक्रिया ने सामूहिक सहयोग को प्रोत्साहित किया।
- सामाजिक प्रभावः योजनाओं के परिणामस्वरूप, ग्रामीण समुदाय में आपसी सहयोग और जीवन की गुणवत्ता में सुधार आया है। आपसी प्रेमभाव और विश्वास बढ़ा है।
- आपराधिक गतिविधियों का अंतः ग्रामीण समुदाय के अब आपराधिक गतिविधियों में कमी आई है और वे अब कृषि और अन्य उत्पादक गतिविधियों में लगे हुए हैं।
- इस मॉडल से तरूण भारत संघ के प्रतिनिधि की देखरेख में काम किया जाता है। निर्माण एवं वित्तीय प्रबंधन में पूरी पारदर्शिता रहती है।
- सभी संरचनाएं स्थानीय रूप से उपलब्ध मिट्टी और पत्थरों चूना-रेत आदि स्थानीय सामग्री का उपयोग करके कच्ची संरचनाएं बनी है। इन्हें प्रकृति और रिसावरोधी नहीं बनाया गया है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि, बरसात के दौरान अत्यधिक पानी नीचे की ओर भूमि के पेट से बह जाए और बांध पर कोई दबाव न पड़े, चेक बांधों को कच्चा स्पिलवे प्रदान किया गया था। नदी के किनारे इसी तरह की संरचनाएँ से बनाई गईं है। इससे नदी में अवरोध नहीं है। बल्कि दौड़ते जल को चलना सिखाया है; चलते को भूजल में बैठाया है।
- ग्रामीणों द्वारा पीने, कृषि, डेयरी आदि जैसी विभिन्न गतिविधियों के लिए नदी के ऊपरी हिस्से में पानी जमा किया है। किसानों को साइफन विधि से सिंचाई के लिए प्लास्टिक पाइप भी उपलब्ध कराये है। चूंकि बांधों को पूरी तरह से रिसावरोधी नहीं बनाया गया था, इसलिए बांधों से पानी का रिसाव निचले क्षेत्र में भी होने लगा है। 40 वर्षों पुराने बांधो में भी इस प्रकार के रिसाव से बांध पर कोई संकट नजर नहीं आया है।

- चूंकि परत दरारों और दरारों के साथ चट्टानी है, इसलिए बांध के ऊपरी प्रवाह में संग्रहीत पानी भी नीचे चला गया और भूजल को रिचार्ज किया है। इसी भूजल पुर्नभरण से नदी पुनर्जीवित होकर शुद्ध सदानीरा बनकर बह रही है।
- धीरे-धीरे पिछले कुछ वर्षों में पूरी नदी में प्रत्येक चेक डैम पर पानी आ गया और नदी के किनारे के क्षेत्र का भूजल स्तर काफी बढ़ गया। गैर-मानसूनी अवधि में भी नदी बहने लगी, जिससे ग्रामीणों को काफी राहत मिली।
- इन कार्यों के परिणामस्वरूप क्षेत्र बंजर से खेती योग्य भूमि में पूरी तरह बदल गया। बातचीत के दौरान ग्रामीणों ने बताया कि बेलगाम हो चुकी आपराधिक गतिविधियां पूरी तरह से रुक गईं। ग्रामीण अब कृषि और संबंधित गतिविधियों में लगे हुए हैं।
- यह डॉ0 राजेंद्र सिंह की प्रेरणा ही थी कि, गंभीर आपराधिक गतिविधियों में शामिल सभी लोग आत्मसमर्पण कर, मुख्यधारा में लौट आये और अब सामान्य शांतिपूर्ण जीवन जी रहे हैं. उनकी बातचीत में डॉ0 राजेन्द्र सिंह के प्रति आभार स्पष्ट झलक रहा था।
- सबसे अच्छी बात यह थी कि, यह सब ग्रामीणों ने डॉ0 राजेंद्र सिंह और प्रतिनिधिमंडल के आने से पहले ही बता दिया था और उस व्यक्ति की पीठ पीछे इस तरह की टिप्पणियाँ एक व्यक्ति द्वारा उनके जीवन में लाए गए गुणात्मक परिवर्तन को बयां करती थीं। यह स्थानीय समुदाय के उत्थान की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।
- मैं नहीं जानता था कि, ये भी विश्व जल शांति दूत है। इन्होने जब अपना इतिहास बायां किया तथा 21 मार्च 2024 को विश्व जल शांति दूत पुरस्कार से सम्मानित किया गया; तब मैं आश्वस्त हुआ कि, यह वही लोग है जो मुझसे बातचीत कर रहे थे। इन्होने अपना जीवन स्वयं बदला है। इनके जीवन का बडा बदलाव ही मेरे अंदर यह रिर्पोट लिखने का विश्वास पैदा किया है।

5.6.3. क्षेत्र का दौरा - कार्यों की समझ, जलसंरचना स्थान चयन कार्य संचालन, बजट-खर्च निर्धारण:

ऊपर वर्णित क्षेत्र का दौरा करने के बाद, यह स्पष्ट होता है कि, परियोजना में विविधता और स्थानीय तकनीक का उपयोग करके समुदाय के सनातन विकास को संभव बनाने के लिए समर्थ हुआ है। जिसमें निम्नलिखित प्रमुख बिंदुओं को ध्यान में रखा गया है-

- **जल संरक्षणः** छोटे चेक बांधों का निर्माण करके, जलग्रहण क्षेत्र के वर्षा जल को नदी की सीमा के भीतर रोकने के लिए तकनीक का उपयोग किया गया है। इससे न केवल जल संरचनाओं के भीतर बल्कि भूजल का भी पुनर्भरण हुआ है और नदी को पुनर्जीवन मिल गया।

- **भूजल की नीचे की ओर गति का नियंत्रणः** झरझरा निर्माण के माध्यम से और भूजल के प्रवाह के माध्यम से भूजल की नीचे की ओर गति को सुनिश्चित करने के लिए जिस विधि का उपयोग किया गया है, वह स्थानीय ज्ञान और विद्याधारित है।
- **स्थानीय तकनीक का उपयोगः** स्थानीय इंजीनियरिंग तकनीक और स्थानीय सामग्री का उपयोग करके निर्माण कार्यों को किया गया है। इससे संचालन की लागत में भी बहुत कमी आई है और स्थानीय सामाजिक और आर्थिक विकास को बढ़ावा मिला है। स्थानीय समुदायों का विश्वास बढ़ गया है। वे इन संरचनाओं के मालिक बनकर देखरेख, मरम्मत सभी कुछ स्वयं समय-समय पर करते रहते है।
- **सामग्री का पुनर्चक्रणः** सामग्री के परिवहन, रख-रखाव और पुर्नद्धार की लागत में बचत हुई है, जो पर्यावरणीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है।
- **सामुदायिक सहभागिताः** स्थानीय ग्रामीणों को परियोजना में सम्मिलित किया गया है, जिससे उन्हें अपनी स्थिति को समझने और परियोजना में अपनी भूमिका निभाने का अवसर मिला है।
- **स्थानीय मिट्टी और पत्थरों का उपयोग**: इसका उपयोग करके, फिर से एक छोटा स्पिलवे बनाकर बरसात के मौसम में अतिरिक्त पानी के रिसाव को रोकने का प्रावधान रखा गया है, और कुछ मामलों में जहां भी आवश्यक हो वहां कंक्रीट संरचनाएं भी बनाई गई हैं।

डॉ0 राजेन्द्र सिंह के नेतृत्व में तरुण भारत संघ ने ग्रामीण समुदाय के लिए समृद्धि, पर्यावरण संरक्षण, और स्थानीय उत्पादन के लिए एक सकारात्मक प्रतिसाद प्रदान किया

5.6.4. पीपल्स पीस एण्ड वॉटर सम्मिटः

जल एवं शांति लोक सम्मेलन की शुरुआत 20 मार्च, 2024 को बहुत ही अनौपचारिक तरीके से सभी प्रतिनिधियों के संक्षिप्त परिचय के साथ हुई थी। सम्मेलन में 14 राज्यों और तीन देशों के 200 से अधिक प्रतिभागियों ने भाग लिया जिनकी जल प्रबंधन में कुछ रुचि थी। चयनित वक्ताओं में अन्य क्षेत्रों के लोग भी शामिल थे जो विभिन्न नदी प्रणालियों पर काम कर रहे हैं। जैसा कि मैं शिखर सम्मेलन के दौरान एकत्र हुआ था, यह केवल टी.बी.एस के कार्यों को प्रदशित करने के लिए नहीं था (हालांकि इसमें कोई संदेह नहीं है) बल्कि विभिन्न अवधारणाओं के साथ पानी और प्राकृतिक संसाधनों पर काम करने वाले अन्य संगठनों के कार्यों को भी प्रस्तुत करना था। इस प्रकार, प्रतिभागियों को ढरे सारे ज्ञान और अनुभव से समृद्ध किया गया। प्रतिभागियों में कुलपति, शिक्षाविद्, इंजीनियर, सामाजिक वैज्ञानिक, नागरिक समाज संगठन, मीडिया, छात्र, गांधीवादी, शोधकर्ता आदि शामिल थे। इसके अलावा विदेश से भी कई मित्र शिखर सम्मेलन में शामिल हुए।

सभी सत्र विभिन्न संगठनों द्वारा जल प्रबंधन पर विभिन्न अवधारणाओं और कामकाजी मॉडलों के ज्ञान और अनुभवों को साझा करने के लिए डिज़ाइन किए गए थे और इसमें बड़ी संख्या में लोग शामिल हुए थे। शिखर सम्मेलन की एक अनूठी विशेषता यह थी कि, पूर्व-निर्धारित प्रस्तुतियों के अलावा, यह सुनिश्चित किया गया कि प्रत्येक प्रतिभागी को अपने अनुभव साझा करने का अवसर दिया जाए, जो वास्तव में सम्मेलन की एक समृद्ध और दिलचस्प विशेषता थी। शिखर सम्मेलन के दौरान टी.बी.एस ने जिला करौली और जिला धौलपुर के लगभग 30 ग्रामीणों को सम्मानित किया, जिन्होंने जल संरक्षण में अनुकरणीय कार्य किया था और टी.बी.एस के कुछ कार्यकर्ता जो इस कठिन क्षेत्र में लगातार काम कर रहे हैं। बहुत ही महत्वपूर्ण है और यह जल संसाधन प्रबंधन के क्षेत्र में एक गहरी समझ को दर्शाता है। जल संसाधनों के प्रबंधन में सफलता का एक महत्वपूर्ण पहलू है जिसमें स्थानीय लोगों की भागीदारी और स्वामित्व की महत्वपूर्ण भूमिका है।
क्षेत्र भ्रमण और सम्मेलन के दौरान देखे गए कार्यों पर इंजीनियरिंग के दृष्टिकोण से भी मेरे विचार मांगे जो निम्नलिखित है-

- सरकार और संगठन के बीच जल संसाधन प्रबंधन के प्रति दृष्टिकोण में अंतर है। चंबल क्षेत्र का काम देखकर समझा कि, यहां के काम से नदियां शुद्ध-सदानीरा कैसे बनी। इस कार्य से बांध का जल भूमि का पेट भरता है; पेट भरकर जल नदी में बहते रहते है। यह अद्वितीय है और यह समझ में आता है कि कैसे इस विषय में कार्य किया जा रहा है।
- स्थानीय ज्ञान और सामग्री का प्रयोग करना अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह स्थानीय समुदायों की जीवनशैली, ज़रूरतें और विचारों को समझता है और उन्हें उनके खुद के अनुभवों से अवधारित करता है। इसीलिए यहां का काम समयसिद्ध सफल है।
- लोगों को परियोजना में वित्तीय योगदान देने के लिए प्रेरित किया जाए ताकि, उन्हें अपनी परियोजना का स्वामित्व महसूस हो, यह एक बहुत ही सार्थक उपाय है जो सामुदायिक विकास को प्रोत्साहित करता है। इसी विधि से लोग अहिंसक बनकर मालिक बन गए है।
- जल संसाधन प्रबंधन के क्षेत्र में समृद्धि के लिए एक विशेष दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। यह स्थानीय समुदायों के अनुभव और सम्पत्ति का महत्व बताता है और उन्हें उनके अधिकार और स्वामित्व का आदर्श देता है।

5.6.5. निष्कर्षः चंबल नदी क्षेत्रों में जल प्रबंधन के कार्यों का अध्ययन करते हुए और जल एवं शांति सम्मेलन में भाग लेकर मैंने यह समझा कि, लोगों की भागीदारी से सफल और टिकाऊ जल संसाधन परियोजनाएं संभव हैं। मेरे अनुभव से पाया गया कि जल संसाधन के प्रबंधन में सामुदायिक भागीदारी एक महत्वपूर्ण तत्व है जो सुनिश्चित करता है कि परियोजनाएं स्थायी और सफल हों। मेरे द्वारा देखे गए अनेक

उदाहरण दिखाते हैं कि जल संसाधन के उपयोग से न केवल कृषि, डेयरी, और मछली पकड़ने में लाभ होता है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन भी लाया जा सकता है।

मेरा व्यक्तिगत प्रयास से मैं जल संसाधन के क्षेत्र में ज्यादा प्रगति नहीं कर सका, हालाँकि मुझे इस कार्य के प्रारम्भिक परिणामों के माध्यम से इसकी संभावित उपयोगिता का अनुमान हो रहा है। जल संसाधन परियोजनाओं से लाभ देखा जा सकता है, जैसे कि सैरनी नदी पर स्थित भूडखेड़ा तालाब के एक कार्य ने मछली पकड़ने के साथ ही साथ कृषि उपज के लिए भी पानी प्रदान किया।

सम्मेलन के बाद प्रतिनिधियों द्वारा एक प्रस्ताव अपनाया गया है, जिसमें चार मुख्य अपीलें हैं। यह प्रस्ताव जल संरक्षण के महत्व को बढ़ावा देता है और राजनीतिक, सामाजिक, और सरकारी नेताओं को सशक्त करने के लिए आह्वान करता है। इसके अलावा, यह बताता है कि जल संरक्षण के माध्यम से न केवल वातावरण को बचाया जा सकता है, बल्कि समाज को भी सुरक्षित, खुशहाल और समृद्ध बनाया जा सकता है। इससे सामाजिक और आर्थिक उत्थान होगा और साथ ही भारत एक आदर्श देश बन सकता है। जो जल संरक्षण के माध्यम से शांति और समृद्धि की प्राप्ति का मार्ग प्रदर्शित करता है।

मैं, हरियाणा के कमांड एरिया डेवलपमेंट अथॉरिटी में मुख्य अभियंता के पद पर कार्यरत था। और मैंने डॉ0 राजेंद्र सिंह के अनुकरणीय, अद्वितीय और निस्वार्थ सामाजिक कार्यों के बारे में बहुत कुछ सुना और पढ़ा था। 2016 में जब हरियाणा के मुख्यमंत्री ने उन्हें अपने काम की प्रस्तुति देने और हरियाणा के लिए कुछ समाधान सुझाने के लिए आमंत्रित किया तो मुझे उन्हें अपना पायलट प्रोजेक्ट “समुदाय आधारित सूक्ष्म सिंचाई” दिखाने का सौभाग्य मिला। क्षेत्र के दौरे और किसानों के साथ व्यापक बातचीत के बाद, उन्होंने मेरे साथ किए जा रहे कार्यों और भविष्य की कार्रवाई के संबंध में लंबी चर्चा की। उन्होंने पायलट प्रोजेक्ट की सराहना की क्योंकि, इससे न केवल किसानों को पानी बचाने में काफी मदद मिली, बल्कि उन्हें फायदा भी हुआ।

चंबल क्षेत्र में कार्यों को देखने के बाद अब मेरा मानना है कि, सामुदायिक विकेन्द्रित आधारित कम लागत वाले कार्यों की सरल अवधारणा भी चमत्कार कर सकती है। चंबल के बीहड़ों में जल संरक्षण के कार्यों को देखने और प्रभावित ग्रामीणों से मिलने के बाद मैं यह निष्कर्ष निकाल सकता हूं कि जल पुरुष डॉ0 राजेन्द्र सिंह की मानव जाति और प्रकृति मां के प्रति यही सच्ची सेवा है।

मैं, डॉ0 राजेंन्द्र सिंह और तरुण भारत संघ को शुभकामनाऐं देता हूं। मैं इस नेक कार्य में किसी भी सहायता के लिए हमेशा तत्परता के साथ उपलब्ध रहूंगा।

5.7 तरूण भारत संघ का जल संरक्षण माडल

यद्यपि भारत सरकार के राष्ट्रीय बाढ़ आयोग ने भी बड़े बांधों से बाढ़ की संभावनाओं को स्वीकार कर लिया है, फिर भी भारत में बड़े बांधों द्वारा बाढ़-सुखाड़ बढ़ाने का काम पूर्ववत् जारी है। सुखाड़-बाढ़ से प्रतिवर्ष हानि बढ़ती ही जा रही है। सन् 1994 में बाढ़ से केवल 449.53 करोड़ की हानि बताई थी। यही हानि बढ़कर सन् 1978 में 3128.47 करोड़ हो गई थी। बाढ़ नियंत्रण के नाम पर काम चलता रहा, लेकिन बाढ़-सुखाड़ जारी है। तत्कालीन सिंचाई मंत्री श्री जगजीवन राम जी ने कहा था कि, ''बाढ़ की विकरालता नहीं बढ़ी है, किंतु हानि बढ गई है। हमें इससे मुक्ति हेतू स्थायी उपाय करने चाहिएं।'' यह बात उन्होंने राष्ट्रीय बाढ़ आयोग के उद्घाटन भाषण में कही थी। तब तो यह बाढ़ भारत की केवल 2 प्रतिशत भूमि पर ही आती थी, अब तो इसकी मार 30 प्रतिशत से भी अधिक भूमि पर आ रही है।

आजादी के समय केवल बिहार, बंगाल, उडिसा व असम में ही बाढ़ आती थी, अर्थात् केवल इन चार राज्यों में ही बाढ़ का संकट था। अब तो बड़े बांधों ने इसकी मार 12 राज्यों में बढ़ा दी है। इससे होने वाली हानि तो बेहिसाब बढ़ गई है। जान-माल दोनों की बहुत हानि होती है।

सुखाड़ आजादी के समय केवल राजस्थान, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश और महाराष्ट्र राज्यों में ही आता था। अब सुखाड़ वाले राज्यों की संख्या बढ़कर 17 हो गई है। भारत की भूमि पर सुखाड़ 4 प्रतिशत से बढ़कर 62 प्रतिशत हो गया है। यह संकट दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। सुखाड़-बाढ़ नियंत्रण का समाधान नई तकनीक और इंजिनियरिंग में ढूंढना, हमारी गलती है। इसका समाधान प्रकृति के प्रति प्रेम, व्यवहार और प्राकृतिक अनुकूलन सेेंं ही संभव है।

हमने चार दशकों में प्रत्यक्ष अनुभव किया है कि, छोटे-छोटे बांध बनाकर, सामुदायिक विकेन्द्रित जल प्रबंधन करके हम सुखाड़-बाढ़ समस्या का समाधान ढूंढ सकते हैं। हमने अपने सामुदायिक काम से धरती को बचाया है। हमारे कार्य क्षेत्र अब सुखाड़-बाढ़ मुक्त बन गए हैं। हमने सुखाड़-बाढ़ मुक्ति हेतु अलग से प्रयास नहीं किए, बस! विकेन्द्रित जल प्रबंधन से जो काम हुआ, उसी से बाढ़-सुखाड मुक्ति मिल गई। इससे हानि नहीं हुई, बल्कि लोगों को बहुत बड़ाश्शुभ और लाभ मिला है। इस कार्य के लिए जितना खर्च हुआ, उससे अधिक लाभ तो पहले साल में ही मिल गया है। मेरे जीवन में ऐसे एकाध नहीं, हजारों उदाहरण मौजूद हैं।

नहरो नदी जलागम क्षेत्र के आलमपुर गांव में 7 लाख रुपये खर्च करके चार जल संरचाऐं बन गयी हैं, इनसे 1 करोड़ रुपये का लाभ हर साल होता है। ऊमरी में 17 लाख रुपये खर्च हुए, जिनसे तीन जल संरचाऐं बनायी गईं, इनसे हर साल चारा, गेंहू, सरसों, ज्वार, बाजरा, दूध, घी, पीने का पानी आदि से 2.5 करोड रुपये का लाभ हो जाता है। इस गांव में 8 लाख रुपये का लाभ तो केवल मछली और सिंघाडे से ही हो जाता है। 17 लाख रूपए खर्च करके 2.5 करोड रुपये का शुद्ध लाभ लेना कम नहीं होता। यह हिसाब मोटे तौर पर लगाया है, जो वास्तविक लाभ से बहुत कम है; जब बारीकी से हिसाब लगायेंगे तो 17 लाख रुपये खर्च करके 5 करोड़ रुपये की कमाई आती हुई दिखेगी। इस कार्य में तेल-डीजल का खर्च नहीं के बराबर हो रहा है।

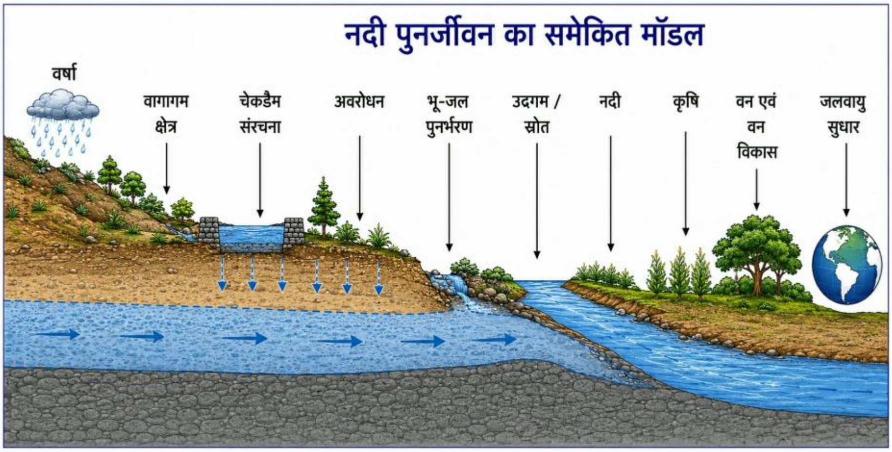

चित्र 5.9: नदी पुनर्जीवन का समेकित माडल

हमने सैंकडों जल संरचनाओं का हिसाब निकाला, जिसमें जल संरक्षण की दर 2.56 रुपये प्रति लीटर से लेकर 4 रुपये प्रति लीटर तक आ रही है। चंबल नदी की सहायक नदियों पर यह खर्च सामान्यतः 4 रुपये प्रति लीटर तक ही पहुंचता है। यू ंतो बहुत-सी जल संरचनाओं में यह खर्च 2.56 रुपये प्रति लीटर ही आया है। नहरो नदी में यह खर्च 2.56 रुपये प्रति लीटर से अधिक किसी भी जल संरचना में नहीं हुआ है। जल आने से जीवन, जीविका और जमीर (आनंद) की कीमत निकालना तो इसमें चार चांद लगा देगा।

इससे शहरों पर दबाव कम हुआ है। गांव की खेती में रोजगार बढ़ने से पलायन कम हुआ है। यह हिसाब तो पारिस्थितिकी सेवा को जोडने से युवाओं को समझ में आयेगा। 21वीं सदी का सबसे बड़ा संकट जलवायु परिवर्तन है। लोक भाषा में धरती का चढ़ता बुखार और मौसम का बिगड़ता मिजाज ही हमारे वर्षा-चक्र को बदलकर उत्पादन को घटा रहा है और मौसमीय बीमारियों को पैदा कर रहा है। इस संकट

का समाधान हरियाली बढ़ाना है। हरियाली से धरती का बुखार कम होगा और मौसम का मिजाज भी सुधर जायेगा। यह सब जल के बिना संभव नहीं है। जल ही जलवायु को स्वस्थ बनाता है। अतः जलवायु ही जल से है।

जलवायु परिवर्तन का संकट का सुगम समाधान जलवायु अनुकूलन है। तरुण भारत संघ ने जल संरक्षण के द्वारा जलवायु परिवर्तन अनुकूलन कर मानवीय व्यवहार को बदला है। यहां प्राकृतिक खेती शुरू हुई है और रासायनिक (जहरीली) खाद व दवाइयां बंद हुई हैं। यहां प्रत्येक घर में गोबर का बना हुआ खाद रखते हैं। गांव में अपना पानी, अपना खाद और अपनी माटी है। अर्थात् ''गांव का पानी गांव की माटी, गांव के हाथ में गांव की चोटी'' यही ग्राम स्वराज है। गांव के लोग अब स्वावलंबी बनकर आनंद से रहते हैं। सब कुछ बाजार से लेने नहीं जाना पड़ता, अब गांव में ही सब कुछ मौजूद है। अब गांव वालों को खरीद करने के लिए शहर में कम जाना पड़ता है, बल्कि वे अब शहर वालों को देशी दूध, घी, मेवा, सरसों, गेहूं, चना, बाजरा आदि देते ही हैं।

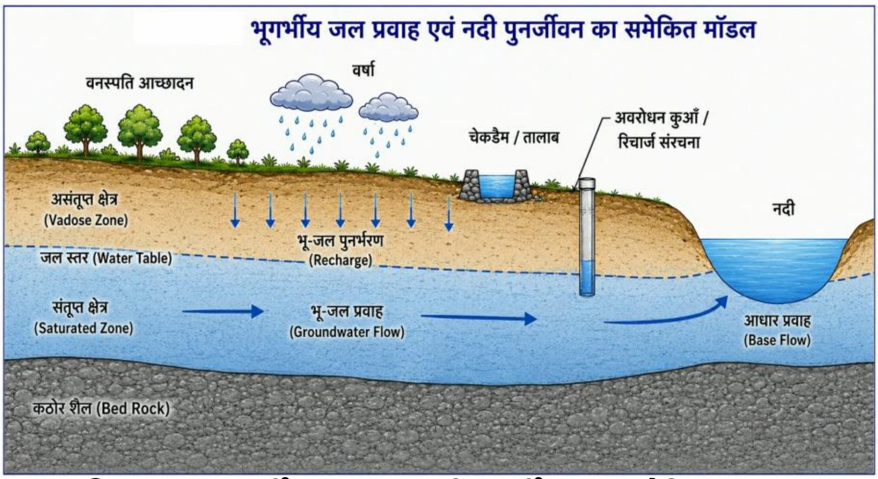

चित्र 5.10: भूगर्भीय प्रवाह एवं नदी पुनर्जीवन का समेकित माडल

जहां जल वहीं जीवन। जल संरक्षण के काम से समाज की जरूरत का अहसास और आभास होता रहता है। नहरो नदी घाटी क्षेत्र में अब एकाध गांव को छोड़कर, सभी गांवों में उनकी श्रमनिष्ठा से स्वाबलंबन, आत्मनिर्भरता और ग्राम स्वराज की डगर मिल गई है। यहां के लोगों ने पत्थरों से टकरा कर, पानी बनाकर, धरती और नदी को दिया है। जहां नदी पुनर्जीवित होती है, वहां की सभ्यता और संस्कृति भी पुनर्जीवित होने लगती है। चंबल की सभ्यता अब पुनर्जीवित हो चुकी है। यहां के लोग अपनी समझदारी और श्रमनिष्ठा से पानीदार बन गये हैं। पानीदार बने, तो इज्जतदार भी बन गए हैं। जब यहां के लोगों के मन में सभी के शुभ का विचार जन्मा, तो उनका लोभ-

लालच भी कम हुआ। पहले तो उनका लूट-पाट और लालच करने वाला नजरिया था; अब सभी के भले में अपना भला देखने का उनका एक नया नजरिया बन गया है। इससे साझा वर्तमान और साझा भविष्य सुधरने लग गया है।

अब यहां सामाजिक और सांस्कृतिक उत्थान स्पष्ट देख सकते हैं। प्राकृतिक प्रेम और अध्यात्म का प्रत्यक्ष दर्शन भी यहां देखने को मिलता है। ये पंचमहाभूतों को ही भगवान् मानते हैं, उसी से अपना और दुनिया का निर्माण समझते हैं। इसलिए इन्हें अपना स्वास्थ्य जल के स्वास्थ्य में दिखायी देता है। यह इनकी जग-जल प्रेरणा है। जग को शांतिमय बनाने के लिए जल से ही शुरूआत करनी होगी, क्योकि जल ही जीवन, जीविका और जमीर है। मानव को यह सत्य समझ आता है, तो मानव जोर लगाकर पत्थर को भी पानी बना देता है। चंबल नदी का सभी 23 उपसहायक नदियों में यह काम चालू है। इस 21वीं सदी में जल संरक्षण के मुकाबले कोई दूसरा काम आर्थिक शुभ-लाभ का नहीं हो सकता। जलसंरक्षण और इसका अनुशासित होकर उपयोग करना ही सबसे शुभ और हितकारी है। जो खर्च किया है, उसका 10 गुना तक कमाई कर सकते हैं, लेकिन जल का व्यापार नहीं कर सकते।

जल कोई व्यापार की वस्तु नहीं है; यह प्रकृति और मानव दोनों के लिए ही प्रकृति की बनाई अनमोल धरोहर है। फिर भी बाजार मूल्य में देखें तो एक ही वर्ष में इसे 10 गुना तक बढ़ा सकते हैं। लाचारी, बेकारी, बीमारी और गरीबी को जल से ही मिटा सकते हैं। प्रकृति ने सभी के लिए ही जल बनाया है; जल किसी एक व्यक्ति या कंपनी के लिए नहीं बनाया। पेड़-पौधे, नदी, समुद्र, मरुस्थल, पहाड़ सभी को जल चाहिए, लेकिन किसी एक को इसका मालिक बनाना जघन्य अपराध है। जल बाजार या व्यापार के लिए नहीं; सभी के व्यवहार के लिए है। जल का निजीकरण नहीं; सामुदायीकरण होना चाहिए।

दुनियॉ मे ंजहां भी जल का सामुदायीकरण हैं, वहां कोई प्यासा नहीं मरता। जल सब के लिए पर्याप्त है, परंतु जल पर अतिक्रमण, प्रदूषण और शोषण जीवन को संकटमय बना रहा है। अब इस जल संकट से वैश्विक विस्थापन और विश्व जल युद्ध बढ़ाकर जीवन जीना दूबर बन रहा है। जहां-जहां सामुदायों ने चंबल क्षेत्र की तरह नहरो नदी के पुनर्जीवन जैसा काम किया है, वहां जीवन शांतिमय और आनंदमय बन गया है। अतः पूरी दुनिया के लोग आओ! दुनिया को जल से शांतिमय, समृद्ध, सुखमय आनंदायी बनाएं!! यही बेहतर दुनिया बनाने का एक मात्र रास्ता है; इस रास्ते पर हम सभी मिलकर चलें।

राजीव वंसल, पूर्व मुख्य अभियंता,
हरियाणा सरकार

5.8 जल संरक्षण के पर्यावरणीय प्रभाव

5.8.1 भूमिका

जल संरक्षण केवल जल संसाधनों के प्रबंधन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सम्पूर्ण पर्यावरणीय तंत्र (Ecosystem) के संरक्षण एवं पुनर्स्थापन का आधार है। जल, भूमि, वनस्पति, वन्यजीव, जलवायु तथा मानव जीवन एक-दूसरे से गहरे रूप से जुड़े हुए हैं। जब वर्षा जल का समुचित संचयन, भू-जल पुनर्भरण तथा नदी पुनर्जीवन किया जाता है, तब उसका सकारात्मक प्रभाव सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र पर दिखाई देता है।

भारत जैसे मानसूनी देश में वर्षा का अधिकांश भाग अल्प अवधि में प्राप्त होता है। यदि इस जल का वैज्ञानिक एवं सामुदायिक प्रबंधन किया जाए, तो न केवल जल संकट का समाधान संभव है, बल्कि भूमि की उर्वरता, जैव विविधता, कृषि उत्पादन तथा स्थानीय जलवायु में भी उल्लेखनीय सुधार होता है। बमाया एवं कोटवाली नदी के पुनर्जीवन ने यह सिद्ध किया है कि जल संरक्षण, पर्यावरणीय पुनर्जागरण का सबसे प्रभावी माध्यम है।

5.8.2 भू-जल स्तर में वृद्धि

जल संरक्षण संरचनाएँ—जैसे जोहड़, चेकडैम, एनीकट, परकोलेशन टैंक तथा तालाब—वर्षा जल को भूमि में समाहित कर भू-जल भण्डार (Aquifer) का पुनर्भरण करती हैं। इसके परिणामस्वरूप—

- भू-जल स्तर में निरंतर वृद्धि होती है।
- कुएँ, हैंडपम्प एवं नलकूप पुनः जलयुक्त होने लगते हैं।
- ग्रीष्म ऋतु में भी जल उपलब्ध रहता है।
- नदी का आधार प्रवाह (Base Flow) बना रहता है।

5.8.3 नदी एवं जल स्रोतों का पुनर्जीवन

जब भू-जल स्तर बढ़ता है, तब अनेक मौसमी नदियाँ पुनः प्रवाहित होने लगती हैं। नदी का प्राकृतिक प्रवाह पुनर्स्थापित होने से—

- जल स्रोतों की स्थायित्व क्षमता बढ़ती है।
- जल गुणवत्ता में सुधार होता है।
- नदी पारिस्थितिकी (River Ecosystem) पुनर्जीवित होती है।
- जलीय जीवों एवं वनस्पतियों का संरक्षण होता है।

बमाया एवं कोटवाली नदी का पुनर्जीवन इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

5.8.4 जैव विविधता का संरक्षण

जल की उपलब्धता बढ़ने पर प्राकृतिक वनस्पतियों का विकास होता है, जिससे पक्षियों, मछलियों, उभयचरों, कीटों तथा अन्य वन्यजीवों के लिए उपयुक्त आवास उपलब्ध होते हैं।
इसके प्रमुख प्रभाव हैं—

- स्थानीय प्रजातियों की संख्या में वृद्धि।
- आर्द्रभूमियों (Wetlands) का विकास।
- परागण करने वाले जीवों का संरक्षण।
- पारिस्थितिक संतुलन की पुनर्स्थापना।

5.8.5 मृदा संरक्षण एवं भूमि की उर्वरता

तेज़ सतही अपवाह के कारण होने वाला मृदा अपरदन (Soil Erosion) कृषि भूमि की उर्वरता को कम कर देता है। जल संरक्षण संरचनाएँ वर्षा जल की गति को नियंत्रित कर उपजाऊ मिट्टी को बहने से रोकती हैं।
फलस्वरूप—

- भूमि की उर्वरता बढ़ती है।
- कार्बनिक पदार्थों का संरक्षण होता है।
- कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है।
- मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया धीमी पड़ती है।

5.8.6 स्थानीय जलवायु पर प्रभाव

जल संरक्षण एवं वृक्षारोपण से स्थानीय सूक्ष्म जलवायु (Micro-climate) में सकारात्मक परिवर्तन होते हैं—

- तापमान में संतुलन।
- वायु की आर्द्रता में वृद्धि।
- हरित आवरण का विस्तार।
- धूल एवं प्रदूषण में कमी।
- कार्बन अवशोषण (Carbon Sequestration) में वृद्धि।

इस प्रकार जल संरक्षण जलवायु परिवर्तन (Climate Change) के दुष्प्रभावों को कम करने में भी सहायक सिद्ध होता है।

5.8.7 कृषि एवं ग्रामीण पर्यावरण पर प्रभाव

जल संरक्षण के परिणामस्वरूप—

- सिंचाई सुविधाओं में सुधार होता है।
- फसल विविधीकरण संभव होता है।
- पशुपालन एवं बागवानी को बढ़ावा मिलता है।
- ग्रामीण रोजगार के अवसर बढ़ते हैं।
- पलायन में कमी आती है।

इस प्रकार जल संरक्षण पर्यावरणीय एवं सामाजिक-आर्थिक विकास दोनों का आधार बनता है।

5.8.8 सतत विकास में योगदान

संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) के अनुरूप जल संरक्षण निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है—

- स्वच्छ जल एवं स्वच्छता (SDG-6)
- जलवायु कार्रवाई (SDG-13)
- स्थलीय पारिस्थितिकी का संरक्षण (SDG-15)
- खाद्य सुरक्षा एवं गरीबी उन्मूलन

इस प्रकार जल संरक्षण पर्यावरणीय, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिरता का आधार है।

5.8.9 निष्कर्ष

जल संरक्षण का प्रभाव केवल जल उपलब्धता तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह सम्पूर्ण प्राकृतिक एवं सामाजिक तंत्र को पुनर्जीवित करता है। भू-जल पुनर्भरण, नदी पुनर्जीवन, मृदा संरक्षण, जैव विविधता संवर्धन, कृषि उत्पादकता में वृद्धि तथा जलवायु संतुलन—ये सभी जल संरक्षण के प्रत्यक्ष पर्यावरणीय लाभ हैं।

बमाया एवं कोटवाली नदी के पुनर्जीवन का अनुभव स्पष्ट करता है कि यदि वैज्ञानिक तकनीकों को भारतीय पारम्परिक जल प्रबंधन एवं जनसहभागिता के साथ जोड़ा जाए, तो जल संरक्षण पर्यावरणीय पुनर्जागरण का सशक्त माध्यम बन सकता है। अतः भविष्य की जल नीति में जल संरक्षण को केवल संसाधन प्रबंधन नहीं, बल्कि **प्राकृतिक पारिस्थितिकी के संरक्षण, नदी पुनर्जीवन तथा सतत विकास की आधारशिला** के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

6.
चम्बल नदी-पुनर्जीवन का राष्ट्रीय माडल

6.1 चंबल नदी: पृथ्वी का एक शृंगार

चंबल नदी चंबल के बीहड़ों का एक "आभूषण" है। यहां नदी में घडियालों का तथा नदी के किनारों के जंगलों में सुन्दर बाघों का घर है। ये ही चंबल के आभूषण हैं। नदी जिस क्षेत्र की भूमि से होकर बहती है, उसके आसपास के क्षेत्र को सुंदर बनाने में मदद करती है। वह अपने तटों से लगी भूमि तक पानी के सुविधाजनक परिवहन की सुविधा भी प्रदान करती है। नदी को संस्कृत में वृषप्रदा या जल देने वाली नदी के नाम से भी जाना जाता है। नदी का पानी पौधों के जीवन की एक विस्तृत शृंखला का समर्थन करता है, वह सबसे छोटी लता से लेकर सबसे बड़े पेड़ तक, और समान रूप से जलीय जीवन के रूपों- भूमि जानवरों और यहां तक कि, पक्षियों की एक बड़ी शृंखला का समर्थन भी करता है। नदियाँ अपने परिवेष को सजीव बनाती हैं, विभिन्न प्रजातियों की गुहिकायन गतिविधियाँ भूमि को तृप्ति और जीवंतता प्रदान करती हैं। ऐसी नदी का दर्शन ही काव्यात्मक प्रेरणा जगाने के लिए काफी है। वैदिक ऋषियों के साथ-साथ अन्य प्रतिभाशाली कवियों द्वारा नदियों की प्रशंसा में रचित रचनाएँ इस उल्लास का उदाहरण हैं।

स्कंदपुराण कहता है कि, एक महान् देश भी नदी के बिना नीरस प्रतीत होता है, आगे बताते हुए कि, ऐसे नदी रहित देश में रहने से तो जन्म नहीं लेना ही बेहतर है। यह बात गंगा जी के बारे में कही गई है। पुराणों में लिखा है कि, मैं गंगा की मछली, पेड़-पौधा तथा इसके किनारे के गांव या शहर का इंसान बन सका तो यही मेरे लिए स्वर्ग होगा।

यह कहना उचित ही होगा कि, नदियों के महत्व को इससे बेहतर शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। नदियों का इतना असाधारण महत्व यह स्थापित करता है कि भारत वास्तव में कितना विशेषाधिकार प्राप्त है। विशाल नदियों से लेकर छोटे-छोटे झरनों तक के आकार में भिन्न-भिन्न हजारों जलधाराएँ भूमि की सुंदरता को बढ़ाती हैं, जो भारत के शास्त्रीय वर्णन "सुजलाम्-सुफलाम्-मलयज-शीतलाम् सस्यश्यामलम्" को अपने प्रचुर पानी से सुंदर बगीचों और खेतों वाली भूमि के रूप में बदल कर सच करती हैं। हरी-भरी भूमि और वह भूमि जो काटी जाने वाली

फसलों से अँधेरी है, एक पुरानी संस्कृत कहावत- 'भारत में जन्म लेना धन्य है'- इस भूमि में जन्म लेने के सौभाग्य को दर्शाती है।

नदियों ने सहस्राब्दियों से भारत का पोषण किया है; वास्तव में, उनके आसपास स्वदेशी सभ्यता विकसित हुई है। वैदिक ऋषियों ने नदियों को न केवल माँ, बल्कि उन्हें देवता तक कहा है। यही कारण है कि ये प्राकृतिक जल निकाय हर भारतीय के भावनात्मक शृंगार में अत्यधिक सम्मान रखते हैं। लोकगीतों और साहित्य में भी जल व नदियों के प्रति समृद्ध श्रद्धांजलि देखी जाती है।

6.1.1 'नदी' शब्द की परिभाषा/व्युत्पत्ति

नदी का वर्णन करने के लिए संस्कृत में कई शब्द हैं- नदी, उदक, आप, वारि आदि। अथर्ववेद में एक नदी का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में किया गया हैः "ओह, जल! आप बादलों से मुक्त हो जाते हैं, नीचे आकर पृथ्वी पर बहते समय एक नाद (ध्वनि) उत्सर्जित करते हैं, इसीलिए आपके प्रवाह को नदी कहा जाता है। आपका दूसरा नाम, उदक, भी इसी अर्थ से मेल खाता है।

जब वरुण ने आपको प्रेरित किया तो आप एक साथ (एक प्रवाह की तरह) आगे बढ़ने लगे। फिर आपकी मुलाकात इन्द्र से हुई, जिसके बाद आपका नाम 'आप' पड़ा। इंद्र द्वारा आपकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करने के बाद, आपको वारि (संस्कृत में वर वर) के नाम से भी जाना जाने लगा।''

छांदोग्य उपनिषद कहता है कि कोई भी प्रवाह, जो कम से कम 8,000 धनु या 32,000 हाथ लंबाई (1 धनु = 4 हाथ) परिमाप की नहीं है, वह एक नदी नहीं है, बल्कि एक गर्त है। यदि मैं हाथ = 1.5 फीट, 32,000 हाथ 48,000 फीट या 14,630 मीटर के बराबर हैं। इस प्रकार, नदी कहलाने के लिए प्रवाह की लंबाई कम से कम 14.6 कि.मी. होनी चाहिए। यह परिभाषा केवल प्रवाह की लंबाई को अपने दायरे में लेती है; यह पानी की मात्रा, जलग्रहण क्षेत्र या किसी अन्य पैरामीटर पर विचार नहीं करती।

6.1.2 प्रवाह के विभिन्न प्रकार

प्रो. जी.डी. अग्रवाल व जलपुरुष राजेन्द्र सिंह ने दुनियां के नदी विशेषज्ञों को गंगा बेसिन क्षेत्र- राजेन्द्र सिंह के मूल डौला, बागपत उत्तरप्रदेश- में 11 मार्च 2011 को बुलाया था। इस सम्मेलन में दुनिया के आधुनिक नदी विशेषज्ञ, शंकराचार्य, संत-महात्मा, सामाजिक कार्यकर्ता तथा पर्यावरण वैज्ञानिकों ने तीन दिन नदियों के सभी पक्षों पर बातचीत करके, निम्न लिखित परिभाषा बनायी थी -

''हिमजल, भूजल, स्रोत एवं वर्षा के जल को उद्गम से संगम तक स्वयं प्रवाहित रखती हुई, जो जल धारा अविरलता, निर्मलता और स्वतंत्रता के साथ बहती है तथा सदियों

से सूरज, वायु और धरती से आजादी से स्पर्श करती हुई जीव-सृष्टि से परस्परपूरक और पोषक नाता जोड़कर जो प्रवाहित है - वह नदी है।''

हालाँकि, वर्तमान समय में, यह देखा गया है कि 'नदी' शब्द का प्रयोग शिथिल रूप से किया जाता है। पानी के प्रवाह को स्थानीय मानदंडों के अनुसार 'नदी' कहा जाता है, पाठ्य पुस्तकों, गजेटियर्स और आधिकारिक सरकारी रिपोर्टों में इसे ही 'नदी' कहा जाता है।

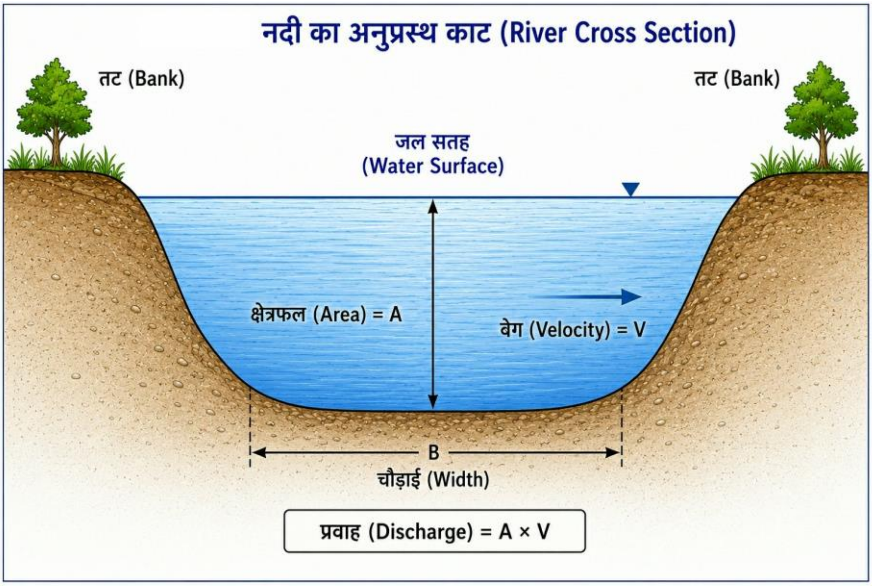

चित्र 6.1: नदी का अनुप्रस्थ काट से प्रवाह

गंगा घाटी की तरह मुख्य नदी से निकलने वाली एक शाखा जो बाद में किसी बिंदु पर नीचे की ओर फिर से जुड़ जाती है, उसे भी गजेटियर में 'नदी' के रूप में वर्गीकृत किया गया है। इसी प्रकार, डेल्टा क्षेत्र में एक नदी समुद्र में मिलने से पहले जिन कई शाखाओं में विभाजित हो जाती है, उनमें से प्रत्येक को 'नदी' कहा गया है। ऐसी दो शाखाओं को जोड़ने वाली नाली को 'नदी' भी कहा जाता है। यहां तक कि नदियों से अतिरिक्त पानी निकालने वाले नाले, जिन्हें बंगाल में कामदेर या खाल के नाम से जाना जाता है, को भी कभी-कभी नदी कहा जाता है।

सभी प्रकार के जलधाराओं को शिथिल रूप से 'नदियाँ' नाम देने के बजाय, उनके बीच अंतर करने के उद्देश्य से इन खंडों में कुछ विशिष्ट शब्दों का उपयोग भी किया गया है।

(i) पूरक नदीः कुछ मामलों में यह देखा गया है कि दो नदियाँ या नाले अपने विशिष्ट नाम के साथ एक साथ जुड़ते हैं और संयुक्त प्रवाह को एक अलग नाम वाली एक नई नदी माना जाता है। वास्तव में, दो मूल प्रवाहों का संगम नए प्रवाह का स्रोत बन जाता है। उदाहरण हैं तुंगा और भद्रा जो मिलकर तुंगभद्रा बन जाती हैं, या चंद्र और भागा जो चंद्रभागा बन जाती हैं। दो मूल प्रवाहों को 'पूरक नदियाँ' कहा जाता है, सहायक नदियाँ नहीं। ऐसी पूरक नदियों की, कुछ मामलों में, अपनी सहायक नदियाँ होती हैं।

(ii) शाखाः गंगा, गोदावरी या कृष्णा जैसी मुख्य नदियों की शाखाएँ, जो मुख्य नदी के उनके डेल्टा क्षेत्र में कई प्रवाहों में टूटने से उत्पन्न होती हैं, को अक्सर गजेटियर्स द्वारा 'नदियाँ' कहा जाता है। हालाँकि, ये सहायक नदियाँ नहीं, बल्कि मुख्य की शाखाएँ मात्र हैं। और इसलिए इन खंडों में इन्हें 'शाखाएँ' कहा जाता है।

(iii) अनाब्रांचः कुछ मामलों में, मुख्य नदी का एक द्वितीयक चैनल निकल जाता है और फिर नीचे की ओर मुख्य चैनल से जुड़ जाता है। ऐसे भिन्न-भिन्न प्रवाहों को अक्सर नदियाँ कहा जाता है। हालाँकि, वर्तमान खंडों में उन्हें 'एनाब्रांच' कहा जाता है।

(iv) सहायक नदियाँ: केवल ऐसे प्रवाह जिनका एक अलग उद्गम/स्रोत और जलग्रहण क्षेत्र होता है, और अपना पानी मुख्य नदी में छोड़ते हैं, वे 'सहायक नदियाँ' कहलाती हैं।

(v) जल निकासी खाई या नालाः यह वह नाम है, जिसका उपयोग इन खंडों में निचले क्षेत्र में जमा हुए पानी को ले जाने के लिए खोदी गई खाई के लिए किया जाता है।

(vi) बहिर्वाह नदी (उत्सरण वाहिनी): नदी के प्रवाह से निर्मित एक प्राकृतिक चैनल, जिसमें बाढ़ के समय नदी चैनल की क्षमता से अधिक पानी बहता है, इन मात्राओं में 'बहिर्वाह नदी' कहलाती है।

6.2 चंबल नदी का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व

भारत की नदियाँ केवल जल प्रवाह की प्राकृतिक धाराएँ नहीं हैं, बल्कि वे देश की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक चेतना की आधारशिला रही हैं। इन्हीं महान नदियों में **चंबल नदी** का विशेष स्थान है। चंबल नदी अपने स्वच्छ एवं प्रदूषणमुक्त जल, गहरी घाटियों (बीहड़ों), समृद्ध जैव विविधता तथा प्राचीन ऐतिहासिक परंपराओं के कारण भारतीय नदी तंत्र में एक विशिष्ट पहचान रखती है।

यह नदी मध्य भारत की प्राकृतिक धरोहर होने के साथ-साथ मानव सभ्यता, लोकसंस्कृति, जल संरक्षण तथा पर्यावरणीय संतुलन की महत्वपूर्ण वाहक भी रही है।

चंबल नदी का प्राचीन नाम **चर्मण्वती (चर्मवती)** माना जाता है। महाभारत, पुराणों तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में चर्मण्वती नदी का उल्लेख मिलता है। *महाभारत* के अनुसार यह नदी राजा **रन्तिदेव** के यज्ञों से जुड़ी हुई मानी जाती है। एक अन्य लोकमान्यता के अनुसार महाभारत में द्रौपदी के अपमान के पश्चात इस नदी को अन्याय और हिंसा के विरुद्ध प्रतीकात्मक रूप से देखा गया, जिसके कारण लंबे समय तक इसके जल के प्रति विशेष श्रद्धा एवं मर्यादा का भाव बना रहा। यद्यपि इन कथाओं का ऐतिहासिक प्रमाण सीमित है, फिर भी उन्होंने चंबल नदी को भारतीय लोकमानस में विशिष्ट स्थान प्रदान किया।

चंबल नदी का उद्गम मध्य प्रदेश के **जनापाव (जनापाव कुटी)** पर्वत से होता है, जो विंध्याचल पर्वतमाला का एक महत्वपूर्ण भाग है। लगभग **960 किलोमीटर** लंबी यह नदी मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश से प्रवाहित होकर अंततः यमुना नदी में मिल जाती है। अपने प्रवाह मार्ग में यह अनेक छोटी-बड़ी सहायक नदियों को समाहित करते हुए विशाल नदी तंत्र का निर्माण करती है। यह नदी तीन राज्यों के सामाजिक, आर्थिक एवं पारिस्थितिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

प्राचीन काल से ही चंबल नदी घाटी मानव निवास का महत्वपूर्ण क्षेत्र रही है। नदी के किनारे उपजाऊ भूमि, पर्याप्त जल उपलब्धता तथा प्राकृतिक संसाधनों के कारण यहाँ कृषि, पशुपालन एवं ग्रामीण जीवन का विकास हुआ। पुरातात्त्विक साक्ष्य बताते हैं कि चंबल घाटी में प्रागैतिहासिक मानव का निवास था तथा यहाँ पाषाण युग से लेकर ऐतिहासिक काल तक मानव गतिविधियाँ निरंतर विकसित होती रहीं। नदी तटों के आसपास अनेक प्राचीन मंदिर, दुर्ग, शिलालेख तथा ऐतिहासिक अवशेष आज भी इस क्षेत्र की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का परिचय देते हैं।

मध्यकाल में चंबल नदी प्राकृतिक सुरक्षा का माध्यम भी रही। इसकी गहरी घाटियाँ एवं बीहड़ अनेक राजवंशों के लिए प्राकृतिक रक्षा कवच बने। बाद के समय में यही बीहड़ डकैतों की गतिविधियों के कारण चर्चित हुए, जिससे चंबल की पहचान लंबे समय तक भय एवं अपराध से जुड़ गई। किंतु यह चंबल का वास्तविक स्वरूप नहीं था। आज वही क्षेत्र जैव विविधता, नदी संरक्षण, ईको-पर्यटन तथा सतत विकास के महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में उभर रहे हैं।

चंबल नदी का सांस्कृतिक महत्व अत्यंत व्यापक है। इस नदी के तटों पर अनेक धार्मिक स्थल, प्राचीन मंदिर एवं तीर्थ विकसित हुए हैं। राजस्थान के कोटा, केशवरायपाटन तथा मध्य प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में स्थित मंदिर एवं घाट धार्मिक

आस्था के महत्वपूर्ण केंद्र हैं। कार्तिक पूर्णिमा, मकर संक्रांति तथा अन्य पर्वों पर नदी तटों पर स्नान, पूजा एवं मेलों का आयोजन स्थानीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। लोकगीतों, लोककथाओं तथा लोकसाहित्य में चंबल नदी को जीवन, साहस, संघर्ष एवं समृद्धि के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है।

चंबल नदी ने इस क्षेत्र की कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी सुदृढ़ बनाया है। चंबल घाटी परियोजना के अंतर्गत निर्मित **गांधी सागर**, **राणा प्रताप सागर** तथा **जवाहर सागर** बाँधों के साथ **कोटा बैराज** ने सिंचाई, पेयजल एवं विद्युत उत्पादन के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया है। इन परियोजनाओं के माध्यम से मध्य प्रदेश और राजस्थान के लाखों हेक्टेयर कृषि क्षेत्र को सिंचाई सुविधा प्राप्त हुई तथा क्षेत्रीय औद्योगिक एवं आर्थिक विकास को नई गति मिली। इस प्रकार चंबल नदी केवल प्राकृतिक धरोहर ही नहीं, बल्कि क्षेत्रीय विकास की आधारशिला भी है।

पर्यावरणीय दृष्टि से चंबल नदी भारत की सर्वाधिक स्वच्छ नदियों में गिनी जाती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इसके किनारे बड़े औद्योगिक नगर अपेक्षाकृत कम विकसित हुए हैं तथा नदी में औद्योगिक अपशिष्ट का प्रवाह सीमित है। इसी कारण इसका जल आज भी अपेक्षाकृत स्वच्छ बना हुआ है। चंबल नदी में **घड़ियाल**, **मगरमच्छ**, **गंगा डॉल्फिन**, **भारतीय स्किमर**, **सॉफ्टशेल कछुए** तथा अनेक दुर्लभ जलीय जीव पाए जाते हैं। इनकी सुरक्षा के लिए स्थापित **राष्ट्रीय चंबल अभयारण्य** भारत का एक महत्वपूर्ण संरक्षण क्षेत्र है, जो तीन राज्यों—मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश—में विस्तृत है। यह अभयारण्य संकटग्रस्त घड़ियाल एवं अन्य जलीय जीवों के संरक्षण के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी महत्वपूर्ण माना जाता है।

चंबल नदी भारतीय जल संस्कृति का भी उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। इस नदी से जुड़े अनेक गाँवों में जल संरक्षण, वर्षा जल संचयन, तालाबों, पोखरों एवं पारंपरिक जल संरचनाओं का विकास स्थानीय जीवन का अभिन्न अंग रहा है। सामुदायिक सहभागिता के माध्यम से जल संसाधनों का संरक्षण भारतीय जल विद्या की उस परंपरा को दर्शाता है, जिसमें प्रकृति और मानव के बीच संतुलित संबंध स्थापित करने पर बल दिया गया है। वर्तमान समय में जल संकट एवं जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के बीच चंबल घाटी के अनेक क्षेत्रों में सामुदायिक जल संरक्षण के प्रयास पुनः महत्त्व प्राप्त कर रहे हैं।

वर्तमान समय में चंबल नदी अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है। अवैध रेत खनन, अनियंत्रित कृषि रसायनों का उपयोग, जलवायु परिवर्तन, नदी तटों का क्षरण तथा बढ़ता मानवीय हस्तक्षेप इसके प्राकृतिक स्वरूप को प्रभावित कर रहे हैं। यदि इन समस्याओं का समय रहते समाधान नहीं किया गया, तो नदी की पारिस्थितिकी

तथा जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए चंबल नदी के संरक्षण हेतु वैज्ञानिक नदी बेसिन प्रबंधन, प्रदूषण नियंत्रण, जलग्रहण क्षेत्र का संरक्षण, वनीकरण तथा स्थानीय समुदायों की सक्रिय सहभागिता आवश्यक है।

आज चंबल नदी केवल एक ऐतिहासिक धरोहर नहीं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण एवं सतत विकास का प्रेरक उदाहरण भी है। यह नदी हमें यह शिक्षा देती है कि प्रकृति का सम्मान, जल संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग तथा सामुदायिक सहभागिता किसी भी नदी को दीर्घकाल तक जीवनदायिनी बनाए रख सकती है। भारतीय जल विद्या एवं विज्ञान के संदर्भ में चंबल नदी का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि किसी भी नदी का वास्तविक महत्त्व केवल उसके जल में नहीं, बल्कि उससे जुड़े इतिहास, संस्कृति, जैव विविधता, लोकजीवन एवं सामाजिक चेतना में निहित होता है।

अतः चंबल नदी का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व केवल अतीत की स्मृतियों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह वर्तमान और भविष्य की जल सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण तथा सतत विकास के लिए भी समान रूप से प्रासंगिक है। इस नदी की निर्मलता, प्राकृतिक संपदा एवं सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण करना हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इस अमूल्य धरोहर से प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

6.3 पुनर्जीवित सरिताओं एंव चंबल में शांतिमय सभ्यता

जब धरती के ऊपर बहने वाली सरिताओं और भूजल सरिताओं में जल आया, तो बागियों की बाहों की बंदूकें गायब हो गईं और उनके हाथों के कामों से खेतों में हरियाली छाने लगी। इस हरियाली ने परिवेश, परिस्थितिकी और जहरीली गैस (कार्बन डाइऑक्साइड) का शोषण किया और मिट्टी में जमा कर दिया। यही हरियाली प्राणवायु (ऑक्सीजन) को वातावरण में बढ़ाकर सभी का पोषण करने लगी, जिससे जलवायु संकट का अनुकूलन और उन्मूलन होने लगा। चंबल में अब लोगांे का प्राकृतिक प्रेम, विश्वास, श्रद्धा और भक्ति-भाव बन गया है। यही हरियाली यहां की शांति को लाने का प्रमुख आधार है।

सरिताओं के पुनर्जीवित होते ही प्रेम की सभ्यता पनपने लगी है। पुनर्जीवित सरिताओं ने ही चंबल में शांतिमय सभ्यता को पुनर्जीवित किया है। चंबल नदी के बेसिन में बामनी, बम्हाया, खर्राबाई धौलपुर और सैरनी, नेहरो, तेवर, काला सिंन, महेश्वरा , चोरघान (गुटा) करौली जिले की छोटी -छोटी इन 9 नदियों को पुनर्जीवित करने का काम चालू है। यह कार्य इस क्षेत्र में 35 वर्ष पूर्व राजेंद्र सिंह के नेतृत्व में तरुण भारत संघ ने शुरू किया था। उस समय यहां के लोगों में बागियों और पुलिस का डर बना

रहता था। पुलिस भी इनसे डरती रहती थी। दोनों तरफ से डरने-डराने का खेल चलता रहता था।

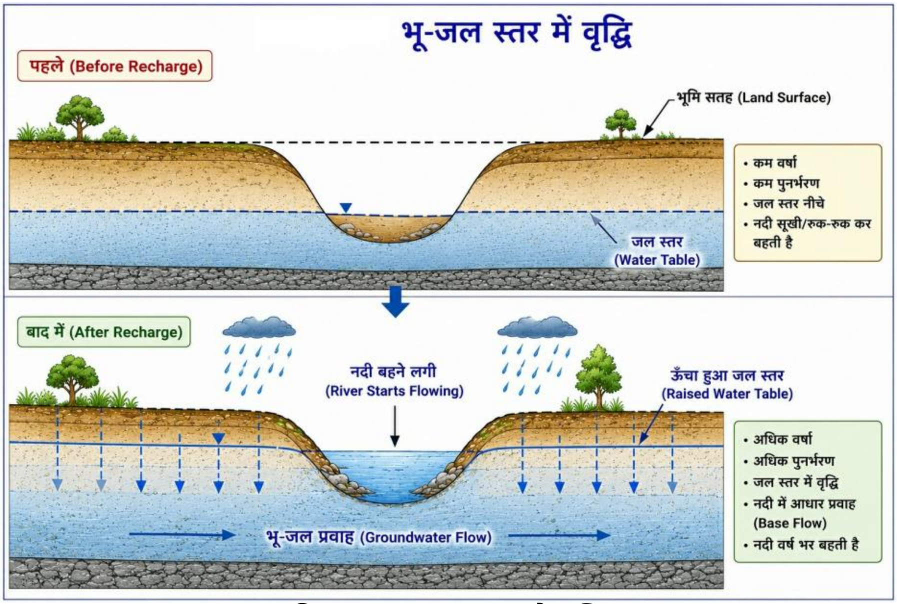

चित्र 6.2: भूजल स्तर में वृद्धि

यहां पुलिस कभी धोखा देकर बागियों को पकड़ लेती थी, तो कभी चंबल के बागी-बेटे पुलिस को धोखा देकर भाग जाते थे। मरने-मारने-डरने-डराने का ही खेल चलता रहता था। जलपुरुष जी ने इस क्षेत्र के कई ऐसे साथियों से बातचीत की जो जमींदार होकर भी खेती नहीं करते? खेती के लिए जमीन है, लेकिन पानी नहीं है। इसलिए यहां के जमीनदार बंदूक उढ़ाते है।

बागी बोलते है कि, बादल तो आते हैं, लेकिन बरसते नहीं हैं। बादल बरसते भी है; तो वर्षा का सारा पानी बहकर चला जाता है। यह बामनी, बम्हाया, खर्राबाई, धौलपुर और सैरनी, नेहरो, तेवर, काला सिंन, महेश्वरा और चौड़ियांखाता से शुरू होने वाली चोरघान धारा भी पूरी साल सूखी रहती थी। इन सभी नदियों का पानी बह जाता है और हम व हमारी जमीनें सूखी रह जाती है। इसलिए बंदूक उठाके, दहाड़े मारते है। लेकिन इन दहाड़ों से हम अपने और परिवार के लिए कुछ भी नहीं कर पाते। दहाड़े का पूरा माल दहाड़े में ही चला जाता है। हमारे हाथ में कुछ भी नहीं आता है। यह बात जगदीश गुर्जर ने कई बार कही है। जलपुरुष जी ने उसके मन की तैयारी के बाद ,उसी के खेत पर पोखर बनाने का काम शुरू किया। तब उसने अपनी बंदूक छोड़कर, खेती करने का मन बना लिया।

जगदीश गुर्जर कुछ सालों तक पूरा समय सामाजिक काम करता रहा। बहुत ही अनुशासित है। इसने बंदूके छोड़ी तो फिर जीवन भर उसको छुआ तक नहीं। बिना लोभ लालच के काम व सभी का सम्मान करने वाला जगदीश सदैव सभी के लिए भले के काम हेतु तत्पर रहता है। अतः इसने अपनी बंदूक नदी को सदानीरा बनाने हेतु छोड़ी।

इस नदी का जीवन जंगल के कई गावों सें जुडा है। इस नदी के बेसिन में कई गांव है। ये सभी गांव गुर्जर समाज के हैं। अब तो ये सभी पानी का काम करके ,इज्जतदार बन गए हैं।

भूरी सिंह नाहरपुरा ,जिला धौलपुर की कहानी भी कुछ ऐसी ही है। भूड़खेड़ा के रुस्तम की कहानी में अंतर है, वह भाइयों से सीख लेकर बागी बना था। यह लूट-पाट का काम नहीं करता था,इसलिए इनके भाइयों ने इसे अलग कर दिया था। जब यह भूखे मरने लगा तब मजबूरी में बंदूक खरीदी थी। बंदूक चलाने का काम उसका अरुचि का काम था। कोई "मरता क्या नही करता"! व्ह खेती करना चाहता था, लेकिन पानी नहीं था। पानी की कमी के कारण खेती नहीं हुई, इसलिए बंदूक चलाना-सीखना ही सरल था। फिर मरना और मारना भी इसको सरल लगने लगा था। इसलिए इसने फिर यही काम चुन लिया था।

तरुण भारत संघ ने नदी, गांव तथा इसके खेतों के लिए काचरा का बंध बना दिया था। तब पहले ही साल में इसके खेत में सैकड़ों मन गेहूं और सरसों पैदा हुई, जिसे यह बेचकर शांति से लाखों रुपए इसके हाथ में आ गए। तब रुस्तम अपनी पत्नी के साथ निर्भय होकर जीने लगा। पहले तो पत्नी से भी डर कर मिलता था, अब तो हर समय अपनी पत्नी और बच्चों के साथ रहता है। अपनी मेहनत और पसीने के कमाई करके जीवन जीने लगा है। उसके बाद डराने और लूटने का विचार मन में जन्म ही नहीं लिया अब तो यह ठाठ से रहता है।

रुस्तम का निर्भय बनकर जीने का साहस और विश्वास इसकी पत्नी के प्रेम से शुरू हुआ था। इनके प्यार में सहयोग करने के लिए राजेंद्र सिंह,चमन सिंह और रणवीर सिंह ने इन्हें मदद कर दी।

इस लेख के तीनों नायक वीर सिंह, जगदीश गुर्जर और रुस्तम अपने परिवार से सीख लेकर, बंदूक चलाकर लूटपाट का काम करने में जुटे थे। तीनों ने लाचार, बेकार और बीमार बनकर बंदूके उठाई थीं। पानी की पारिस्थितिकी ने इनके जीवन में प्रेम घोल दिया। इनके लूटपाट छोड़ने का काम सरलता और सहजता से संभव

हुआ क्योंकि इनका जीवन भी बहुत सरल और सादगी पूर्ण है। उसमें जटिलता होती तो बंदूक छोड़ने के काम में सरलता से सफलता नहीं मिलती।

अहिंसा और सत्य के रास्ते पर चलने वाले राजेंद्र सिंह के मन में इन लोगांे के प्रति बातचीत करके प्रेम बढ़ गया था। यही प्रेम चमन सिंह और रणवीर सिंह के मन में भी भर गया था। इन दोनों ने भी रात-दिन काम करके, इनसे बंदूकें छुड़वाकर इन्हें खेती हेतु जल संरक्षण से समृद्धि लाने का रास्ता दिखा दिया। इन तीनों बागियों ने अपना जीवन बदल लिया। अब ये सभी आनंद और इज्जत से रहने लगे हैं। अब इनकी संतानें भी शांति से जीवन जीना सीख रही है।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा घोषित विश्व जल शांति वर्ष में 9 छोटी जल धाराओं का प्राकृतिक विधि से जल संरक्षण करके, हजारों बंदूकधारियों ने चंबल घाटी के राजस्थानी क्षेत्र को अब शांतिमय बना दिया है। पहले तो इन क्षेत्रों में कोई भी दिन में भी जाने से डरता था। यह सभी उजड़ क्षेत्र थे। इन्हीं उजड़ी हुई सभ्यताओं की सरिताओं को पुनर्जीवित करके, इन्हें शांतिमय बनाकर सभ्यता को भी पुनर्जीवित कर लिया। जैसे ही सरिताओं में जल प्रवहमान हुआ,वैसे ही यहां के बागियों की आंखों में प्रेम का पानी प्रवहमान हो गया। हाथो में जमीन पर प्रेम से फावड़ा-हल चलाने की ऊर्जा भी आ गई।

6.4 चंबल नदी का संकट

चंबल गंगा की उपसहायक नदी है। यह यमुना-गंगा में मिलकर ही समुद्र तक पहुंचती है। आज भारत की एक मात्र नदी है जो शुद्धसदानीरा बन रही है। यहां की पुनर्जीवित चंबल सरिता ने चंबल सभ्यता को पुनर्जीवित करना शुरू किया है। सभ्यता और सरिता का समुद्र के साथ गहरा रिश्ता है।
सरितारूपेण समुद्भवां देवीरूपेण प्रवर्तिताम्।
देवीं सरस्वतीमहं वन्दे सरिताकोशसिद्धये॥

जब चंबल सूखी-मरी तभी इसके किनारे की सभ्यता भी मरने लगी थी और दूसरों को भी मारती थी। सूखती सरिता सभ्यता को भी सूखाती है। दुनिया भर में मानव सभ्यताओं और नदियों का गहरा रिश्ता है। प्राचीन मनुष्यों ने पहली बस्तियाँ नदी के किनारे स्थापित कीं। मानव संस्कृति का विकास नदियों के आसपास हुआ। भारत में आर्य सिंधु नदी के पार बसे और वहीं सिंधु सभ्यता विकसित हुई। इसे ही गंगा-युमना की संस्कृति भी बोलते है। यही चंबल की सभ्यता और संस्कृति है। इस सभ्यता को हिंसक बनाने का काम अंग्रेजों ने किया था। इन्हें अपराधी घोषित कहकर सताया था। खनन करने से व्यक्ति भी पत्थर की तरह कठोर बन गए थे। करूणा का स्थान

जब कठोरता लेती है; तभी हिंसक बन जाता है। जब मानव प्यार से जोर लगाता है, तभी पत्थर भी पानी बनता है। चंबल की हिंसा को प्यार से पानीदार, इज्जतदार, समझदार बना दिया है।

प्राचीन काल से ही नदियाँ भारतीय जनमानस के भावनात्मक जीवन का अभिन्न अंग रही हैं। भारतीय नदियाँ सिर्फ भौगोलिक सत्य नहीं बल्कि भावनात्मक सत्य भी हैं। गंगा सिर्फ एक नदी नहीं है बल्कि वह 'गंगा मैया' मां गंगा है। इसी प्रकार नर्मदा नदी 'नर्मदा मैया' है। यह भारतीय संस्कृति की अनूठी विशेषता है। दुनिया में कहीं भी नदियों के प्रति इतना स्नेह और श्रद्धा नहीं दिखाई देती। लेकिन उन्होने अपनी नदियों को शुद्ध-सदानीरा बना लिया है। भारत ने नदियों को नाला बना दिया है। चंबल भी नाला बनकर मर रही थी।

भारतीयों के हृदय में नदियों विशेषकर गंगा, नर्मदा और यमुना के प्रति इतनी कोमल एवं पवित्र भावनाएँ कैसे उत्पन्न हुईं? ये भावनाएँ सहस्राब्दियों तक कैसे कायम रहीं? हर भारतीय इन नदियों के प्रति प्रेम और स्नेह महसूस करता है। ऐसी पवित्र नदियों की भूमि में जन्म लेना सौभाग्य माना जाता है। 'दुर्लभे भारते जन्म' भाषा और संस्कृति की इतनी विविधता वाले देश में यह गौरव की भावना कैसे फैली? नदियाँ एकता का प्रतीक कैसे बनीं? इसके लिए कौन जिम्मेदार है? ऐसी अनोखी कल्पना किसने दिखाई? इसके लिए किसने अथक परिश्रम किया?

उक्त सवालों का जबाव मिल गया है। दुनिया की 'गुरू' भारतीय संस्कृति में नीर, नारी, नदी को नारायण मानकर सम्मान दिया था। सम्मान को अंग्रेजो ने क्रियान्वित नहीं होने दिया। राज्यादेश द्वारा शहरों-उद्योगों का गंदा जल नदियों में सीधा डलवा दिया था। इसी से गंगा-यमुना सभी नदियां नाले बनकर बहने लगी। नालों को नदियां बनाना 'सदाचार' और नदियों को नाले बनाना भ्रष्टाचार-दुराचार होता है। भारत में अंग्रेजों ने दुराचार बढ़ाया था। प्रेम, सम्मान, श्रद्धा, ईष्ट-निष्ठ, भक्तिभाव समाप्त किया था।

ये प्रश्न मेरे मन में तब आए जब मैं भारत भर में विभिन्न नदी घाटियों का दौरा कर रहा था। जब मैं गंगा और नर्मदा नदी, गौमुख से गंगासागर, अमरकंटक से सोमनाथ तक यात्रा करके नदियों के घाटों पर विभिन्न राज्यों के तीर्थयात्रियों से मिला, पुजारी द्वारा किए जा रहे धार्मिक अनुष्ठानों और स्थानीय लोगों के साथ इन तीर्थयात्रियों की बातचीत को देखा और सुना, तो मुझे एहसास हुआ कि, भारत की नदियां ही विविधता में एकता का एक धागा है। यही इन तीर्थयात्रियों, भारतीयों को भारतीयता में बांधता है। तीर्थयात्री भारत के किसी भी क्षेत्र से हों, लेकिन इन नदियों और इन नदी के तटों पर बने तीर्थ स्थलों के प्रति उनकी श्रद्धा की भावना आज भी बिल्कुल वैसी ही है, जैसे पहले थी। जबकि चंबल-गंगा-यमुना सभी प्रदूषित होकर सभी को बीमार बना रही है।

इस विशाल देश में, सभी महत्वपूर्ण नदियों के किनारे, उद्गम से लेकर संगम तक, प्राचीन ऋषि मुनियों ने तीर्थ स्थलों की स्थापना करके, महान कार्य किया। उन्होंने इन स्थानों पर सुंदर घाट और मंदिर बनवाए और उन्हें पूजा स्थलों में बदल दिया। नदी तटों का प्राकृतिक सौन्दर्य मानव कृतियों के सौन्दर्य से और भी निखर गया। प्राचीन ऋषि-मुनि इन स्थानों पर ध्यान के लिए आते थे। इससे इन स्थानों की पवित्रता और बढ़ गई। इन स्थानों की तीर्थयात्रा सभी भारतीयों के लिए एक परंपरा बन गई। भारतीय लोगों के मन में नदियों को आत्मसात कर लिया है।

जैसे-जैसे आम लोग इस तरह की तीर्थयात्राओं के लिए देश भर में यात्रा करते थे, आम जनता में एकता की भावना बढ़ती गई। इन तीर्थयात्राओं के पीछे की विचारधारा को दार्शनिकों, आचार्यों और लेखकों ने इन नदियों के बारे में साहित्य रचकर आगे बढ़ाया। निस्वार्थ देशभक्तों ने व्यक्तिगत बलिदान देकर इसे आगे बढ़ाया। उन्होंने निर्वाण प्राप्त करने की दिशा में भारतीय मन की प्रकृति प्रवृत्ति के साथ पंथ और देश के प्रति प्रेम को एक साथ जोड़कर, महान कल्पनाशीलता दिखाई। अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि, नदियों ने भारत की सांस्कृतिक एकता में बहुत बड़ा योगदान दिया है। चंबल भी राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश को एकता प्रदान करती है।

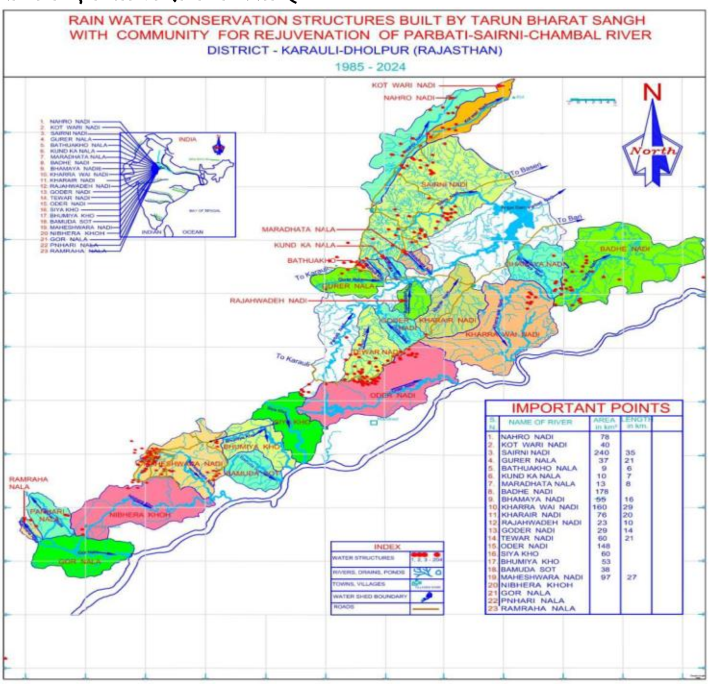

चित्र 6.3 : चम्बल नदी के वर्षा जल संरक्षण का मॉडल –तरुण भारत संघ

चंबल को देखकर मनः व्यथित होता था। इस पर हुए विकास कार्यों के नाम पर विनाश ही कर दिया था। बड़े बांधों ने नदी का पूरा जल उठाकर, शहरों-उद्योगों को दे दिया है। इसलिए यह देखकर अत्यंत दुख होता है कि, इनमें से कुछ स्थानों का किस प्रकार बहुत ह्रास हुआ है। पानी को सिंचाई के लिए मोड़ने और शहरी सीवेज और औद्योगिक कचरे को नदियों में छोड़ने के कारण हुआ है। कृषि के लिए पानी उपलब्ध कराना आवश्यक है लेकिन पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक न्यूनतम प्रवाह भी महत्वपूर्ण है।

हमें इन दो विपरीत आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए एक रास्ता खोजना था। चार दशक पूर्व इसी दिशा में कार्य आरंभ हुआ। 30 प्रतिशत वर्षाजल खेती, उद्योग, जीवन, जीविका तथा 70 प्रतिशत नदी के जमीर हेतु जल प्रवाह प्रदान किया है। अब चंबल पुनर्जीवित करने हेतु 23 नदियों पर काम चालू है।

चूंकि मैं अपनी सरकारी सेवा से चार साल बाद ही त्याग पत्र देकर राजस्थान के अलवर जिले के गांव गोपालपुरा में शिक्षा-चिकित्सा का काम शुरू किया था। उसे छोड़कर नदी पुनर्जीवन के काम करने लगा था। किताबों में तकनीकी, सांस्कृतिक और कुछ हद तक ऐतिहासिक जानकारी शामिल होती है; लेकिन काम करने की विद्या नहीं मिलती है। मैं महाकवि कालिदास की प्रसिद्ध उक्ति 'तितीर्षुर्दुस्तरम् मोहात उडुपेनास्मि सागरम्' का अनुसरण करते हुए कार्य के पीछे चला गया। काम करते हुए चंबल नदी पुनर्जीवन का काम सीख लिया है। अब इसी काम में लगा हूं।

चंबल में काम शुरू करने का एक और महत्वपूर्ण कारण यह है कि जैसे-जैसे साल बीतेंगे पानी की उपलब्धता की समस्या गंभीर होती जाएगी। जल संसाधनों पर युद्ध लड़े जा रहे हैं। एक दर्जन से ज्यादा विश्व में जल युद्ध जारी है। विभिन्न देशांे, राज्यों और जिलों के बीच जल विवाद हो रहे है। ऐसे में हमारे पास विवादित जल संसाधनों के बारे में विस्तृत और सटीक जानकारी होनी चाहिए। ताकि ये विवाद ग़लत जानकारी पर न लड़े जाएं, इससे विवादित पक्षों के बीच शांति स्थापित करने और समझौता कराने में मदद मिलेगी। नदियों के अलावा भूजल एक महत्वपूर्ण जल संसाधन है। भूजल संसाधनों के महत्व को समझने की आवश्यकता है। आज सबसे ज्यादा जरूरी है कि, हम जल बचाएं और अनुशासित होकर जलउपयोग किया है तभी तो चंबल के जल संकट को समाधान मिलने लगा है।

भारत जल और नदी की वास्तुकला के क्षेत्र में अग्रणी देशों में से एक है। सिंचाई, नदी प्रबंधन, नहरों, बांध निर्माण आदि कार्यों में भारत ने अग्रणी बनने की कोशिश करी है। वैदिक काल से ही हमारे पास जल विद्या थी; बाद में जल प्रौद्योगिकी, अभियांत्रिकी विज्ञान आदि से जल अध्ययन करने की परंपरा रही है। ये विषय परिणामस्वरूप कई ऐतिहासिक बांध, नहरें और जल निकाय अभी भी कार्यशील हैं,

बेशक उनमें से बाकी बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं या विदेशी आक्रमणों के दौरान नष्ट हो गए थे।

इन गतिविधियों के पीछे के मौलिक वैज्ञानिक सिद्धांतों को समझाने वाली महान जलविद्या अवश्य रही लेकिन दुर्भाग्य से ये अब जल विद्या हमारे लिए उपलब्ध नहीं हैं। विदेशी आक्रमणों के समय तिब्बत-नेपाल क्षेत्र से भी ऐसी विद्या समाप्त हो गई है। इसको समझनें मैं, तिब्बत और नेपाल कई बार गया हूं। गर्गमुनि के पाठ के कुछ पृष्ठ नेपाल में पाए जाते हैं लेकिन उनसे परपंरागत जल विद्या का केवल अहसास मात्र होता है। तिब्बत में कुछ लोग जल विद्या पर बात करने हेतु तैयार है लेकिन उस दिशा में प्रमाणिक काम वो नही कर पा रहे है। प्राचीन जल विद्या अहिंसक, सरल, सहज और व्यवहारिक है लेकिन सरकारी अनदेखी है। चंबल में लोकविद्या को ही जल संरक्षण का आधार बनाया है।

यजुर्वेद का निम्नलिखित संदर्भ ऊपर दिए गए निष्कर्ष का समर्थन करता हैः-

नमः कुप्याय च अवटयाय च नमो वैधान्याय च आतप्यायच।
नमो मेध्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय च आवर्षस्य च। (यजु. 16.38)

अर्थः हम उन लोगों को नमन करते हैं जो कुओं, झीलों, सूखे के समाधान की विद्या को जानते है। साथ ही साथ वे गर्मी, वर्षा के बादल और उनकी रचना, बिजली, वर्षा लाने या वर्षा को रोकने की विद्या बांटते है।

जलविद्या, भारत में राजा जनक द्वारा सुखाड़ मुक्ति हेतु अपनी रानी के साथ मिलकर हल चलाया था। उनके पसीने से प्रकृति प्रसन्न होकर, बादल बनकर बरसी थी। कंस के काल में कृष्ण ने सभी ग्वालों और गायों को गोवर्धन पर्वत पर लेजाकर बाढ़ से बचा लिया था। इसे ही हम प्रकृति अनुकूलन कहते है। बाढ़-सुखाड़ मुक्ति की भारत में यही युक्ति थी। ऐसे ही चंबल की बाढ़-सुखाड़ मुक्ति हेतु डाकूओं ने अपनी बंदूक छोड़कर, जगह-जगह जोहड़ बांध बनाकर, चंबल की 23 सहायक नदियों को सुखाड़-बाढ़ मुक्त बनाने की पहल की है। यह सब काम प्राचीन विद्या से ही संभव हुआ है।

इस तथ्य को समझने के बाद यह स्पष्ट हो गया कि, भारतीय प्राचीन इतिहास विद्या अनुसंधान का एक विशाल क्षेत्र है। मुझे आश्चर्य हुआ कि, जलविद्या द्वारा नदी, सभ्यता पुनर्जीवित हो जाती है। मैं, चंबल जल विद्या पर कुछ लेख लिख रहा हूं। इस कार्य में दुनिया के 15 जल विद्या के विषेषज्ञों का समूह कार्य कर रहा है। इस लक्ष्य हेतु 9 मार्च 2024 को 'चंबल संकट और समाधान' विषेषज्ञ समूह विधिवत गठित किया है।

यह समूह नदी से संबंधित विभिन्न विषयों के विषेषज्ञों का समूह है। इस समूह संगठन का उद्देश्य है कि, चंबल के संकट-समाधान की दिशा में हुए कामों का प्रभाव जानना।

6.5 चम्बल संरक्षण के समाधान

6.5.1 भूमिका

चम्बल नदी भारत की सबसे स्वच्छ एवं पर्यावरणीय दृष्टि से महत्वपूर्ण नदियों में से एक है। यह मध्य प्रदेश के जनापाव पर्वत से निकलकर राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश से होकर यमुना नदी में मिलती है। चम्बल नदी केवल जलधारा नहीं, बल्कि उत्तर भारत की पारिस्थितिकी, जैव विविधता, कृषि, भू-जल पुनर्भरण तथा लाखों लोगों की आजीविका का आधार है। राष्ट्रीय चम्बल अभयारण्य में घड़ियाल, गंगा डॉल्फ़िन, मगर, ऊदबिलाव तथा अनेक दुर्लभ पक्षियों का संरक्षण इसी नदी पर निर्भर करता है।

विगत दशकों में अनियंत्रित भू-जल दोहन, सहायक नदियों का सूखना, मृदा अपरदन, अवैध खनन, वनों की कटाई तथा जलागम क्षेत्रों के क्षरण के कारण चम्बल नदी अनेक पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रही है। अतः चम्बल संरक्षण के लिए केवल नदी की मुख्य धारा की सुरक्षा पर्याप्त नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण नदी बेसिन (River Basin) एवं उसकी सहायक नदियों का समेकित संरक्षण आवश्यक है।

6.5.2 सहायक नदियों का पुनर्जीवन

किसी भी बड़ी नदी की स्थिरता उसकी सहायक नदियों पर निर्भर करती है। बमाया, कोटवाली, महेश्वरा, नेहरो, तेवर, सैरनी तथा अन्य छोटी नदियाँ चम्बल की जीवनरेखा हैं।

इनके संरक्षण हेतु आवश्यक है—

- प्रत्येक जलागम क्षेत्र का विकास।
- वर्षा जल संचयन।
- जोहड़, चेकडैम एवं एनीकट का निर्माण।
- आधार प्रवाह (Base Flow) की पुनर्स्थापना।
- प्राकृतिक जलधाराओं का संरक्षण।

जब छोटी नदियाँ पुनर्जीवित होंगी, तभी चम्बल नदी का प्राकृतिक प्रवाह दीर्घकाल तक सुरक्षित रहेगा।

6.5.3 जलागम क्षेत्र आधारित प्रबंधन

चम्बल संरक्षण का सबसे प्रभावी उपाय **समेकित जलागम प्रबंधन (Integrated Watershed Management)** है। इसके अंतर्गत—

- ढाल आधारित उपचार (Slope Treatment)

- कंटूर ट्रेंचिंग
- वर्षाजल संचयन
- खेत तालाब
- परकोलेशन टैंक
- वनस्पति विकास
- चरागाह संरक्षण

जैसे उपाय अपनाकर वर्षा जल को अधिकतम भूमि में समाहित किया जा सकता है। इससे भू-जल पुनर्भरण बढ़ता है तथा नदी का प्रवाह लंबे समय तक बना रहता है।

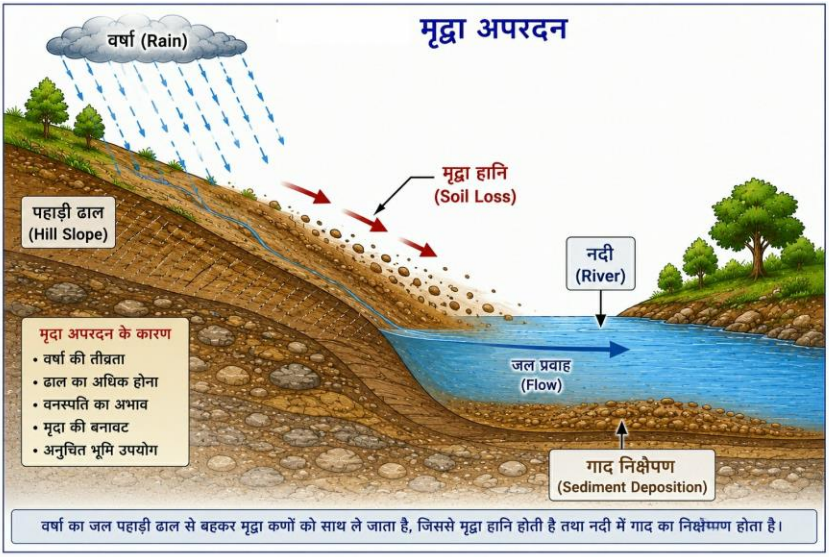

चित्र 6.4: मृदा अपरदान

6.5.4 वनों एवं जैव विविधता का संरक्षण

चम्बल नदी के जलागम क्षेत्र में हरित आवरण बढ़ाना अत्यंत आवश्यक है।
इसके लिए—

- स्थानीय प्रजातियों का वृक्षारोपण।
- नदी तटीय हरित पट्टी (Riparian Buffer Zone) का विकास।
- अवैध कटाई पर नियंत्रण।
- चारागाहों का संरक्षण।
- प्राकृतिक वनस्पतियों का पुनर्स्थापन।

वनों की वृद्धि से मृदा अपरदन कम होता है, वर्षा जल भूमि में समाहित होता है तथा नदी में गाद (Sediment) का प्रवाह घटता है।

6.5.5 अवैध खनन एवं प्रदूषण पर नियंत्रण

नदी तल से अनियंत्रित रेत खनन तथा औद्योगिक एवं घरेलू अपशिष्ट नदी की पारिस्थितिकी को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं। अतः—

- अवैध खनन पर कठोर नियंत्रण।
- प्रदूषित जल का शोधन (Treatment)।
- ठोस अपशिष्ट प्रबंधन।
- नदी तटों पर प्लास्टिक मुक्त क्षेत्र।
- पर्यावरणीय नियमों का प्रभावी पालन।

ये उपाय चम्बल नदी की स्वच्छता एवं पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए अनिवार्य हैं।

6.5.6 जनसहभागिता आधारित संरक्षण मॉडल

चम्बल संरक्षण केवल सरकारी योजनाओं से संभव नहीं है। इसके लिए स्थानीय समाज की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है।

इस दिशा में—

- ग्राम जल समितियों का गठन।
- श्रमदान आधारित जल संरक्षण।
- जल पंचायतों का आयोजन।
- विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में जल शिक्षा।
- स्वयंसेवी संस्थाओं की सहभागिता।
- महिलाओं एवं युवाओं की सक्रिय भूमिका।

तरुण भारत संघ द्वारा अपनाया गया जनसहभागिता मॉडल इस दिशा में राष्ट्रीय स्तर पर अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करता है।

6.5.7 वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपाय

चम्बल नदी संरक्षण को प्रभावी बनाने हेतु आधुनिक तकनीकों का उपयोग आवश्यक है—

- GIS आधारित नदी बेसिन मानचित्रण।
- Remote Sensing द्वारा जलागम विश्लेषण।
- भू-जल स्तर की नियमित निगरानी।
- जल गुणवत्ता परीक्षण।
- ड्रोन सर्वेक्षण।
- पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन (EIA)।

इन तकनीकों से संरक्षण कार्यों की योजना एवं निगरानी अधिक प्रभावी बनती है।

6.5.8 समेकित नदी बेसिन प्रबंधन
चम्बल नदी तीन राज्यों—मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश—से होकर प्रवाहित होती है। इसलिए इसका संरक्षण **River Basin Management** की अवधारणा पर आधारित होना चाहिए।
इसके लिए—

- अंतर्राज्यीय समन्वय।
- समान जल नीति।
- साझा डाटा प्रणाली।
- संयुक्त पर्यावरणीय निगरानी।
- स्थानीय समुदाय एवं प्रशासन की सहभागिता।

इस प्रकार सम्पूर्ण नदी तंत्र का समग्र संरक्षण सुनिश्चित किया जा सकता है।

6.5.9 निष्कर्ष
चम्बल नदी का संरक्षण केवल एक नदी की रक्षा का प्रश्न नहीं, बल्कि सम्पूर्ण प्राकृतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण का दायित्व है। सहायक नदियों का पुनर्जीवन, जलागम क्षेत्र विकास, भू-जल पुनर्भरण, वनों का संरक्षण, जनसहभागिता, वैज्ञानिक योजना तथा प्रभावी प्रशासन—ये सभी मिलकर चम्बल संरक्षण का स्थायी समाधान प्रस्तुत करते हैं।

बमाया एवं कोटवाली जैसी सहायक नदियों के पुनर्जीवन से यह सिद्ध हो चुका है कि यदि स्थानीय समाज, वैज्ञानिक संस्थान, प्रशासन तथा स्वयंसेवी संगठन मिलकर कार्य करें, तो चम्बल नदी को भविष्य की पीढ़ियों के लिए स्वच्छ, अविरल एवं समृद्ध बनाए रखा जा सकता है। यही मॉडल भारत की अन्य नदी घाटियों के संरक्षण के लिए भी एक प्रभावी राष्ट्रीय मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

6.6: तेईस (23)-नदियों की बहनों एंव चंबल क्षेत्र का घोषणापत्र

श्री महावीर जी, राजस्थान के करौली और धौलपुर जिलों के निवासियों का वैश्विक आह्वान

''जल एवं शांति लोक सम्मेलन, 20, 21 व 22 मार्च 2024''

विश्व जल शांति दिवस पर जारी जलदूत सम्मान सम्मेलन में, नदी के जल संरक्षको की भागीदारी से तैयार घोषणा पत्र करौली, राजस्थान ।

हम राजस्थान के करौली और धौलपुर जिलों के निवासी शांति और सुरक्षा के जीवंत प्रमाण हैं। जलपुरुष डॉ. राजेन्द्र सिंह जी के नेतृत्व में जल संरक्षण के हमारे प्रयासों ने

प्रकृति और समाज का कायाकल्प किया है। इससे हमारे मन, शरीर और आत्मा में सकारात्मक परिवर्तन आया तथा हमारी जीवनशैली प्रकृति और मानवता के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए हिंसा से अहिंसा की ओर अग्रसर हुई है। आज हमारे जीवन में स्थिरता, शांति, सुरक्षा और खुशहाली है। इसी अनुभव को साझा करने के लिए 20, 21 व 22 मार्च 2024 को जैन तीर्थ श्री महावीर जी में विश्वभर के शांति साधकों को आमंत्रित किया गया।

जल संरक्षण और जल सम्मान के आधार पर विकसित स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं ने हमें सम्मानजनक और समृद्ध जीवन दिया है। ये अर्थव्यवस्थाएँ न्यायसंगत, जैविक तथा जलवायु परिवर्तन, संघर्षों और जल संकटों के प्रति अधिक सक्षम हैं। जल, नदी और जंगल हमारे लिए केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि हमारे अस्तित्व और आत्मा का अभिन्न हिस्सा हैं। समुदाय आधारित, कम लागत और स्वदेशी ज्ञान पर आधारित जल संरक्षण से भूजल का पुनर्भरण हुआ, मौसमी नदियाँ और जैव विविधता पुनर्जीवित हुई तथा प्रकृति, आजीविका, पशुधन, वन्यजीव और प्रवासी पक्षियों के लिए जल उपलब्ध हुआ।

आज विश्व जल संबंधी आपदाओं, विस्थापन और संघर्षों से जूझ रहा है। हमारा अनुभव है कि **जल में शांति है और जल से शांति है।** जल का सम्मान करते हुए हमने जाना है कि स्थायी शांति का मार्ग जल संरक्षण से होकर गुजरता है। इसलिए हम जल संरक्षण के माध्यम से शांति स्थापित करने के लिए समर्पित हैं।

वर्ष 2024, जब भारत सहित 60 से अधिक देशों में चुनाव हो रहे हैं, एक महत्वपूर्ण अवसर है। चट्टानी क्षेत्रों में नदियों और भूजल के पुनर्जीवन के अपने अनुभव के आधार पर हम आह्वान करते हैं कि—

1. विश्व के राजनीतिक और सरकारी नेतृत्व विकेंद्रीकृत, समुदाय-केंद्रित तथा स्वदेशी ज्ञान आधारित जल संरक्षण को अपनाकर सभी जीव-जंतुओं, पेड़-पौधों और मानवता के लिए जल सुरक्षा सुनिश्चित करें।
2. भारत के सभी राजनीतिक दल अपने घोषणापत्रों में न्यायसंगत, टिकाऊ और सर्वसमावेशी जल सुरक्षा को प्राथमिकता दें। जल-सुरक्षित भारत ही शांति, समृद्धि और प्राकृतिक पुनर्जनन का आधार बनेगा।
3. भारत अपने ज्ञान, अध्यात्म और पंचमहाभूतों पर आधारित प्राकृतिक पुनर्जनन के माध्यम से आत्मनिर्भर बनकर विश्व का मार्गदर्शन कर सकता है।
4. हम सभी नागरिकों और सरकारों से आग्रह करते हैं कि जल को जीवन मानते हुए उसके पुनर्जीवन, समुदाय संचालित जल संरक्षण और प्रकृति-केंद्रित अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दें।

हम चंबल के लोगों ने प्रकृति और पानी का सम्मान कर **"जियो और जीने दो"** की संस्कृति विकसित की है। इसी ने हमें आत्मनिर्भर, मजबूत और समृद्ध बनाया है। आइए, हम सब मिलकर जल संरक्षण के माध्यम से शांति निर्माण का अभियान आगे बढ़ाएँ। इस दिशा में हम अपना अनुभव, सहयोग और प्रतिबद्धता प्रदान करने के लिए सदैव तत्पर हैं।

यह घोषणा-पत्र जल एवं शांति लोक सम्मेलन के प्रतिभागियों द्वारा समर्थित एवं अंगीकृत है।

7.
बमाया नदी- इतिहास, भूगोल एंव नदी तंत्र

7.1 बमाया नदी का इतिहास

बमाया नदी सरमथुरा धौलपुर राजस्थान की एक छोटी किन्तु अत्यंत महत्वपूर्ण नदी है। यह नदी मथारा, डोमपुरा और थानेकापुरा गांव की पहाड़ियों से निकलकर उस स्थान तक पहुँचती है जहाँ पार्वती और सैरनी नदियाँ मिलती हैं। वहाँ स्थित आंगई बाँध के पास यह पार्वती नदी में मिल जाती है। इसके जलागम क्षेत्र में मथारा, खोंटाबाई, पांवेश्वर, बिदरपुर, धौंध, बिरजा, सोनी, गुढ़ा, बटीकरा, मोरी पुरा, तरवा आदि गाँव आते हैं। यह नदी मुख्य रूप से सरमथुरा तहसील के गाँवों से होकर बहती है। यद्यपि यह कोई बड़ी नदी नहीं है, फिर भी इसका स्थानीय जीवन, संस्कृति और आस्था से गहरा संबंध है तथा यह तीन ग्राम पंचायतों के गाँवों को प्रभावित करती है।

चित्र 7.1: कल-कल अविरल बहती पुनर्जीवित बमाया नदी

यह नदी पाँच प्रमुख जलधाराओं से मिलकर बनी है। पहली जलधारा मथारा गाँव से निकलती है, दूसरी डोमपुरा और खोंटाबाई क्षेत्र से, तीसरी पांवेश्वर की पहाड़ियों से, चौथी बिदरपुर गाँव की पहाड़ियों से तथा पाँचवीं धौंध की पहाड़ियों से निकलती है। इन पाँचों जलधाराओं के संगम से बमाया नदी का निर्माण होता है। नदी का उद्गम क्षेत्र पहले अशांत माना जाता था और वहाँ के लोगों के बारे में कहा जाता था कि वे दूर-दूर तक अशांति फैलाते थे।

बमाया नदी केवल जलधारा ही नहीं, बल्कि अनेक धार्मिक और सांस्कृतिक स्थलों की वाहक भी है। बिरजा गाँव में हीरामन का प्रसिद्ध मंदिर स्थित है। मान्यता है कि सर्पदंश के रोगी दूर-दूर से यहाँ आते हैं और स्वस्थ होकर लौटते हैं। यहाँ का गोठिया सर्प के विष को खींचने का कार्य करता है। भाद्र मास में यहाँ एक माह तक विशाल मेला लगता है जिसमें लाखों श्रद्धालु दर्शन करने आते हैं।

मंदिर से लगभग तीन किलोमीटर दक्षिण दिशा में एक स्थान है जिसे डबरा कहा जाता है। मान्यता है कि यहाँ स्नान करने से खाज, खुजली तथा अन्य चर्म रोग दूर हो जाते हैं। प्राचीन समय में यह डबरा उस स्थान पर था जहाँ मथारा, डोमपुरा और खोंटाबाई की जलधाराएँ मिलती थीं, किन्तु अब पांवेश्वर से निकलने वाली जलधारा पर भी ऐसा स्थान विकसित कर लिया गया है। यहाँ बड़ी संख्या में श्रद्धालु स्नान करने आते हैं।

सोनी गाँव के ऊपर बाबू महाराज का मंदिर स्थित है। उन्हें शिवजी का अवतार माना जाता है। स्थानीय मान्यता के अनुसार बाबू महाराज बाँझ महिलाओं को संतान प्रदान करते हैं तथा कोढ़ रोगियों को स्वस्थ करते हैं। भादो शुक्ल पक्ष की द्वितीया को यहाँ विशाल मेला लगता है।

सोनी और बिरजा गाँवों के मध्य खिरकारी क्षेत्र में देवनारायण जी का मंदिर स्थित है। देवनारायण जी पश्चिमी राजस्थान और गुर्जर समाज के प्रसिद्ध लोकदेवता हैं। भादो सुदी छठ को यहाँ विशाल मेला आयोजित होता है और यह क्षेत्र आस्था का महत्वपूर्ण केंद्र माना जाता है।

मथारा गाँव से निकलने वाली जलधारा पर रणछोड़ का मंदिर स्थित है। मान्यता है कि यहाँ लोगों के बाय रोग का उपचार होता है। इस प्रकार बमाया नदी केवल एक भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि आस्था, भावनाओं और लोकविश्वासों से जुड़ी हुई नदी है।

इस नदी के नामकरण के संबंध में एक रोचक लोककथा प्रचलित है। कहा जाता है कि इसमें वर्षा का पानी अत्यंत तीव्र गति से आता है। नदी का उद्गम क्षेत्र खड़ी तथा पहले लगभग नंगी पहाड़ियों वाला था, इसलिए वर्षा का जल बिना किसी अवरोध के तेजी से बहकर नीचे आता था। स्थानीय भाषा में लोग कहते थे कि "बम आया", अर्थात् पानी बहुत जल्दी आ गया। यही शब्द आगे चलकर "बमाया" बन गया। वर्षा होने पर खेतों में काम कर रहे लोग एक-दूसरे को चेतावनी देते थे कि "बम आने वाला है, घर चलो।" इसी लोकप्रयोग से इस नदी का नाम बमाया नदी पड़ गया।

नदी का उद्गम क्षेत्र अरावली पर्वतमाला की पहाड़ियों में स्थित है। पहले ये पहाड़ियाँ लगभग नंगी थीं, किन्तु बाद में जल संरक्षण कार्यों के कारण यहाँ पुनः हरियाली विकसित हुई। छोटे-छोटे प्रयासों से नदी का पुनर्जीवन संभव हुआ। इसके परिणामस्वरूप वन्यजीवों और पक्षियों की संख्या में वृद्धि हुई है।

तरुण भारत संघ द्वारा ऑडी नरी की पोखर और कुंड की पोखर जैसी जल संरचनाओं का निर्माण किया गया, जिससे पहाड़ियों और नालों में वृक्षों की सघनता बढ़ी। अब यहाँ टाइगर, चीता तथा बाघ जैसे वन्यजीवों की गतिविधियाँ देखी जाती हैं। चरवाहे अपने पशुओं की सुरक्षा को लेकर चिंतित रहते हैं क्योंकि कई बार ये वन्यजीव मवेशियों का शिकार कर लेते हैं। जहाँ पहले पक्षी दिखाई नहीं देते थे, वहाँ अब अनेक प्रकार के पक्षी निवास करते हैं। नदी में बारहों महीने पानी रहने से घास की उपलब्धता बढ़ी है, जिससे पशु वहाँ आते हैं और वन्यजीवों को भी शिकार मिल जाता है। राहगीरों को आए दिन बाघ या चीता दिखाई दे जाते हैं तथा रात के समय उनकी आवाजें भी सुनाई देती हैं। इस प्रकार नदी का उद्गम क्षेत्र अब वन्यजीवन के लिए उपयुक्त आवास बन चुका है।

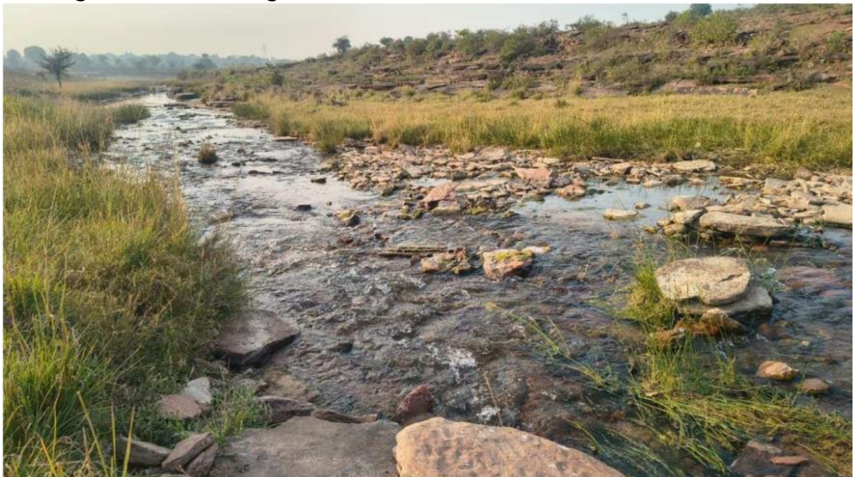

चित्र 7.2: कटरीकरा गाँव में बमाया नदी की बहती जलधारा

नदी के किनारे बसे गाँव कभी जल संकट के कारण उजड़ने की स्थिति में पहुँच गए थे। इसके अनेक कारण थे। पहला कारण आपसी लड़ाई-झगड़े और हिंसा थे। लोग एक-दूसरे की वस्तुएँ उठा लेते थे, जिससे विवाद बढ़ते थे और कई बार बंदूकें तक चलती थीं। परिणामस्वरूप अनेक परिवार गाँव छोड़कर चले गए। लगभग प्रत्येक गाँव से 30 से 50 परिवारों का विस्थापन हुआ।

दूसरा कारण सामाजिक परिस्थितियाँ थीं। कठिन परिस्थितियों के कारण विवाह कम होते थे। कई बार जबरन विवाह कराए जाते थे और पुलिस अथवा विरोधी पक्ष के भय से लोग गाँव छोड़ देते थे। तीसरा कारण खनन कार्य था। खानों में काम करने से लोगों को सिलिकोसिस जैसी फेफड़ों की बीमारी हो गई, जिसके कारण अनेक परिवार प्रभावित हुए और कई घरों पर ताले लग गए। इस प्रकार धीरे-धीरे जनसंख्या घटती गई और आज यहाँ अपेक्षाकृत कम लोग निवास करते हैं।

प्रश्न उठता है कि नदी पर संकट क्यों आया। मथारा गाँव के लगभग 80 वर्षीय निर्भय सिंह के अनुसार यह नदी पहले बारहों महीने बहती थी। उनके अनुसार मात्र 30 से 40 वर्षों में नदी सूखने की स्थिति में पहुँच गई। इसका मुख्य कारण खेती की बदलती पद्धतियाँ थीं। लोग धान और गन्ने जैसी अधिक पानी वाली फसलें उगाने लगे, जिससे जल की खपत बढ़ी। खेती और पशुपालन के विस्तार के लिए जंगलों की कटाई हुई। जनसंख्या बढ़ने से खेती का क्षेत्र भी बढ़ा और पेड़ों की संख्या घटने से वर्षा कम होने लगी। परिणामस्वरूप नदी का जलस्तर गिरता गया।

इसके अतिरिक्त नए तालाबों और पोखरों का निर्माण नहीं हुआ तथा पारंपरिक जल स्रोतों का रखरखाव भी नहीं किया गया। गाँवों में बढ़ते विवादों के कारण सामुदायिक संगठन कमजोर होते गए और लोगों ने नदी संरक्षण के कार्यों में रुचि लेना छोड़ दिया। बाद में बिजली आने से गहरे नलकूपों द्वारा धरती के भीतर का पानी हजार फीट तक खींच लिया गया। खनन कार्यों में होने वाली ब्लास्टिंग से धरती के भीतर दरारें बनती गईं, जिससे पानी और नीचे चला गया तथा उपयोग के योग्य नहीं रहा। इस प्रकार बमाया नदी एक बारहमासी नदी से बरसाती नदी बनकर रह गई।

नदी के सूखने से लोगों की आजीविका पर संकट आ गया। खेती और पशुपालन प्रभावित हुए। शिक्षा तथा आवागमन की सुविधाएँ भी सीमित थीं और क्षेत्र में केवल एक प्रमुख रास्ता ही बचा था। बाद में तरुण भारत संघ द्वारा जल उपलब्धता बढ़ाने के प्रयास किए गए, जिससे स्थिति में सुधार आया और क्षेत्र में पुनः जीवन का संचार होने लगा। बमाया नदी का इतिहास इस बात का उदाहरण है कि जल, जंगल, समाज और संस्कृति एक-दूसरे से कितने गहरे रूप से जुड़े हुए हैं।

7.2 बमाया नदी का भूगोल

राजस्थान के धौलपुर ज़िले की तहसील सरमथुरा में स्थित बमाया नदी की मुख्य धारा चम्बल नदी की रिज लाइन (समोच्च रेखा) पर स्थित खोटावारी व डोमपुरा की उत्तर दिशा से शुरू होकर मथारा गाँव के उत्तर दिशा में ही प्रवाहित होती हुई सोनी, सुनाकाई, खंजरपुरा के पास से होती हुई कांसपुरा व रहराई गाँवों के मध्य में आँगई बाँध में जाकर मिलती है। इसकी दूसरी धारा मानपुरा गाँव के उत्तर दिशा में ही प्रवाहित होती हुई सुनकाई गाँव पास भमाया नदी की उसी मुख्य धारा में जाकर मिल जाती है।

तीसरी धारा पावेश्वर गाँव के पश्चिम से शुरू होकर पश्चिम की तरफ ही प्रवाहित होकर सोनी गाँव के पास मुख्य धारा में मिल जाती है। चौथी धारा बिदरपुर गाँव पश्चिम की तरफ सोनी गाँव के उत्तर में मुख्य धारा में मिल जाती है। पाँचवीं एक और धारा गुर्ज गाँव के एक किलोमीटर पश्चिम से शुरू होकर पहले पश्चिम की तरफ प्रवाहित होती है और आगे दक्षिण की तरफ मुड़ कर मोरीपुरा गाँव के दक्षिण में भमाया नदी की मुख्य धारा में मिल जाती है।

ये सभी पाँचों धाराएँ संयुक्त होकर भमाया नदी के नाम से आँगई बाँध में मिल कर आगे पार्बती नदी के नाम से जानी जाती है, जो गम्भर नदी में मिल जाती है। गम्भीर नदी आगे बाणगंगा नदी में मिल कर उतंगन नदी नाम धारण करके उत्तर-प्रदेश के पिधोरा के पास रिहौली गांव के पास 26 डिग्री 59 मिनट 0.43 सैकण्ड उत्तरी अक्षांश व 78 डिग्री 26 मिनट 48.56 सैकण्ड पूर्वी देशान्तर पर यमुना नदी में मिल जाती है।

यमुना नदी-प्रयागराज में गंगा नदी में मिलती है और गंगा नदी अन्ततः समुद्र में जाकर सागर-स्वरूप हो जाती है। भमाया नदी का जलागम क्षेत्र विश्व भू-मानचित्र में 26 डिग्री 25 मिनट 30.16 सैकण्ड उत्तरी अक्षांश से 26 डिग्री 34 मिनट 53.90 सैकण्ड उत्तरी अक्षांश तथा 77 डिग्री 25 मिनट 08.29 सैकण्ड पूर्वी देशान्तर से 77 डिग्री 30 मिनट 27.21 सैकण्ड पूर्वी देशान्तर के बीच में स्थित है। इस नदी की घुमावदार अधिकतम लम्बाई 16 किलोमीटर तथा कुल जलागम क्षेत्र 55 वर्ग किलोमीटर है।

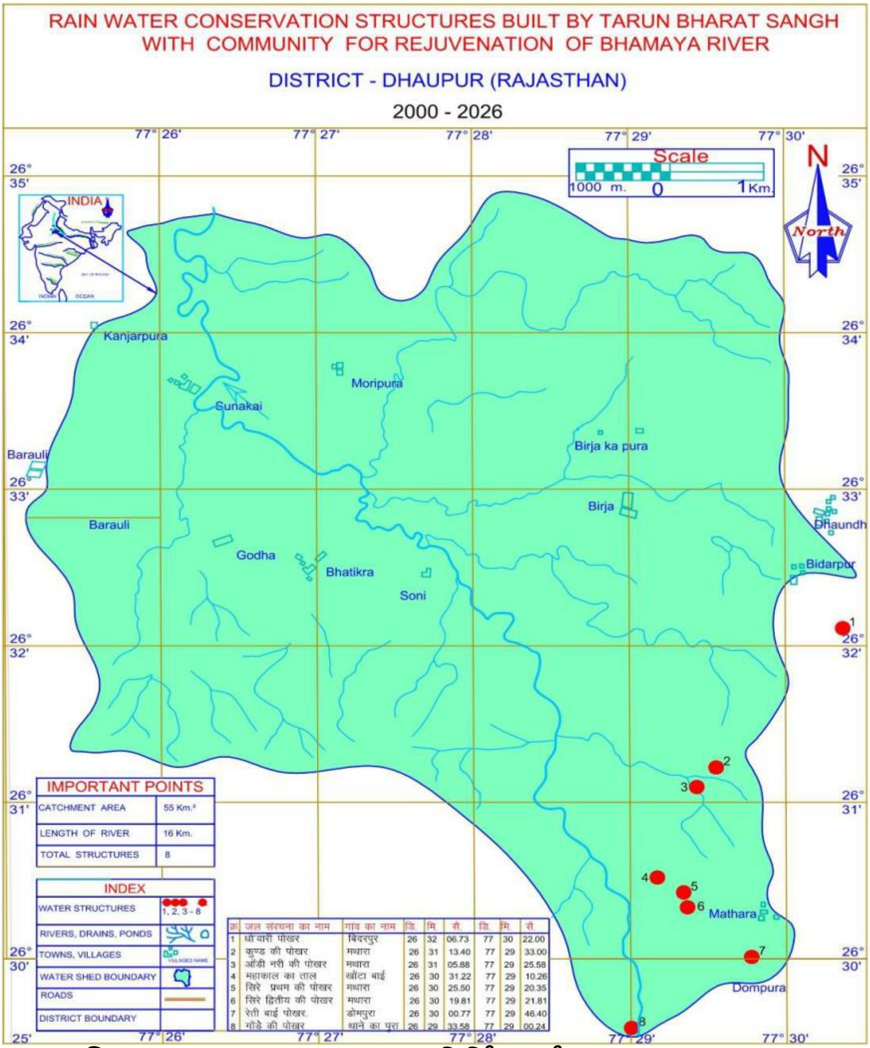

चित्र 7.3: तरुण भारत संघ द्वारा निर्मित वर्षा जल संरक्षण संरचना

7.2.1: थाने का पुरा

जल प्रज्ञ गांव थाने का पुरा, तहसील सरमथुरा, जिला धौलपुर की ग्राम पंचायत गोलारी का एक गाँव है। यहाँ से बमाया नदी की एक जलधारा निकलती है। यह गाँव जल संकट के कारण लंबे समय से उजड़ता रहा है। पानी की कमी के कारण यहाँ कई बार विवाद और संघर्ष हुए, जिनके परिणामस्वरूप लोगों को गाँव छोड़ना पड़ा। एक समय यह गाँव पूरे क्षेत्र का प्रमुख गाँव माना जाता था। क्षेत्र में कोई भी सामाजिक पहल प्रारम्भ होती थी तो उसकी शुरुआत इसी गाँव से होती थी।

चित्र 7.4: जल संवर्धन से परिपूर्ण जल प्रज्ञ गांव थाने की पुरा की पोखर

गाँव के मूला सिंह अत्यंत प्रभावशाली व्यक्ति थे। उन्हें शिकार खेलने का बहुत शौक था। दंगल सिंह बंदूक के बहुत अच्छे निशानेबाज माने जाते थे। वे बंदूक लेकर निकलते तो शेर जैसे जानवरों का भी शिकार कर लेते थे। इसी कारण आसपास के गाँवों के लोग इस गाँव का दबाव मानते थे।

धीरे-धीरे पानी की कमी बढ़ी तो धान और गन्ने जैसी फसलें समाप्त होने लगीं। इससे पशुपालन पर भी संकट आ गया। पशुओं का पलायन होने लगा और उनकी संख्या लगातार कम होती गई। ऐसी स्थिति में गाँव के लोगों ने पुलिस के साथ मिलकर डकैतों को पकड़वाने का कार्य शुरू किया। उस समय ऐसे लोगों को मुखबिर कहा जाता था। यही उनका आय का प्रमुख साधन बन गया और वे इसी से अपने परिवारों का पालन-पोषण करने लगे। उस समय मूला सिंह सहित छह भाई थे, जिनमें मूला सिंह सबसे बड़े थे।

मूला सिंह अत्यंत ताकतवर व्यक्ति थे। एक बार वे अपनी रिश्तेदारी से लौट रहे थे। रास्ते में उन्हें प्यास लगी। वहाँ एक कुआँ था, जिस पर चमड़े की बनी चड़स-बर्त लगी हुई थी। पहले समय में चमड़े की चड़स से कुएँ से पानी निकालकर खेती की जाती थी। नौ मुट्ठा की चड़स सबसे बड़ी मानी जाती थी। जब मूला सिंह उस कुएँ पर पहुँचे तो वहाँ एक पुरुष और एक महिला पहले से बैठे हुए थे। वे भी प्यासे थे। उन्होंने बताया कि यहाँ पानी निकालने का कोई दूसरा साधन नहीं है, केवल चड़स-बर्त से ही पानी निकाला जा सकता है। उन दोनों ने पहले बहुत प्रयास किया था, लेकिन वे उसे खींच नहीं सके थे।

मूला सिंह ने जब चड़स खींचने का प्रयास किया तो उस महिला ने उन्हें मना किया और कहा कि जब हम दोनों मिलकर इसे नहीं खींच सके तो आप अकेले कैसे खींच पाएँगे। लेकिन मूला सिंह ने कहा कि वे प्रयास करेंगे। उन्होंने अकेले ही चड़स को पानी से भरकर कुएँ से बाहर खींच लिया। इसके बाद उन्होंने उन दोनों को पानी पिलाया और स्वयं भी पानी पिया। जब मूला सिंह वहाँ से चलने लगे तो वह महिला उनके पीछे-पीछे चलने लगी। उसके पति ने पूछा कि वह कहाँ जा रही है। महिला ने उत्तर दिया कि अब वह मूला सिंह के साथ ही जाएगी। मूला सिंह ने उसे बहुत समझाने का प्रयास किया, लेकिन उसने उनकी एक नहीं मानी और उनके साथ आ गई। मूला सिंह पुलिस के मुखबिर थे और डकैतों की सूचना पुलिस को देते रहते थे। उस समय शंकर सिंह नाम का एक डकैत था, जिसके साथ लगभग पचास लोग रहते थे। एक बार वे मड़रायल क्षेत्र में डकैती डालकर एक बनिए के घर को लूटकर लौट रहे थे। तभी मूला सिंह ने उनकी सूचना पुलिस को दे दी। पुलिस रास्ते में छिपकर बैठ गई। जैसे ही डकैत उस रास्ते से निकले, पुलिस ने गोलीबारी शुरू कर दी। काफी देर तक गोलियाँ चलती रहीं और इस मुठभेड़ में चार-पाँच डकैत मारे गए।

इस घटना का बदला लेने के लिए एक दिन शंकर सिंह ने गाँव पर हमला कर दिया। उसने मूला सिंह और उनके भाइयों के परिवारों पर हमला किया तथा सभी भाइयों और उनके बच्चों को मार डाला। केवल दंगल सिंह और तीन-चार बच्चे ही जीवित बच सके। इस घटना के बाद गाँव लगभग बीस वर्षों तक उजड़ा रहा। जब तक शंकर सिंह की मृत्यु नहीं हुई, लोग वापस आकर बसने का साहस नहीं कर सके। उसके बाद ही धीरे-धीरे लोग लौटकर गाँव में बसने लगे।

चित्र 7.5: तरुण भारत संघ द्वारा निर्मित गोंड़े की पोखर में वर्षा जल संचयन से जैव विविधता

लगभग दस वर्ष पहले गाँव में पानी के बँटवारे को लेकर फिर विवाद उत्पन्न हो गया। कुछ लोगों ने वन विभाग की भूमि पर अवैध कब्ज़ा करके खेती कर रखी थी। आपसी शिकायतों के कारण वन विभाग ने कार्रवाई की और अवैध खेती को नष्ट कर दिया। खेतों की मेड़ें और दीवारें भी तोड़ दी गईं। इसके परिणामस्वरूप गाँव के लगभग पंद्रह परिवार पुनः उजड़कर बाहर चले गए।

उस समय गाँव में केवल एक कुआँ और एक हैंडपंप था। एक पोखर थी तथा लगभग 200 बीघा भूमि थी। रोजगार और पानी की कमी के कारण युवा लोग पलायन करने लगे। इसी दौरान तरुण भारत संघ गाँव में आया। संस्था ने गाँव में दो पोखरों का निर्माण कराया, जिनमें गोंड़े की पोखर और धुंधी की पोखर प्रमुख हैं।

इन दोनों पोखरों में पानी भरने से लगभग 50 बीघा भूमि पर खेती होने लगी। वर्तमान में गाँव में खरीफ के मौसम में धान और बाजरा की खेती होती है तथा रबी के मौसम में सरसों, गेहूँ और चना उगाया जाता है। इस समय गाँव में लगभग दस परिवार निवास कर रहे हैं। पानी की उपलब्धता बढ़ने से लोगों के पास गाय, भैंस, बकरी और भेड़ जैसे पशु भी हैं।

चित्र 7.6: पोखरसे भरकर गाँव की सम्पन्नता

यह जानकारी गाँव के मोहर सिंह ने दी। उन्होंने बताया कि वे पाँच भाई हैं और उन्होंने तरुण भारत संघ के सहयोग से गोंड़े की पोखर के निर्माण में भागीदारी की थी। उनके पास लगभग दस बीघा भूमि है। पहले उनकी जमीन पर कोई विशेष फसल नहीं होती थी और उनका गुजारा मुख्यतः पशुपालन से होता था। अब पानी

की उपलब्धता सुनिश्चित होने के बाद उन्हें लगभग 20 क्विंटल धान, 10 क्विंटल गेहूँ और 15 क्विंटल सरसों का उत्पादन प्राप्त होता है। उनके पास लगभग 50 भेड़ और 10 भैंस हैं, जिनसे उन्हें प्रतिवर्ष लगभग दो लाख रुपये का दुग्ध उत्पादन प्राप्त होता है। मोहर सिंह के अनुसार अब गाँव का उजड़ना रुक गया है। लोग संतोष और आनंद के साथ अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनके परिवार में कुल 12 सदस्य हैं और अब जल उपलब्धता ने गाँव के जीवन में स्थिरता और समृद्धि का नया आधार प्रदान किया है।

7.2.2: मथारा

मथारा गांव धौलपुर जिले का बहु प्रसिद्ध गांव है। इस गांव से दो जलधाराओं का निकास होता है। एक जलधारा बद्दह नदी में जाती है तो दूसरी जलधारा बमाया नदी की ओर जाती है। गांव छोटा है, लेकिन लोग अच्छे थे। इस गांव ने तरुण भारत संघ के साथ मिलकर धौलपुर क्षेत्र में जल साक्षरता की अलख जगाने का काम किया है तथा सभी बादियों को बन्दूक की जगह फावड़ा पकड़ाने का कार्य किया है। बद्दह, बमाया और खर्राबाई जैसी तीन नदियों के पुनर्जीवन में इसकी अहम भूमिका रही है। इनमें से बमाया नदी की मुख्य जलधारा मथारा गांव से निकलती है। गांव के लोगों ने इस नदी पर चार जल संरचनाओं का निर्माण किया है और बमाया नदी के पुनर्जीवन की शुरुआत की है। यह कार्य तरुण भारत संघ के ज्ञान एवं सहयोग से किया गया। इस नदी पर पहली जल संरचना सिरे प्रथम की पोखर, दूसरी सिरे द्वितीय की पोखर, तीसरी ओढ़ी नरी की पोखर तथा चौथी कुण्ड की पोखर है। ये चारों जल संरचनाएं बमाया नदी के पुनर्जीवन का कार्य कर रही हैं और इनमें बारहों माह पानी रहता है।

मथारा गांव लगभग 500 वर्ष पुराना गांव है। वर्तमान में गांव में गुर्जर समाज के लगभग 50 परिवार निवास करते हैं। गांव में तरुण भारत संघ द्वारा जनसहयोग से 10 जल संरचनाओं का निर्माण किया गया है, जिनमें 6 जल संरचनाएं बद्दह नदी पर तथा 4 जल संरचनाएं बमाया नदी पर हैं। गांव में लगभग 500 बीघा कृषि योग्य भूमि, गोचर भूमि तथा वन भूमि है। गांव सड़क मार्ग से जुड़ा हुआ है, जो बाड़ी और सरमथुरा को जोड़ता है। गांव में चार कुएं हैं तथा पशुधन की भी भरपूर संख्या है।

गांव के निर्भय सिंह ने बताया कि यह बहुत पुराना गांव है। पहले गांव ऊंची पहाड़ी पर बसा हुआ था, लेकिन पानी की कमी के कारण महिलाओं को पानी लाने में अत्यधिक परेशानी होती थी, इसलिए गांव को वहां से हटाकर वर्तमान स्थान पर बसाया गया। उन्होंने बताया कि पहले गांव में खेती और पशुधन की बहुत पैदावार होती थी तथा लोग आनंदपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे, लेकिन वर्षा कम होने लगी और लोगों ने अधिक पानी वाली फसलें उगानी शुरू कर दीं। गांव में एक पुराना

तालाब और तीन पोखर थीं, जो रखरखाव के अभाव में टूट गईं। परिणामस्वरूप जब गर्मियों में कुएं सूख जाते थे तो पीने का पानी भी उपलब्ध नहीं रहता था और लोगों को ऊंटों के माध्यम से लगभग 10 किलोमीटर दूर से पानी लाना पड़ता था। जंगलों का भी भारी विनाश हुआ। लोगों ने लकड़ी काटी और खनन कार्य किया, जिससे वन क्षेत्र नष्ट हो गए।

उन्होंने बताया कि पहले रोजगार के लिए बाहर जाने के साधन नहीं थे, इसलिए लोगों ने बन्दूक उठाने का रास्ता अपना लिया। गांव में ऐसा कोई परिवार शेष नहीं बचा था जिसने किसी न किसी रूप में बन्दूक न उठाई हो। इसके पीछे कई कारण थे। पहला कारण रोजी-रोटी का था। लोग चोरी और अन्य अवैध गतिविधियों में लिप्त हुए, जिनके कारण उन पर मुकदमे दर्ज हुए और पुलिस कार्रवाई शुरू हुई, जिससे उन्हें जंगलों में शरण लेनी पड़ी। दूसरा कारण विवाह संबंधों का टूटना था। जब गांव में विवाह होने बंद हो गए तो लोग जबरन लड़कियों को भगाकर लाने लगे, जिससे उन पर मुकदमे हुए और उन्हें फरार रहना पड़ा। तीसरा कारण यह था कि जब पुलिस अपराधियों को पकड़ने आती और वे नहीं मिलते, तो निर्दाेष एवं सज्जन लोगों को पकड़कर झूठे मुकदमों में फंसा दिया जाता था। मुकदमों से छुटकारा पाने में होने वाले खर्च की भरपाई के लिए वे भी अपराध के रास्ते पर चल पड़ते थे। चौथा कारण यह था कि जब अधिकांश लोग हथियारबंद हो गए तो सज्जनों का गांव में रहना कठिन हो गया। उन पर मारपीट, चंदा वसूली और डकैतों का दबाव रहता था। उनके व्यवसाय और रोजगार भी प्रभावित होते थे, जिससे उन्हें भी मजबूर होकर हथियार उठाने पड़ते थे।

चित्र 7.7: मथारा गाँव में पोखर के जल से समृद्धि का आगमन

निर्भय सिंह ने अपना उदाहरण देते हुए बताया कि उनका बेटा बच्चू सिंह दूध का व्यवसाय करता था, लेकिन सोने के गुर्जा गांव के एक डकैत ने उसका व्यवसाय बंद करा दिया और 10 लाख रुपये की मांग करने लगा। उन्होंने पुलिस के पास शिकायत की, लेकिन कोई सुनवाई नहीं हुई। अंततः उन्हें भी बन्दूक उठाने का रास्ता अपनाना पड़ा। उन्होंने बताया कि उनके गांव में एक समय 50-50 डकैतों के गिरोह सक्रिय रहते थे और उनके आतंक के कारण लगभग 50 परिवार गांव छोड़कर बसेड़ी के पास जाकर बस गए। यह स्थिति 50 से 100 वर्षों तक बनी रही। युवाओं की जान जाती रही और कोई भी व्यक्ति इस माहौल में हस्तक्षेप करने का साहस नहीं कर सकता था।

ऐसे समय में तरुण भारत संघ गांव में आया और जल संरक्षण का कार्य प्रारम्भ किया। निर्भय सिंह के अनुसार यह अत्यंत साहसिक कार्य था। उन्होंने स्वयं सबसे पहले मेढ़वारी पोखर बनाने का कार्य किया, जिसमें लगभग 20 करोड़ लीटर पानी आता है। उन्होंने बताया कि उनके पांच बेटे हैं और प्रत्येक के पास लगभग 10-10 बीघा जमीन है। सभी को सालाना लगभग 5 लाख रुपये की कृषि आय होती है। प्रत्येक के पास 10 से 12 भैंसें हैं और दूध बेचकर सालाना 2 से 3 लाख रुपये की अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। उन्होंने बताया कि उनके एक पोते ने एलएलबी की पढ़ाई की है और उसकी शादी कोटा जैसे शहर में हुई है। अब गांव में लोग अपनी बेटियों के रिश्ते देने लगे हैं और अशांति का माहौल स्वतः समाप्त होता जा रहा है। आज गांव में शांति और आनंद का वातावरण है।

चित्र 7.8: मथारा गाँव में पोखर का निर्माण कार्य प्रगति पर

गांव के दो भाई रामप्रकाश और गजराज ने बताया कि उनकी पारिवारिक स्थिति अत्यंत गंभीर थी। जब दोनों भाइयों का बंटवारा हुआ तो प्रत्येक के हिस्से में 20-20 बीघा जमीन आई, लेकिन पानी के अभाव में खेती नहीं हो पाती थी और खेत बंजर पड़े रहते थे। कुछ समय तक उन्होंने खनन का कार्य किया, लेकिन उसमें भी नुकसान हुआ और कर्ज बढ़ता गया। रोजगार का कोई स्थायी साधन नहीं था। इसी दौरान तरुण भारत संघ गांव में आया और जल संरक्षण की सीख दी। इसके बाद दोनों भाइयों ने तरुण भारत संघ के सहयोग से ओढ़ी नरी की पोखर का निर्माण कराया, जिसमें लगभग 15 करोड़ लीटर पानी संग्रहित होता है। उन्होंने बताया कि 40 बीघा भूमि की सिंचाई करने के बाद भी पानी बचा रहता है। एक बार पोखर भर जाने पर दो वर्षों तक फसल ली जा सकती है और नदी में बारहों माह पानी की धारा बहती रहती है। उन्होंने बताया कि आज उनके पास लगभग 100 क्विंटल सरसों, 200 क्विंटल गेहूं, 40 क्विंटल धान और 50 क्विंटल बाजरे का उत्पादन होता है। उनके पास 30 भैंसें हैं और वे प्रतिवर्ष 6 से 7 लाख रुपये का दूध बेचते हैं। उन्होंने चार ट्रैक्टर, पांच मोटरसाइकिल, एक जेसीबी और दो बोलेरो वाहन खरीदे हैं तथा अच्छा मकान भी बनाया है। अब उनका जीवन सुख और सम्मान के साथ गुजर रहा है। उनके बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं और परिवार का स्वास्थ्य भी बेहतर हुआ है।

चित्र 7.9: मथारा की समृद्धि को देखने आए कई देशों के प्रतिनिधि और उनका नेतृत्व करते जलपुरुष राजेन्द्र सिंह

गांव के रामवीर, धर्म सिंह और मलखान सिंह ने बताया कि पहले उनकी आय का मुख्य साधन पशुपालन था। पशुओं को आठ महीने तक दूर-दूर चराने के लिए ले जाना पड़ता था। कुछ समय तक उन्होंने चंबल नदी से अवैध बजरी का व्यापार भी किया, जिसमें पुलिस के साथ संघर्ष हुए, चोटें आईं और कई मुकदमे दर्ज हुए। इस कारण उन्हें कुछ समय तक गांव से बाहर भी रहना पड़ा। जीवन में शांति नहीं थी। बाद में तरुण भारत संघ की पहल पर कुण्ड की पोखर और सिरे प्रथम की पोखर

का निर्माण किया गया। आज इन दोनों पोखरों में लगभग 30 करोड़ लीटर पानी रहता है और इनके माध्यम से 100 बीघा भूमि पर खेती हो रही है। इसके साथ ही बारहों महीने पशुओं, जंगली जानवरों और अन्य जीव-जंतुओं के लिए पानी उपलब्ध रहता है। उन्होंने बताया कि अब प्रतिवर्ष 200 क्विंटल बाजरा, 300 क्विंटल गेहूं, 200 क्विंटल सरसों तथा 20 क्विंटल धान का उत्पादन होता है। उनके छह परिवारों में लगभग 80 सदस्य हैं तथा 60 भैंसें और 50 भेड़ें हैं। दूध बेचकर लगभग 10 लाख रुपये की आय होती है। आर्थिक स्थिति मजबूत होने पर उन्होंने दो जेसीबी, आठ ट्रैक्टर, दो बोलेरो और छह मोटरसाइकिलें खरीदी हैं। उनके अनुसार यह सब पानी का कमाल है। आज सभी परिवारों के पक्के मकान बन चुके हैं और जीवन में स्थिरता एवं समृद्धि आई है।

गांव के भूरा सिंह ने बताया कि उनका परिवार अत्यंत कमजोर स्थिति में था। आजीविका का कोई स्थायी साधन नहीं था और चारों भाई रोजगार की तलाश में भटकते रहते थे। पशुधन भी नहीं था, इसलिए जीवन संघर्षपूर्ण था। जब तरुण भारत संघ गांव में आया तो उसके सहयोग से उन्होंने सिरे द्वितीय की पोखर का निर्माण कराया। इस पोखर में अब बारहों महीने पानी रहता है। उनके पास 10 बीघा जमीन है और वे 20 बीघा भूमि बटाई पर लेकर खेती भी करते हैं। खेती से उन्हें प्रतिवर्ष लगभग 4 से 5 लाख रुपये की आय होती है। उनके पास अब आठ भैंसें हैं और वे दूध बेचने का कार्य करते हैं। उन्होंने अन्य सभी कार्य छोड़कर खेती को ही अपना मुख्य व्यवसाय बना लिया है और अब परिवार का भरण-पोषण अच्छे से हो रहा है।
भूरा सिंह ने आगे बताया कि उनके गलत कार्यों को छोड़कर समाज की मुख्यधारा में लौटने पर तरुण भारत संघ ने उन्हें 'विश्व शांति जल दूत' के रूप में सम्मानित किया। उनके अनुसार तरुण भारत संघ का यह कार्य केवल जल संरक्षण का नहीं, बल्कि देश और दुनिया में शांति स्थापित करने का कार्य है।

7.2.3: बिदरपुर
बिदरपुर गांव हमेशा विवादों से घिरा रहने वाला गांव है, जिसके कारण इसका नाम बिदरपुर पड़ा। यह गांव तेरहवीं शताब्दी के आसपास बसा हुआ माना जाता है। वर्तमान में इस गांव में गुर्जर जाति के 30 परिवार, ब्राह्मण जाति के 5 परिवार तथा अनुसूचित जाति के 2 परिवार निवास करते हैं। पहले यह गांव चारों ओर परकोटे के भीतर बसा हुआ था, लेकिन धीरे-धीरे पानी की कमी के कारण लोग उजड़ते चले गए। पानी के अभाव और डकैतों के आतंक के कारण अनुसूचित जाति के लगभग 50 परिवार पलायन कर गए।

गांव में पानी की कमी के कारण ब्राह्मण जाति के कुछ युवाओं ने भी डकैती का रास्ता अपना लिया और कुछ युवा पुलिस मुठभेड़ में मारे गए। गांव के विजय सिंह

द्वारा बताई गई कहानी के अनुसार रामविलास के परिवार में आर्थिक तंगी के कारण उसने डकैती का रास्ता चुना और बड़े लूटपाट करने लगा। बाद में उसके भाई रामदास और जगदीश भी डकैत बन गए और गांव में आतंक फैलाया। एक घटना में रामविलास ने भेड़ चरवाहों से फिरौती मांगी, जिसके बाद पुलिस ने घेराबंदी की। मुठभेड़ में उसके साथियों ने भागने की कोशिश की, लेकिन अंत में रामविलास पुलिस की गोली से मारा गया। इसके बाद उसके भाई रामदास और जगदीश ने भी हिंसक घटनाएं जारी रखीं और ग्रामीणों को नुकसान पहुंचाया।

चित्र 7.10: तरुण भारत संघ द्वारा निर्मित पोखर के पास कपड़े धोती महिला से बातचीत करते जलपुरुष राजेन्द्र सिंह एवं रमेश शर्मा

गांव में पीने के पानी का केवल एक कुआं था तथा एक रियासतकालीन तालाब भी था, जो देखरेख के अभाव में टूट गया। इससे खेती लगभग बंद हो गई। लगभग 300 बीघा जमीन होने के बावजूद पानी की कमी के कारण लोग खेती नहीं कर पाते थे। लोग खनन और अन्य कार्यों में लगे, लेकिन डकैतों के कारण वह काम भी रुक गया और वे चंदा वसूली करने लगे।

गांव से जुड़ी एक ऐतिहासिक कथा के अनुसार यहां बिहारी सिंह नाम का एक किसान था। एक समय सम्राट अकबर शिकार के लिए इस क्षेत्र में आए और पानी की तलाश में उस किसान के पास पहुंचे। किसान ने उन्हें पानी पिलाया और बाजरे की रोटी, राबड़ी, गुड़ आदि का कलेवा कराया। इससे प्रसन्न होकर अकबर ने उसे वरदान मांगने को कहा। किसान ने गांव में पानी के लिए कुआं खुदवाने और पशुओं की सुरक्षा के लिए गांव के चारों ओर परकोटा बनवाने की मांग की, जिसे अकबर ने पूरा किया। यह कुआं और परकोटा आज भी मौजूद बताए जाते हैं।

समय बीतने के बाद वही किसान अपने परिवार की आवश्यकता के लिए अकबर से मिलने आगरा गया। वहां बादशाह ने उसका सम्मान किया, स्नान और भोजन की व्यवस्था करवाई। किसान ने बाद में घर लौटकर बताया कि बादशाह भी ईश्वर की आराधना करता है। उसने यह निश्चय किया कि अब वह अपनी हर आवश्यकता ईश्वर से ही मांगेगा। आगे चलकर उसके खेतों में अच्छी पैदावार हुई और उसने अपनी पुत्री का विवाह धूमधाम से किया। इसके बाद गांव में फिर पानी का संकट बढ़ता गया और धीरे-धीरे गांव उजड़ता रहा। पिछले लगभग 100 वर्षों में अनेक परिवार पानी की कमी के कारण पलायन कर गए। बाद में तरुण भारत संघ की पहल से बिदरपुर गांव में जल संरक्षण के कार्य शुरू किए गए। धौ-वारे नारे की पोखर का निर्माण किया गया, जिससे गांव के कुओं और ट्यूबवेलों में पानी का स्तर बढ़ा। इससे कृषि पुनः शुरू हुई।

चित्र 7.11: रुण भारत संघ द्वारा निर्मित जल से लबालब भरी पोखरों का अवलोकन करते जलपुरुष राजेन्द्र सिंह एवं रमेश शर्मा

वर्तमान में गांव में लगभग 300 बीघा भूमि पर खेती हो रही है। यहां बाजरा, गेहूं, धान, सरसों, चना, हरा चारा और सब्जियों का उत्पादन हो रहा है। लगभग 1200 क्विंटल गेहूं, 500 क्विंटल सरसों, 800 क्विंटल बाजरा और धान का उत्पादन हो रहा है। प्रत्येक परिवार में लगभग 1 से 2 लाख रुपये तक का दूध उत्पादन भी हो रहा है। गांव अब आर्थिक रूप से मजबूत और आत्मनिर्भर बन रहा है।

पानी की उपलब्धता के कारण गांव के पुराने विवाद भी समाप्त हो गए हैं। पहले जो गांव बिखरा हुआ और विवादों से ग्रस्त था, वह अब एकजुट होकर रहने लगा है।

लोग मिलजुल कर अपने निर्णय लेने लगे हैं। तरुण भारत संघ की पहल ने बिदरपुर गांव को जलसमृद्ध, शांतिपूर्ण और समृद्ध गांव में बदल दिया है। आज गांव सुख, शांति और समृद्धि के साथ जीवन व्यतीत कर रहा है।

7.2.4 बिरजा

बिरजा गांव एक बहुत प्राचीन गांव है। यह चारों ओर पहाड़ियों से घिरा हुआ है और बीच में समतल व कृषि योग्य भूमि है। गांव के तीन ओर से तीन जलधाराएं गुजरती हैं, जो आगे जाकर बमाया नदी से मिलती हैं। बिरजा गांव में लगभग 300 परिवार रहते हैं और सभी जातियों के लोग यहां निवास करते हैं। इसलिए यह गांव लंबे समय तक एक स्वावलंबी गांव के रूप में जाना जाता रहा है। स्वावलंबी गांव उसे कहा जाता है जहां लोग अपने खाद-बीज का स्वयं प्रबंध करते हैं, निर्णय स्वयं लेते हैं और किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रहते। इस गांव को स्वावलंबी इसलिए कहा गया क्योंकि यहां सभी जातियों के लोग रहते थे, जिससे आपसी सहयोग से गांव के भीतर ही रोजगार मिल जाता था और लोग एक-दूसरे पर निर्भर रहते थे।

चित्र 7.12: बिरजा गांव का पोखर पूरे गाँव की समृद्धि का आधार है—सामुदायिक प्रबंधन का एक अद्भुत उदाहरण

कहा जाता है कि गांव का नाम बिरजा इसलिए पड़ा क्योंकि यह ब्रज की तरह साधन-संपन्न था। यहां पानी की अच्छी व्यवस्था थी जिससे खेती बहुत अच्छी होती थी। अच्छी खेती के कारण पशुपालन भी बहुत अच्छा था। सभी लोगों की भाषा मधुर थी और आपसी एकता, प्रेम और सौहार्द बहुत मजबूत था। गांव में बहुत बड़ा संगठन था, जहां एक व्यक्ति कुछ कहता तो सभी उसका समर्थन करते थे। बिरजा

गांव में हीरामन लोक देवता का मंदिर है। भादो मास में यहां पूरे महीने लक्खी मेला लगता है। यह देवता सर्पदंश से पीड़ित मनुष्यों को ठीक करने के लिए प्रसिद्ध है। दूर-दूर से लोग यहां दर्शन और आस्था के लिए आते हैं।

यहां बमाया नदी भी है। नदी के पास एक स्थान है जिसे डबरा कहा जाता है। मान्यता है कि हीरामन यहां गाय चराते थे और उसी दौरान इस नदी के एक गहरे स्थान में स्नान करते थे। आज भी उस स्थान को डबरा कहा जाता है और यह बहुत प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि वहां स्नान करने से चर्म रोग ठीक हो जाते हैं। पूरे वर्ष यहां यात्री स्नान करने आते रहते हैं और हजारों की संख्या में लोग इस स्थान पर आते हैं।

बिरजा गांव में लगभग 700 बीघा जमीन है और दर्जनों कुएं हैं। जब बमाया नदी पुनर्जीवित हुई तो सूखे कुओं में भी फिर से पानी आ गया। इस गांव की कहानी बहुत अनोखी रही है। यह गांव पहले साधन-संपन्न था, लेकिन इसकी भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि यह बमाया नदी की तीन जलधाराओं के बीच बसा हुआ है। एक जलधारा पावेश्वर गांव की पहाड़ियों से, दूसरी बिदरपुर गांव की पहाड़ियों से और तीसरी धौध गांव की पहाड़ियों से निकलती है। ये तीनों जलधाराएं यहीं आकर मिलती हैं।

चित्र 7.13: बिरजा गांव की खेतों में लहलहाती सरसों की फसल

आज से लगभग 100 वर्ष पहले यहां अच्छी खेती, अच्छा पानी और पशुधन की समृद्धि थी, लेकिन धीरे-धीरे गांव में जुआ खेलने और शराब पीने की आदत बढ़ने लगी। लोगों ने काम करना छोड़ दिया। साथ ही बिना प्रबंधन के जलधाराएं सूख गईं। ऊपर के गांवों में जल संरक्षण का ध्यान नहीं रखा गया और बड़े पैमाने पर खनन कार्य हुआ, जिससे पेड़-पौधे समाप्त हो गए। वर्षा तो होती थी, लेकिन जलधाराओं में पानी नहीं आता था, जिससे गांव में पानी की भारी कमी हो गई।

इसके बाद लोग पत्थर तोड़ने यानी खनन कार्य में लग गए और युवा वर्ग में शराब व जुए की लत बढ़ गई। दूर-दूर से लोग जुआ खेलने आने लगे, यहां तक कि डकैत भी आने लगे। जब गांव पूरी तरह बर्बाद हो गया तो युवाओं ने गलत रास्ते अपनाने शुरू कर दिए और चोरी व डकैती जैसी घटनाएं बढ़ गईं। जो गांव कभी ब्रज जैसा संगठित और समृद्ध था, उसका संगठन टूट गया। आपसी झगड़े बढ़ने लगे और रोज पंचायतें होने लगीं। संघर्षों में कई युवाओं की मृत्यु भी हुई और गांव उजड़ने लगा। बहुत से परिवार पलायन कर गए।

बाद में तरुण भारत संघ द्वारा तीनों जलधाराओं पर कार्य किया गया, जिससे जलधाराएं फिर से बहने लगीं और बमाया नदी वर्षभर बहने लगी। सूखे कुओं में भी पानी वापस आ गया। इसके बाद गांव फिर से खेती की ओर लौट आया। आसपास के गांवों जैसे मथारा, पावेश्वर, बिदरपुर आदि की खेती और पशुधन को देखकर लोगों ने फिर से खेती अपनाई। तरुण भारत संघ द्वारा बेहतर खेती के लिए पाइप और फव्वारे किसानों को वितरित किए गए, जिससे खेती में सुधार हुआ।

गरीब परिवारों की आजीविका के लिए बकरी किट भी दी गई, जिसमें एक दूध देने वाली बकरी और उसके बच्चे शामिल थे। इससे गरीब परिवारों को आय का साधन मिला। अब गांव फिर से गलत आदतों को छोड़कर खेती की ओर बढ़ चुका है। यहां रबी, खरीफ और जायद तीनों फसलें ली जाती हैं। सब्जियों की खेती भी बड़े पैमाने पर हो रही है। यूपी की ओर से आने वाले लोग भी यहां खेत किराए पर लेकर सब्जी की खेती कर रहे हैं और ग्रीन हाउस तथा नेट हाउस का उपयोग कर रहे हैं। एक बीघा खेत का किराया लगभग एक से दो लाख रुपये प्रति वर्ष तक लिया जाता है।

अब गांव में उच्च माध्यमिक विद्यालय भी है और सभी बच्चे, विशेषकर बच्चियां, विद्यालय जाती हैं। पशुधन भी बहुत अच्छा हो गया है। यह पूरी जानकारी गांव के पूरन सिंह द्वारा दी गई है। उन्होंने बताया कि अब गांव सुख, शांति और समृद्धि की ओर बढ़ रहा है। साथ ही गांव से आगई थाना तक, जो जयपुर-धौलपुर हाईवे पर आता है, वहां तक पक्की सड़क बन चुकी है।

7.2.5: पावेश्वर

पावेश्वर गांव बमाया नदी की एक जलधारा से जुड़ा हुआ गांव है, जो गांव की पहाड़ियों से निकलती है। यहां लगभग 20 परिवार निवास करते हैं। यह गांव टापू पर बसा हुआ है, जिसके एक तरफ से बमाया नदी की ओर पानी जाता है और दूसरी तरफ बद्दह नदी की ओर जल प्रवाहित होता है। गांव का भौगोलिक स्वरूप ऐसा है कि यह चारों ओर से जल प्रवाह और पहाड़ियों से घिरा हुआ क्षेत्र है।

पहले यह गांव गलत लोगों की शरण स्थली के रूप में जाना जाता था, क्योंकि यहां आने-जाने का केवल एक ही रास्ता था। उस रास्ते पर लोग पहरा देते थे, फिर भी गांव में गलत लोगों का आना-जाना बना रहता था। पानी की कमी के कारण लोगों ने खनन कार्य शुरू किया, फिर लकड़ी बेचने का काम किया और धीरे-धीरे जुआ खेलने तथा खिलाने का काम भी बढ़ गया। इस कारण गांव में बाहरी गलत तत्वों का प्रभाव बढ़ता गया। कई लोग जुए में हारकर कर्ज में डूब गए और कुछ ने गलत रास्ता अपना लिया। पुलिस कई बार यहां कार्रवाई करती थी और लोग जेल भी जाते थे। जीवन अस्थिर और संघर्षपूर्ण हो गया था।

तरुण भारत संघ के आने के बाद गांव की स्थिति बदलनी शुरू हुई। संगठन के सहयोग से लोगों ने तालाब (तलैया का ताल) बनाने का काम शुरू किया। तालाब निर्माण में कई कठिनाइयाँ आईं, आपसी विवाद भी हुए और कई बार काम बंद भी हुआ, लेकिन अंततः समझाइश के बाद कार्य पूरा किया गया। जब तालाब बना और उसमें पानी भरने लगा, तो गांव का जीवन बदलने लगा।

चित्र 7.14: पावेश्वर गांव में लहलहाती सरसों की फसलों के बीच खुशहाल किसान

तरुण भारत संघ ने किसानों को पाइप और फव्वारे उपलब्ध कराए, जिससे सिंचाई आसान हो गई। समय, श्रम और पैसे की बचत होने लगी और लोग फिर से खेती की ओर लौटने लगे। पहले जहां केवल लगभग 50 बीघा भूमि पर बरसाती खेती होती थी, अब लगभग 250 बीघा भूमि पर खेती होने लगी है। बंजर जमीन भी उपयोग में आने लगी। पशुपालन भी बढ़ा और लोगों ने कच्चे मकानों की जगह पक्के मकान बनाना शुरू कर दिया।

गांव के राजेंद्र सिंह के अनुसार, पहले यह गांव पानी की कमी के कारण अत्यंत गरीब और संघर्षपूर्ण था। आपसी विवाद और लड़ाई-झगड़े आम थे। पंचायत द्वारा दो पोखर बनाने की योजना बनाई गई थी, लेकिन घटिया निर्माण के कारण वे सफल नहीं हो पाए। नरेगा के तहत आए बजट का भी सही उपयोग नहीं हुआ। उस समय गांव में अव्यवस्था और अस्थिरता का माहौल था।

राजेंद्र सिंह ने यह भी बताया कि उनका जीवन भी उस समय गलत गतिविधियों से जुड़ा हुआ था, जुआ खिलाना, पुलिस से बचकर भागना, और कठिन परिस्थितियों में जीवन चलाना। लेकिन बाद में तरुण भारत संघ के संपर्क में आने के बाद उन्होंने जल संरक्षण के कार्यों में भाग लेना शुरू किया। सबसे पहले उनके घर पर जल संवाद बैठक हुई, जिसमें उन्होंने जुआ खेलते हुए भी लोगों को जल संरक्षण की बात सुनने के लिए प्रेरित किया। इसके बाद उन्होंने किसान सम्मेलनों और शैक्षणिक भ्रमणों में भाग लिया और गांव में तालाब निर्माण के लिए लोगों को तैयार किया। तालाब निर्माण में गांव वालों ने लगभग एक-तिहाई राशि भी स्वयं जुटाई। एक महीने की मेहनत और कई विवादों के बाद तालाब पूरा हुआ, जिसमें लगभग 20 करोड़ लीटर पानी संग्रहित होता है।

तालाब बनने के बाद पहली ही बारिश में खेती शुरू हुई। बाजरा, गेहूं और सरसों की फसलें ली गईं। आधा बीघा भूमि पर हरे चारे की खेती भी की गई। पहले वर्ष में ही उत्पादन काफी अच्छा हुआकृबाजरा, गेहूं और सरसों का उल्लेखनीय उत्पादन प्राप्त हुआ। दूध उत्पादन भी बढ़ा, जिसमें दो भैंसों से लगभग 3000 लीटर दूध वार्षिक उत्पादन हुआ, जिसकी बिक्री से अच्छी आय हुई।

इसके बाद गांव के सभी लोगों ने बंजर भूमि को भी उपजाऊ बना लिया। अब लगभग सभी लोग खेती करने लगे हैं और ट्रैक्टर व आधुनिक साधनों का उपयोग करते हैं। साथ ही अन्य व्यवसाय भी करते हैं। गांव में आर्थिक स्थिति मजबूत हुई और लोगों की जीवनशैली बदल गई। राजेंद्र ने यह भी बताया कि उन्होंने अपनी बहू को पंचायत समिति का चुनाव लड़वाया, जिसमें वह विजयी हुई। अब वे पंचायत स्तर पर जल संरक्षण की बात रखते हैं और प्रति वर्ष जल संरक्षण के लिए बजट भी

स्वीकृत होता है।अंत में उन्होंने कहा कि "जल ही जीवन है" और जल संरक्षण सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। इससे ही नदियां जीवित रहेंगी और समाज में समृद्धि आएगी।

7.2.6: धौंध

बमाया नदी पर धौंध एक ऐसा गांव है जिसने आज तक पानी का काम बमाया नदी में जाने वाली जलधारा पर नहीं किया है, यहां से निकलने वाली जलधारा आज भी मात्र बरसाती जलधारा है। गांव बड़ा है और इसमें पांच छोटी-छोटी ढाणियां हैं। यह गांव आज से लगभग 500 वर्ष पहले ढाणियों द्वारा बसाने का काम किया गया था, इसलिए इसे धौंध गांव कहा जाता है। गांव में वर्तमान में लगभग ढाई सौ परिवार रहते हैं और इसके अंदर 700 बीघा जमीन है। यह ग्राम पंचायत मुख्यालय भी है, लेकिन इनमें से केवल 200 बीघा जमीन पर ही खेती की जाती है। पूरे डांग क्षेत्र में यहां सबसे कम पशुधन पाया जाता है।

गांव में प्राचीन काल का एक सुंदर तालाब है, जिसे धौलपुर के राजा ने बनवाया था। यह तालाब गांव के बीच में स्थित है, लेकिन आज जर्जर अवस्था में पड़ा हुआ है। लोगों का आज भी जल संरक्षण कार्यों के प्रति कोई विशेष ध्यान नहीं है। गांव के लोगों ने अपने खेतों और पहाड़ियों को खनन कार्य करके उजाड़ दिया है, जिससे खेती योग्य भूमि भी बहुत कम रह गई है। अधिकांश लोग इस समय खनन कार्य को ही अपनी आजीविका का स्रोत बनाए हुए हैं, और इसी कारण आए दिन प्रशासन और ग्रामीणों के बीच झगड़े होते रहते हैं।

आज भी गांव में संगठन की कमी है, इसलिए गांव विकास की दिशा में आगे नहीं बढ़ पा रहा है। गांव में कई बार सरपंच चुना गया, लेकिन किसी ने भी जल संरक्षण का कार्य नहीं किया। सरपंच के साथ तरुण भारत संघ के कार्यकर्ताओं द्वारा कई बार बैठकें की गईं, लेकिन वे केवल सहमति देते रहे और काम आगे नहीं बढ़ा। खेती में कम उत्पादन होने के कारण लोग खनन से ही अपनी जीविका चलाते हैं और उसी से घर, कपड़ा और अन्य खर्च पूरे करते हैं।

गांव की पानी की स्थिति अत्यंत गंभीर है। इस समय तरुण भारत संघ ने गरीब परिवारों को बकरी किट देने का काम किया है, जो उन परिवारों के लिए है जिनके पास न तो खेत हैं और न ही पशु, और जो मजदूरी पर निर्भर हैं। यह योजना उनके लिए वरदान साबित हुई है, क्योंकि इससे बच्चों में हो रहे कुपोषण के लिए दूध का प्रबंध हुआ है।

कुछ ग्रामीणों के साथ तरुण भारत संघ द्वारा पाइप और फव्वारे भी वितरित किए गए हैं, जिससे कुछ लोग अब खेती करने लगे हैं। ग्रामीण राजेंद्र सिंह ने बताया कि

गांव में पानी की भारी कमी के कारण खेती नहीं हो पाती और पशुधन रखना भी कठिन है, इसलिए लोग खनन कार्य करते हैं।

चित्र 7.15: धौंध गाँव में जल संवाद बैठक करते तरुण भारत संघ के कार्यकर्ता

पहले इस खनन कार्य को डकैत भी रोकते थे और चंदा वसूली करते थे, लेकिन तरुण भारत संघ ने आसपास के गांवों में जल संरक्षण का काम किया, जिससे अब कई डकैत भी मुख्यधारा में आकर खेती और पशुपालन करने लगे हैं। इससे नए लोगों का डकैत बनना भी बंद हो गया है। अब काम मिलने के कारण लोग गलत रास्ता नहीं अपना रहे हैं।

पहले जब काम नहीं था और आर्थिक स्थिति कमजोर थी, तो भूखे व्यक्ति कई बार लड़ाई-झगड़े और अपराध की ओर चले जाते थे। लेकिन अब लोग अपनी खेती और पशुपालन में व्यस्त हैं। हालांकि अब एक नई समस्या यह है कि खनन कार्य को प्रशासन द्वारा बंद किया जा रहा है।

इसी कारण कुछ लोगों ने बसेड़ी के पास भारली गांव में, जहां आगई बांध की नहर जाती है, लगभग 7 बीघा जमीन खरीद ली है और वहां खेती करते हैं। वहीं से अनाज की आवश्यकता पूरी होती है। एलम सिंह ने बताया कि पहले जब खेती और पशुपालन नहीं थे, तो उन्होंने खनन कार्य शुरू किया। उससे कमाए पैसे से उन्होंने एलएनटी मशीन खरीदी, जिसके लिए जमीन बैंक में गिरवी रखकर किस्तों पर ली गई।

वर्तमान में वे मध्य प्रदेश में जाकर काम करते हैं, क्योंकि यहां पहले डकैत रोकते थे और अब पुलिस व प्रशासन के कारण स्थानीय स्तर पर काम सीमित हो गया है। उसी कमाई से वे किस्तें भरते हैं और घर खर्च चलाते हैं।

ग्रामीण बंटी ने बताया कि पहले इस क्षेत्र में गुलुआ जैसे खूंखार डकैतों का आतंक था। लेकिन अब पानी की कमी और खनन पर रोक के कारण स्थिति बदल गई है। सरकार द्वारा चंबल क्षेत्र को घड़ियाल संरक्षण के लिए रिजर्व घोषित करने के कारण अवैध बजरी खनन भी बंद हो गया है।

चित्र 7.16: धौंध गाँव में शहरों से लौटकर खेती से जुड़े युवा

अब युवा लोग बाहर जाकर मार्बल उद्योग में काम करते हैं और वर्ष में 8 से 10 महीने मजदूरी करके अपना जीवन यापन करते हैं। कुछ लोगों ने ट्यूबवेल लगाए, लेकिन पानी नहीं निकलता क्योंकि गांव ऊंचाई पर और नदियों के उद्गम क्षेत्र में स्थित है।

हालांकि आसपास के गांवों में, जहां तरुण भारत संघ ने जल संरक्षण कार्य किए हैं, वहां पानी उपलब्ध है और नदियों में जल प्रवाह भी बना हुआ है। धौंध गांव में जल संरक्षण की संभावनाएं होते हुए भी संगठन की कमी के कारण स्थिति में सुधार नहीं हो पाया है, और यही कारण है कि यह गांव आज भी पानी की कमी और बेरोजगारी की गंभीर समस्या से जूझ रहा है।

7.2.7: सोनी

सोनी गांव बटीकरा ग्राम मुख्यालय से 15 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस गांव में गुर्जर जाति के लगभग 70 परिवार निवास करते हैं। यहां एक पहाड़ी है जिसे सोनी की खिरकारी कहा जाता है। इस पहाड़ी पर पांच परिवार रहते हैं। नदी के एक ओर सोनी गांव स्थित है, जब कि दूसरी ओर पहाड़ी पर सोनी की खिरकारी बसी हुई है। यहां देवनारायण भगवान तथा भैरव बाबा के मंदिर स्थित हैं। आज भी जब कोई महामारी या संकट आता है तो लोग इनकी उपासना करते हैं। यहां वर्ष में तीन बार मेला लगता है, जो भादो सुदी छठ-सात, माघ तथा वैशाख माह में आयोजित होता है।

चित्र 7.17: सोनी गांव साक्षरता संवाद करती महिलाएँ।

गांव के साथ जंगल सटा हुआ है। यहां के लोगों के पास खेती योग्य भूमि है तथा वे पशुपालन भी करते हैं। लगभग 70 वर्ष पूर्व सोनी गांव एक समृद्ध गांव माना जाता था। गांव के किनारे से एक नदी बहती थी, जो बारहों महीने जल से भरी रहती थी। यह एक स्वच्छ, शुद्ध और सदानीरा नदी थी। गांव के कुओं में भी ऊपर तक पानी उपलब्ध रहता था। अधिकांश लोग खेती और पशुपालन के माध्यम से अपना जीवनयापन करते थे।

समय के साथ बमाया नदी पर संकट आया। नदी पर अतिक्रमण, प्रदूषण और अत्यधिक दोहन का प्रभाव पड़ा, जिससे नदी सूखने लगी। इस गांव तक पहुंचने से पहले नदी लगभग 10 किलोमीटर का सफर तय करती है। नदी के ऊपरी क्षेत्र के गांवकृमथारा, डोमपुरा, खोंटाबाई और थाने का पूराकृजब जल संकट से प्रभावित हुए, तब वहां के लोगों ने जंगलों की कटाई शुरू कर दी। जंगल उजड़ने के कारण वर्षा की बूंदें सीधे नंगी पहाड़ियों पर गिरने लगीं। इससे पहाड़ियों की मिट्टी बहकर

नदी में आने लगी। चूंकि सोनी गांव के पास नदी का मार्ग अपेक्षाकृत समतल था, इसलिए मिट्टी यहीं जमा हो जाती थी। परिणामस्वरूप नदी का तल ऊपर उठ गया, जल धारण क्षमता कम हो गई और जमा हुई मिट्टी गाद का रूप लेने लगी। इससे नदी की पुनर्भरण क्षमता घट गई और धीरे-धीरे कुएं सूखने लगे। नदी सूखी, कुएं और ट्यूबवेल सूख गए, खेती संकट में आ गई और पशुपालन भी प्रभावित हुआ।

चित्र 7.18: सोनी गांव में पोखर निर्माण कार्य प्रगति पर

इन परिस्थितियों में गांव के लोगों ने खनन कार्य की ओर रुख किया। सोनी गांव से लगभग तीन किलोमीटर दूर बरौली गांव स्थित है। वहां दलजीत सिंह चीकू और बादल सिंह रावी नामक दो सरदार परिवारों के व्यक्ति पंजाब से आकर बसे थे। इस क्षेत्र में उनका काफी प्रभाव और दबदबा था। बताया जाता है कि कांग्रेस पार्टी की अध्यक्ष श्रीमती सोनिया गांधी के इटली से संबंध होने तथा दलजीत सिंह चीकू के भी इटली में विवाह होने के कारण उनके संबंध निकट माने जाते थे। इसी कारण दलजीत सिंह चीकू को बाड़ी विधानसभा क्षेत्र से कांग्रेस पार्टी का टिकट मिला और वे कई बार विधायक रहे। धौलपुर जिले की अधिकांश वैध और अवैध खदानों के ठेके भी उनके नियंत्रण में बताए जाते थे।

इसी प्रभाव के चलते गांव के लोगों ने भी खनन कार्य के ठेके लेना शुरू किया। एक-एक व्यक्ति के पास सैकड़ों मजदूर कार्य करने लगे। भभूती ठेकेदार, लज्जाराम ठेकेदार, दुलाराम ठेकेदार और धूप सिंह ठेकेदार जैसे नाम क्षेत्र में प्रसिद्ध होने लगे। खनन कार्य ने अनेक गरीब परिवारों को रोजगार दिया और लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। हालांकि खनन के कारण आसपास के गांवों के साथ विवाद और संघर्ष भी बढ़े। विशेष रूप से बिरजा गांव के लोगों के साथ लंबे समय तक संघर्ष

चलता रहा। कई बार मारपीट हुई, गोलियां चलीं और अनेक परिवार प्रभावित हुए। कुछ लोगों की हत्याएं भी हुईं।

इसी दौरान गांव के मवाइयों और हूनो परिवारों के कुछ लोग गांव छोड़कर चले गए। पानी की कमी के कारण खेती और पशुपालन पहले ही कमजोर हो चुके थे, इसलिए उन्होंने कुछ समय तक खदानों में काम किया। बाद में कुछ लोग दिन में खनन कार्य करते और रात में पशु चोरी जैसी गतिविधियों में शामिल हो गए। उन पर मुकदमे दर्ज हुए और कुछ समय के लिए वे डकैतों के रूप में भी जाने गए। अंततः वे क्षेत्र छोड़कर हिंडौन की ओर चले गए।

चित्र 7.19: सोनी गांव में तरुण भारत संघ द्वारा निर्मित पोखर पानी से सराबोर

जब गांव की स्थिति लगातार कमजोर होती गई और लोग पलायन करने लगे, तब तरुण भारत संघ ने बमाया नदी के जलागम क्षेत्र में जल संरक्षण का कार्य शुरू किया। मथारा, डोमपुरा, खोंटाबाई और थाने का पूरा जैसे ऊपरी क्षेत्रों में जल संरक्षण के प्रयास किए गए। इसके परिणामस्वरूप नदी पुनर्जीवित हुई और कुओं तथा ट्यूबवेलों में फिर से पानी आने लगा। इससे गांव के लोग पुनः खेती की ओर लौटे।

आज पूरा गांव खेती पर निर्भर है। कई बच्चे सरकारी नौकरियों में भी चयनित होने लगे हैं। गांव में लगभग 500 बीघा भूमि है। गांव के कुछ लोग बाहरी किसानों को लगभग दो लाख रुपये प्रति वर्ष पर खेती के लिए भूमि देते हैं तथा शेष भूमि पर स्वयं खेती करते हैं। गांव के लोगों ने अपने स्तर पर अभी व्यापक जल संरक्षण कार्य नहीं किया है, लेकिन नदी के ऊपरी क्षेत्र में हुए संरक्षण कार्यों का लाभ उन्हें मिल रहा है। नदी अब बारहों महीने बहने लगी है, जिससे सिंचाई के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध हो गया है।

गांव के निवासी मुसैया ने अपनी जीवन यात्रा का वर्णन करते हुए बताया कि जब गांव में पानी नहीं था, तब उन्होंने गाय पालन का कार्य शुरू किया। गायें जंगल में चरकर स्वयं लौट आती थीं, इसलिए उन्हें अतिरिक्त चारे की आवश्यकता कम पड़ती थी। वे दूर-दूर से गायें खरीदकर लाते, उनका दूध बेचते और इसी से परिवार का पालन-पोषण करते थे। धीरे-धीरे यह कार्य कम लाभकारी होने लगा, तब उन्होंने खनन कार्य अपनाया।

मुसैया ने बताया कि खनन कार्य के दौरान उनका परिवार बिरजा गांव के लोगों के साथ संघर्षों में उलझ गया। मारपीट हुई, गोलियां चलीं और लंबे समय तक उन्हें जंगलों में शरण लेनी पड़ी। उन्होंने यह भी बताया कि उस समय वे खनन कार्य रोकने, लोगों से विवाद करने और उनसे चंदा वसूलने जैसी गतिविधियों में भी शामिल रहे। इसी प्रकार उन्होंने अपने जीवन का कठिन दौर बिताया।

वर्तमान स्थिति के बारे में बताते हुए मुसैया कहते हैं कि नदी के पुनर्जीवित होने के बाद उन्होंने सभी अन्य कार्य छोड़कर खेती को अपनाया है। उनके पास 20 बीघा भूमि है। वे बताते हैं कि उनकी खेती से प्रतिवर्ष लगभग 45 से 50 क्विंटल बाजरा, 70 से 80 क्विंटल गेहूं तथा 20 से 30 क्विंटल सरसों का उत्पादन होता है। उनके पास 15 भैंसें हैं और वे प्रतिदिन लगभग 30 लीटर दूध बेचते हैं, जिससे लगभग 1200 रुपये प्रतिदिन की आय होती है। सभी खर्चों को निकालने के बाद उन्हें प्रति माह लगभग 30,000 रुपये की शुद्ध आय प्राप्त हो जाती है।

मुसैया के अनुसार अब उनका परिवार आपसी प्रेम और सहयोग के साथ जीवन व्यतीत कर रहा है। वे देसी खाद का उपयोग करके खेती करते हैं और मानते हैं कि नदी के पुनर्जीवन ने उनके गांव तथा उनके जीवन दोनों को नई दिशा दी है।

7.2.8: गुढा

गुढा गांव ग्राम पंचायत बटीकरा का गांव है। इसमें मीणा जाति के लगभग 150 परिवार रहते हैं। यह गांव सर मथुरा तहसील मुख्यालय से उत्तर-पूर्व दिशा में लगभग 15 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। सर मथुरा से धौलपुर जाने वाला नेशनल हाईवे ग्राम बरौली के पास से लगभग 3 किलोमीटर पूर्व की ओर स्थित है। इस गांव के पास से बमाया नदी गुजरती है, जिससे यहां की खेती होती है। गांव में लगभग 1000 बीघा भूमि पर खेती की जाती है।

गांव में पशुपालन भी प्रमुख रूप से किया जाता है, जिसमें गाय, भैंस, भेड़ और बकरियां रखी जाती हैं। यहां से दूध भी बेचा जाता है, जिसे दूधिया लगभग ₹40 प्रति

लीटर के हिसाब से घर से ही खरीदकर ले जाते हैं। गांव में कुएं और ट्यूबवेल भी हैं, और बमाया नदी जीवित होने के कारण जलस्तर भी अच्छा रहता है।

गांव के लाल सिंह मीणा के अनुसार यह गांव लगभग 400 वर्ष पुराना राजस्व गांव है। पहले बमाया नदी में 12 महीने पानी रहता था, जिससे खेती बहुत अच्छी होती थी। यहां गन्ने की खेती भी होती थी और उससे अच्छा गुड़ बनता था, इसी कारण इस गांव का नाम गुढा पड़ा। लेकिन बाद में अधिक पानी वाली फसलों की खेती, जंगलों की कटाई और कम वर्षा के कारण नदी सूख गई।

इसके बाद पानी की कमी से लगभग सौ परिवार मासलपुर और शेरनी नदी क्षेत्र की ओर पलायन कर गए, जहां उन्होंने कोरीपुरा के पास पाकरपुरा और महाराजपुरा जैसे गांव बसाए। कुछ लोग यहीं रह गए और अकाल के समय घास और बेर खाकर जीवन यापन किया। बाद में जब जनसंख्या कम हुई और जंगलों का संरक्षण हुआ तो वर्षा बढ़ी और बमाया नदी फिर से बहने लगी, जिससे खेती पुनः शुरू हो सकी।

चित्र 7.20: गुढा गांव में तरुण भारत संघ द्वारा पोखर निर्माण कार्य प्रगति पर

लाल सिंह मीणा ने बताया कि पिछले 100 से 50 वर्षों के बीच लोगों ने पानी के संरक्षण पर ध्यान नहीं दिया और गन्ने जैसी अधिक पानी वाली फसलें उगाईं। जल स्रोतों को बचाने और नए जल स्रोत बनाने का प्रयास नहीं हुआ, जिससे पानी की कमी बढ़ती गई। धीरे-धीरे खेती कम होने लगी और लोग पत्थर खनन की ओर मुड़ गए। इससे जमीन भी खराब होने लगी और नदी, कुएं व ट्यूबवेल सूखने लगे। कुछ समय तक लोग खनन से ही जीवन यापन करते रहे।

खनन कार्य को लेकर डकैतों का भी हस्तक्षेप रहता था, जो खदानें बंद कराते और मजदूरों से वसूली करते थे। इस कारण कई बार संघर्ष और गोलीबारी की घटनाएं भी हुईं, जिससे गांव अस्थिर स्थिति में पहुंच गया था।

इसी कठिन परिस्थिति में तरुण भारत संघ ने बमाया नदी के उद्गम क्षेत्र में जल संरक्षण कार्य शुरू किया। इसके बाद जल संरचनाओं में 12 महीने पानी रहने लगा। जंगलों का संरक्षण हुआ और भूजल स्तर बढ़ गया, जिससे नदी पुनः जीवित हो गई। नदी में झरनों की तरह पानी बहने लगा और खेती फिर से शुरू हो गई। इसके बाद लोगों ने खनन कार्य छोड़कर खेती को अपनाया।

वर्तमान में बमाया नदी के कारण गांव में लगभग 1000 बीघा भूमि पर खेती हो रही है, जबकि पहले केवल 150 परिवारों के पास लगभग 400 बीघा जमीन पर ही खेती होती थी। अब सभी लोगों के पास पर्याप्त खेती उपलब्ध है।

लाल सिंह मीणा ने बताया कि पहले यहां मीणा समाज में बच्चों की शादी नहीं होने जैसी समस्याएं थीं, जिससे युवाओं में भटकाव और गलत गतिविधियां बढ़ जाती थीं। लेकिन अब सभी लोग खेती और पढ़ाई में व्यस्त हैं, जिससे फालतू घूमना और आवारागर्दी समाप्त हो गई है।

अपने व्यक्तिगत अनुभव बताते हुए उन्होंने कहा कि उनका परिवार पहले बहुत गरीब था और केवल 20 बीघा जमीन पर निर्भर था, जिसमें से केवल 5 बीघा पर खेती होती थी। वे दो बीघा गेहूं और तीन बीघा सरसों की खेती करते थे। सिंचाई के लिए बमाया नदी या कुएं का उपयोग किया जाता था, और डीजल पंप से सीमित पानी दिया जाता था। उत्पादन बहुत कम थाकृगेहूं लगभग 10 क्विंटल प्रति बीघा और सरसों 3द्द4 क्विंटल प्रति बीघा होती थी। पशुपालन भी सीमित था, केवल एक-दो गाय या भैंस रखी जाती थीं, जिनसे घर का ही दूध मिल पाता था। खनन कार्य से साल में लगभग 40 से 50 हजार रुपये की आय होती थी।

तरुण भारत संघ के जल संरक्षण कार्यों के बाद बमाया नदी पुनर्जीवित हुई और अब उनकी 20 बीघा जमीन पूरी तरह से खेती में उपयोग हो रही है। वे अब 8 बीघा में गेहूं, 1 बीघा में हरा चारा, 14 बीघा में सब्जी की खेती और बाकी में सरसों की खेती करते हैं। सब्जी से उन्हें लगभग एक लाख रुपये तक की अतिरिक्त आय हो जाती है।

अब उनके पास 20 से 25 क्विंटल बाजरा, 100 से 125 क्विंटल गेहूं, 50 से 55 क्विंटल सरसों और पर्याप्त हरा चारा उत्पादन होता है। उन्होंने 10 भैंसें रखी हैं, जिनसे

प्रतिदिन 18 से 20 लीटर दूध उत्पादन होता है, जिसे ₹40 प्रति लीटर के हिसाब से दूधिया घर से ही ले जाते हैं।

उन्होंने दो जेसीबी मशीनें भी खरीदी हैं जो किसानों के काम आती हैं। उन्होंने पक्का मकान भी बना लिया है। उनके अनुसार यह पूरा बदलाव बमाया नदी के पुनर्जीवन के कारण हुआ है। अब पूरे गांव में लगभग 1000 बीघा भूमि पर खेती हो रही है, सभी के पास पशुधन है और गांव में शांति का माहौल है। युवा शिक्षा की ओर बढ़ रहे हैं और कई बच्चे सरकारी नौकरी में भी चयनित हुए हैं।

गांव के लोग तरुण भारत संघ के इस कार्य के लिए आभारी हैं। उनका मानना है कि पानी एक ऐसा संसाधन है जो सभी के काम आता है। ऊपर जलग्रहण क्षेत्र में किया गया कार्य नीचे पूरे क्षेत्र को लाभ देता है और यह दर्जनों गांवों के लिए साझा भविष्य का निर्माण करता है। उन्होंने यह भी आग्रह किया है कि बमाया नदी पर गांव के पास तीन एनीकट बनाए जाएं। वर्तमान में पूरा गांव खुशहाल जीवन जी रहा है।

7.2.9: बटीकरा

सरमथुरा पंचायत समिति की ग्राम पंचायत बटीकरा है। बटीकरा गांव तथा ग्राम पंचायत दोनों ही हैं। गांव में सभी जातियों के लगभग ढाई सौ परिवार निवास करते हैं, जिनकी कुल जनसंख्या लगभग 1200 है। यह गांव बमाया नदी के किनारे एक पहाड़ी पर बसा हुआ है। गांव में राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, पटवार घर, अटल सेवा केंद्र तथा डिस्पेंसरी जैसी सुविधाएं उपलब्ध हैं। पेयजल के लिए पार्वती नल परियोजना की टंकी, कुएं और ट्यूबवेल हैं, जिनके माध्यम से सभी लोगों को पानी उपलब्ध कराया जाता है। हालांकि पानी आने का कोई निश्चित समय नहीं है और कई बार दस-दस दिन बाद पानी की आपूर्ति होती है। गांव में लगभग 650 बीघा भूमि है, जो परिवारों की संख्या की तुलना में बहुत कम मानी जाती है। गांव में पशुधन भी अपेक्षाकृत कम है, क्योंकि लोगों का झुकाव मजदूरी की ओर अधिक रहा है। इसके पीछे एक बड़ा कारण यह भी रहा कि लोगों की भैंसें चोरी हो जाती थीं, इसलिए वे कम पशु रखने लगे।

ग्रामीण ज्वाला प्रसाद शर्मा बताते हैं कि लगभग पचास वर्ष पहले गांव में सभी प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध थीं। गांव के किनारे से बमाया नदी बहती थी, जिससे कुओं में पर्याप्त पानी रहता था। लोग खेती करते थे और अनेक परिवार सीधे नदी से पानी लेकर अपनी आवश्यकताएं पूरी करते थे। उस समय गांव काफी छोटा था और सभी जातियों के लगभग सौ परिवार यहां रहते थे।

वे बताते हैं कि उस समय ब्राह्मणों को गांव में ही पर्याप्त रोजगार मिल जाता था। गांव में विवाह और अन्य सामाजिक कार्यक्रम लगातार होते रहते थे, जिनसे उन्हें मजदूरी

और जजमानी दोनों प्राप्त होती थीं। जजमानी के रूप में उन्हें वर्ष में लगभग पांच-पांच किलो अनाज मिलता था। गांव में बढ़ई परिवार रहते थे, जो लकड़ी का काम करते थे। उनके काम की प्रसिद्धि इतनी थी कि दूर-दूर से लोग लकड़ी का काम कराने यहां आते थे। प्रजापति परिवार मिट्टी के बर्तन बनाते थे और उनके बर्तनों की अच्छी बिक्री होती थी। गांव में तेली परिवार थे, जो घरों में तेल निकालने का काम करते थे। नाई परिवार बाल काटने का कार्य करते थे और उन्हें कार्तिक तथा वैशाख माह में अनाज के रूप में पारिश्रमिक मिलता था। गांव में ठठेरा परिवार भी था, जो धातु के बर्तन बनाता था। लोहार लोहे का काम करते थे। इस प्रकार गांव एक छोटे कस्बे जैसा था, जहां लोगों को स्थानीय स्तर पर रोजगार उपलब्ध हो जाता था और किसी प्रकार की कमी नहीं थी।

चित्र 7.21: बटीकरा गाँव के लोगों को पोखरों पर प्रशिक्षण शिविर के माध्यम से जागरूक करते तरुण भारत संघ के कार्यकर्ता

ज्वाला प्रसाद शर्मा आगे बताते हैं कि उस समय जंगल बहुत घना था। जंगल में शेर, चीता, जरख, भालू, गीदड़ तथा अनेक प्रकार के वन्य जीव पाए जाते थे। उस समय गांव में लगभग 300 बीघा भूमि पर खेती होती थी।

गांव की कहानी को आगे बढ़ाते हुए वे बताते हैं कि जल संकट के कारण गांव से लोगों का पलायन बहुत अधिक हुआ। उनका मानना है कि यदि जल संकट नहीं आया होता तो आज गांव में लगभग एक हजार परिवार होते, जबकि वर्तमान में केवल ढाई सौ परिवार ही रह गए हैं। वे बताते हैं कि पूरा गांव पानी पर निर्भर था और पानी का मुख्य स्रोत नदी थी। जब नदी में ऊपर से पानी आना बंद हो गया तो कुएं सूख गए और खेती प्रभावित होने लगी। खेती कमजोर हुई, जंगलों पर कब्जे बढ़े, पेड़ों की कटाई होने लगी और पशुपालन पर भी संकट खड़ा हो गया।

वे बताते हैं कि एक समय ऐसा था जब गांव में उनके पास ही पर्याप्त खेती थी और अधिकांश लोग उनसे अनाज लेते थे। उस समय "नजाई" की प्रथा प्रचलित थी, जिसमें यदि वे किसी को एक किलो अनाज देते थे तो छह महीने बाद उससे सवा किलो अनाज वापस लेते थे। अनेक लोग उनकी खेती में काम करते थे और आवश्यकता पड़ने पर वे उन्हें नजाई पर अनाज देते थे। कुछ लोगों से वे "ड्योढ़ी" भी लेते थे। ड्योढ़ी उनसे ली जाती थी, जिनसे अनाज वापस मिलने की संभावना कम होती थी। धीरे-धीरे लोग गांव छोड़ते गए।

चित्र 7.22: बटीकरा गाँव के मोहल्ले में जल संरक्षण बैठक करते तरुण भारत संघ के कार्यकर्ता

कुछ लोग नदी में मछली पालन भी करते थे और उससे उनका गुजारा चलता था, लेकिन नदी का पानी सूखने से यह कार्य भी समाप्त हो गया। पानी की कमी बढ़ने पर लोग पत्थर खदानों में मजदूरी करने लगे। वे बताते हैं कि पहले खदानों में "सिर से झराई" का कार्य किया जाता था। मजदूर पत्थर के ऊपर जमा मलबे को हटाने में लगे रहते थे। कई बार तीन-तीन महीने तक मलबा हटाने के बाद जब पत्थर तक पहुंचते, तब पता चलता कि पत्थर खराब है। ऐसी स्थिति में तीन महीने का श्रम व्यर्थ चला जाता था और मजदूरी भी नहीं मिलती थी। इस दौरान लोगों को उधार लेकर परिवार चलाना पड़ता था, जिससे कर्ज बढ़ता जाता था। कर्ज चुकाने में असमर्थ लोग अपने घर और खेत छोड़कर कहीं और चले जाते थे। इस प्रकार पूरा गांव बिखरता गया और एक समय गांव में केवल पचास परिवार ही शेष रह गए।

ज्वाला प्रसाद शर्मा बताते हैं कि बाद में तरुण भारत संघ द्वारा किए गए जल संरक्षण कार्य गांव के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुए। आज गांव के लोग खेती करते हैं, पशुपालन करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर बाहर मजदूरी के लिए भी जाते हैं। गांव में अब व्यापक स्तर पर खेती होने लगी है और लगभग 750 बीघा भूमि पर खेती की जा रही है। वे बताते हैं कि उनके पास 30 बीघा भूमि है। पहले वे केवल 10

बीघा भूमि पर खेती कर पाते थे, जबकि अब पूरी 30 बीघा भूमि पर खेती कर रहे हैं। उनकी खेती से एक वर्ष में लगभग 15 लाख रुपये की फसल तैयार हो जाती है। वे स्वयं पशु कम रखते हैं, लेकिन गांव में पशुपालन अब काफी अच्छी स्थिति में है। उन्होंने यह भी बताया कि पहले गांव में कच्ची झोपड़ियां थीं, लेकिन अब उनकी जगह पक्के मकान बन गए हैं। गांव में आधुनिक साधनों की उपलब्धता भी बढ़ी है। एलएनटी मशीनें, जेसीबी, ट्रैक्टर, गाड़ियां, बोलेरो, स्कॉर्पियो और मोटरसाइकिलें अब गांव में सामान्य रूप से दिखाई देती हैं। उनका कहना है कि वर्तमान समय में गांव में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं है।

चित्र 7.23: बटीकरा गाँव के अत्यंत गरीब परिवारों को तरुण भारत संघ द्वारा बकरी किट का वितरण।

गांव में सभी जातियों के लोग रहते हैं और सभी अलग-अलग प्रकार के कार्यों में लगे हुए हैं। माली समुदाय के लोग सब्जी की खेती करते हैं। एक-एक माली एक बीघा भूमि में चार से पांच लाख रुपये तक की सब्जी की खेती कर लेता है। गांव से सरमथुरा तक पक्की सड़क बनी हुई है। गांव के बच्चे राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करते हैं तथा उच्च शिक्षा के लिए सरमथुरा, बाड़ी और धौलपुर भी जाते हैं।

ज्वाला प्रसाद शर्मा बताते हैं कि उन्होंने स्वयं सरमथुरा, बाड़ी और जयपुर में मकान खरीद लिए हैं। वे इसे केवल अपनी व्यक्तिगत आर्थिक उन्नति नहीं मानते, बल्कि गांव में आए व्यापक सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन का परिणाम बताते हैं। उनके अनुसार जब गांव में जल, खेती और रोजगार की स्थिति सुधरती है, तब लोगों की आय बढ़ती है, बचत की क्षमता विकसित होती है और वे भविष्य की सुरक्षा के लिए

संपत्ति में निवेश करने लगते हैं। यह परिवर्तन इस बात का संकेत है कि ग्रामीण समाज अब केवल आजीविका तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि वह आर्थिक रूप से आत्मविश्वासी और योजनाबद्ध जीवन की ओर अग्रसर हो रहा है।

वे कहते हैं कि पहले गांव का स्वास्थ्य स्तर बहुत कमजोर था। पीने के लिए स्वच्छ पानी का अभाव था, जिससे जलजनित बीमारियां सामान्य बात थीं। कुपोषण, असंतुलित आहार और स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी के कारण बच्चे, महिलाएं और बुजुर्ग सबसे अधिक प्रभावित होते थे। लेकिन अब लोगों को स्वच्छ पेयजल और पौष्टिक आहार उपलब्ध हो रहा है। खेती में विविधता आने और घरों में सब्जियों तथा अन्य पोषक खाद्य पदार्थों की उपलब्धता बढ़ने से लोगों के स्वास्थ्य में उल्लेखनीय सुधार आया है। बच्चे पहले की अपेक्षा अधिक स्वस्थ हैं, महिलाओं का स्वास्थ्य बेहतर हुआ है और बुजुर्ग भी पहले की तुलना में अधिक सक्रिय एवं निरोग जीवन जी रहे हैं। स्वच्छ जल और संतुलित पोषण ने गांव के जीवन स्तर को नई दिशा दी है।

वे बताते हैं कि तरुण भारत संघ ने गांव के अनेक गरीब परिवारों को बकरी किट उपलब्ध कराए हैं। इससे ऐसे परिवारों को अतिरिक्त आय का स्थायी स्रोत मिला, जिनके पास सीमित भूमि या संसाधन थे। बकरी पालन के माध्यम से महिलाओं और छोटे किसानों की आर्थिक स्थिति में भी सुधार आया तथा परिवारों की आजीविका अधिक सुरक्षित और विविधतापूर्ण बनी। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आत्मनिर्भरता की भावना को भी बल मिला।
जल उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए कई परिवारों को पाइप और फव्वारा (स्प्रिंकलर) प्रणाली भी वितरित की गई है, जिससे कम पानी में अच्छी फसल प्राप्त की जा सकती है। इस तकनीक के उपयोग से खेतों में जल का समान वितरण होता है और अनावश्यक जल अपव्यय रुकता है। परिणामस्वरूप श्रम, समय, धन और पानी—चारों की पर्याप्त बचत होती है। साथ ही सिंचाई की लागत घटने से किसानों की आय में वृद्धि हुई है और वे सीमित जल संसाधनों का अधिक वैज्ञानिक एवं टिकाऊ ढंग से उपयोग करने लगे हैं। यह परिवर्तन जल संरक्षण और कृषि उत्पादन के बीच संतुलन स्थापित करने का सफल उदाहरण है।

कुछ परिवारों को बीज किट भी उपलब्ध कराई गई हैं, जिनकी सहायता से घरों में किचन गार्डन विकसित किए गए हैं। अब अनेक परिवार अपने आंगन या घर के आसपास ही मौसमी सब्जियां उगा रहे हैं। इससे उन्हें ताजी, पौष्टिक और रसायन-मुक्त सब्जियां आसानी से उपलब्ध हो जाती हैं। जो परिवार पहले वर्ष में 15 से 20 हजार रुपये सब्जियों पर खर्च करते थे, अब उन्हें अपनी अधिकांश सब्जियां घर पर ही प्राप्त हो जाती हैं। इससे घरेलू खर्च में उल्लेखनीय कमी आई है, साथ ही बच्चों और परिवार के अन्य सदस्यों के भोजन में पोषण का स्तर भी बढ़ा है। कई परिवार

अतिरिक्त सब्जियां स्थानीय बाजार में बेचकर अतिरिक्त आय भी अर्जित करने लगे हैं। वे बताते हैं कि वर्तमान समय में गांव का सामाजिक वातावरण भी काफी अच्छा हो गया है और लड़ाई-झगड़े पहले की तुलना में बहुत कम हो गए हैं। अब अधिकांश विवाद केवल चुनावों के समय ही देखने को मिलते हैं। एक चुनाव का विवाद समाप्त होता है तो दूसरा चुनाव आ जाता है और उसी के कारण कुछ मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं। किंतु ये मतभेद भी पहले जैसी स्थायी वैमनस्यता का रूप नहीं लेते। सामान्य दिनों में गांव के लोग आपसी सहयोग, सामूहिक निर्णय और सामाजिक सौहार्द के साथ रहते हैं। जल संरक्षण कार्यों में वर्षों तक साथ मिलकर किए गए श्रमदान और सामुदायिक भागीदारी ने लोगों के बीच विश्वास और सहयोग की भावना को मजबूत किया है।

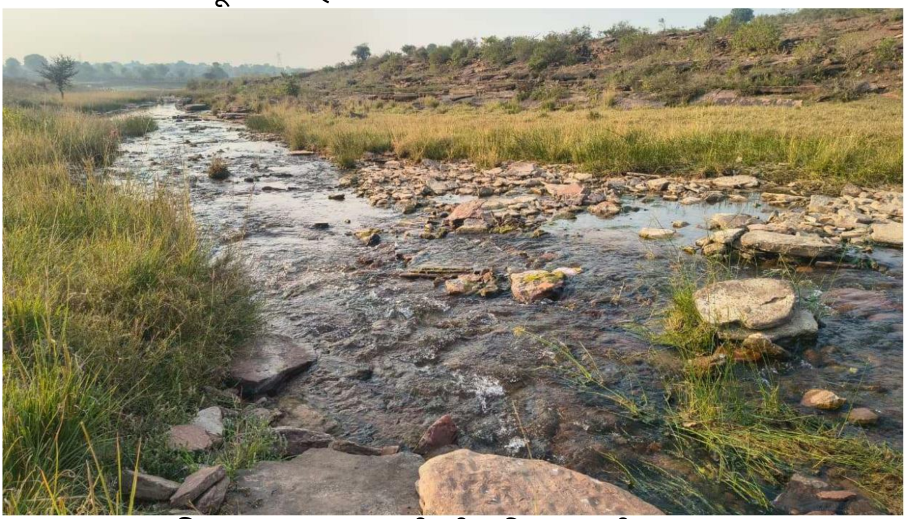

चित्र 7.24: बमाया नदी की अविरल बहती जलधारा

अंत में वे कहते हैं कि आज गांव में जल उपलब्धता सुनिश्चित हो चुकी है और यह सब तरुण भारत संघ के प्रयासों का परिणाम है। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि आसपास के गांवों के लोग, जो पहले जंगलों के रास्तों का उपयोग करके इस क्षेत्र में आकर समस्याएं पैदा करते थे, अब ऐसा नहीं करते। जल उपलब्ध होने से लोग खेती, पशुपालन और अन्य रोजगारों में लग गए हैं। उन्होंने जंगलों का रास्ता छोड़ दिया है। पूरे क्षेत्र में शांति स्थापित हुई है और उसका सकारात्मक प्रभाव गांव पर भी पड़ा है। वे बताते हैं कि पहले गांव के आतंक और असुरक्षा के कारण अनेक परिवारों को अपना घर छोड़ना पड़ा था, लेकिन अब परिस्थितियां बदल चुकी हैं और गांव में शांति एवं स्थिरता का वातावरण है।

8.
कोटवाली नदी – इतिहास, भूगोल एंव नदी तंत्र

8.1 कोटवाली नदी का इतिहास

कोटवाली नदी जमूरा एवं नयापुरा की पहाड़ियों से निकल कर परुआ बाँध में जाती है, जो आगे चल कर गम्भीर नदी में मिल जाती है। इस नदी का उद्गम् राजस्थान के करौली जिले की मासलपुर तहसील की ग्राम पंचायत से होता है। इस नदी के आसपास करौली जिले में नयापुरा, खैरटपुरा, जमूरा, झझरपुरा आदि गाँव आते हैं। कारेन का पुरा से आगे चलने पर भरतपुर की सीमा लग जाती है, जिसमें बयाना तहसील की दो ग्राम पंचायतें- कोड़ापुरा (बाजना) एवं परुआ पड़ती हैं। इन ग्राम पंचायतों में बेदपुरा, कोड़ापुरा, ओखलियापुरा, परुआ, झरनापुरा, अडईमपुरा कोट, बाँगरा, गढ़ी आदि गाँव पड़ते हैं। आगे इसकी सीमा उत्तर-प्रदेश से लग जाती है, जहाँ यह नदी गम्भीर नदी में मिल जाती है। इस नदी के किनारे बसे लगभग 15 गाँव राजस्थान की सीमा में पड़ते हैं, जिनकी कुल जनसंख्या लगभग तीस से चालीस हज़ार के बीच है। यहाँ अधिकतर गुर्जर जाति के लोग निवास करते हैं। ये लोग मुख्यतः पशु पालक होने कारण जंगल व नदी-तालाबों पर निर्भर थे। इस नदी के आसपास कई प्रसिद्ध स्थान हैं, जिनमें बाजने का चौक, बाबू महाराज का मन्दिर व देवनारायण जी का मन्दिर आदि प्रसिद्ध मन्दिर हैं। परुआ गाँव में झिरके का सिद्ध है। इन सभी देवस्थानों की अपनी-अपनी कोई न कोई एक अद्भुत् कहानी है, जो कि परस्पर एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं। यह नदी दो पहाड़ों के बीच से होकर बहती है, नदी के दोनों तरफ और नीचे व ऊपर पहाड़ों पर गाँव बसे हुए हैं। दानों पहाड़ों के बीच केवल एक से तीन किलोमीटर का फैलाव है। जन-श्रुति के अनुसार ये गाँव 1400 ईस्वी के आसपास के बसे हुए हैं। गाँव वालों का मानना है कि ये गाँव प्राचीन 'बाजना' गाँव से आकर बसे हैं। बाजना गाँव वर्तमान में गैर आबाद गाँव है।

माना जाता है कि जब मुसलमानों की हुकूमत थी, तब ये लोग वहाँ से उठ कर यहाँ आकर बस गये थे। चूँकि यहाँ छिपाव की जगह थी, इसलिए इन्होंने जंगल की शरण ली थी। जंगल में रहने से इन्हें सुरक्षा भी मिली और पशु पालन व खेती भी करने लगे। धीरे-धीरे इनकी संख्या बढ़ी, तो ये लोग अपने उपयोग के लिए जंगल को काटने लगे। परिणामस्वरूप नदी सूखी, कुएँ सूखे तो खेती छूटी, पशु पालन छूटा, तब लोग खनन की तरफ मुड़ने लगे। इस क्षेत्र के बराबर खनन कार्य कहीं भी नहीं है। यहाँ का पत्थर पट्टी व पटाव के रूप में मकान की छत पर डालने के काम आता

है। ऐसा पत्थर हर जगह नहीं मिलता, इसलिए लोग आजीविका के लिए खनन कार्य में लग गये। फलस्वरूप धरती का स्वरूप बदला और खेती का क्षेत्रफल कम हुआ। आज भी खेती योग्य भूमि कम ही है, इसीलिए आज भी अधिकतर लोग खनन व पशु पालन से ही अपनी जीविका चलाते हैं। खनन कार्य अधिक होने से इस क्षेत्र में श्रब्ठए स्-ज्ए ट्रैक्टर जैसी मशीनरी का उपयोग भी खूब होने लगा है। इससे वायुमण्डल की परतों में कार्बन की मात्रा बहुत जमा हुई है; जिससे लोगों को श्वास, दमा व फेफड़ों की बीमारी भी बढ़ी है।

इस क्षेत्र से होकर दो सड़कें मुख्य रूप से गुजरती हैं। एक सड़क कैलादेवी से चल कर करौली, कोड़ापुरा, कोट थाना, जगनेर होते हुए आगरा को जाती है और दूसरी धौलपुर से बाड़ी बसेड़ी, बयाना होकर एक तरफ जयपुर व दूसरी तरफ भरतपुर को जाती है। इस क्षेत्र में पानी का काम होने से पूर्व पानी का बड़ा संकट था। जब से यहाँ पानी का काम हुआ है, तब से यह क्षेत्र बदलाव की ओर अग्रसर हुआ है। इस नदी पर एक पुराना बाँध है, जिसे परऊआ का बाँध कहते हैं। इस बाँध को भरतपुर के महाराजा सूरजमल ने बनवाया था। चूँकि परऊआ गाँव की खेती की जमीन इस बाँध के भराव क्षेत्र में ही आती है, इसलिए दीपावली बाद गाँव के लोग इसके पानी को नीचे की ओर छोड़ देते हैं, जो कि उनके काम में कम आता है। तरुण भारत संघ ने इस क्षेत्र में जन सहयोग से बील की पोखर, बरगियों की पोखर, खैरटपुरा में महाराजसिंह की पोखर, कुण्ड की पोखर, शेरा वाली पोखर झझरपुरा में, बहेरे की पोखर, खितारे की पोखर कारेन का पुरा में बनाने का काम किया तथा सिद्ध सागर घन्दपुरा में बनाने का काम किया है।

8.2 कोटवाली नदी का भूगोल

कोटवाली नदी सिंगनपुर की उत्तर दिषा से षुरू होकर पूर्वोत्तर की तरफ प्रवाहित होती हुई नयापुरा, झझरपुरा, बेदपुरा, खरियापुरा, कौरापुरा, बाजना, चाँदोलपुरा, जंजारीपुरा होते हुए कोट गाँव के पास बने एक पुराने बाँध को भर कर दक्षिण-पूर्व की तरफ आगे बढ़ती है। कोट गाँव से पहले इस नदी का कोई स्थानीय नाम सुनने में नहीं आता, इसलिए कोट गाँव के पास से होकर गुजरने के कारण इसे ''कोटवाली नदी'' कहा गया है।

वैसे कोट गाँव से लगभग 12 किलोमीटर आगे ''बागथर'' गाँव के पास इसे ''खार नाला'' नाम से तथा उससे लगभग 7 किलोमीटर आगे जलालपुरा गाँव के पास इसे ''कवार नदी'' के नाम से जानते हैं। फिर इससे आगे मेवला गाँव से होती हुई कवार नदी दहगावाँ, झारपुरा, पिपरैठा, निमेना, डाँडा गाँवों के पास से होती हुई आगे गढ़ी भजना के पास दक्षिण की तरफ से आने वाली ''झिंझन नदी'' से मिल कर, इस

मिलन बिन्दु से केवल आधा किलोमीटर ही आगे चलकर गम्भीर या उतंगन नदी में मिल जाती है। फिर उतंगन नदी यमुना में और यमुना नदी प्रयागराज में गंगा नदी में मिल जाती है। गंगा नदी अन्त में सागर में मिल कर सागर-स्वरूप हो जाती है।

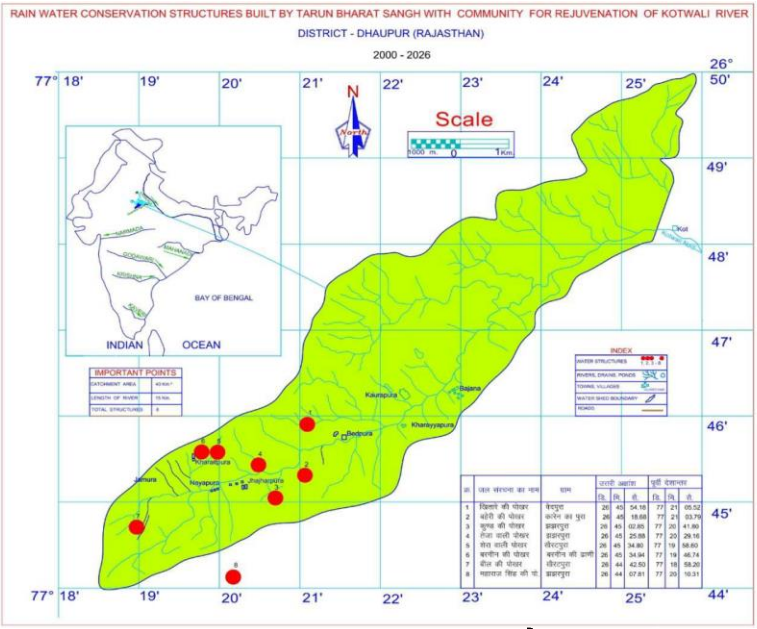

चित्र 8.1: तरुण भारत संघ एवं स्थानीय समुदाय द्वारा धौलपुर (राजस्थान) जिले की कोटवाली नदी के पुनर्जीवन हेतु निर्मित वर्षा जल संरक्षण संरचनाएँ

यह नदी विष्व भू-मानचित्र में 26 डिग्री, 44 मिनट उत्तरी अक्षांष से 26 डिग्री, 50 मिनट उत्तरी अक्षांष तथा 77 डिग्री, 18 मिनट, 30 सैकण्ड पूर्वी देषान्तर से 77 डिग्री, 26 मिनट, 00 सैकण्ड पूर्वी देषान्तर के बीच स्थित है। कोट गाँव तक इसकी लम्बाई 15 किलोमीटर तथा जलागम क्षेत्र 40 वर्ग किलोमीटर है।

8.2.1: जंजारीपुरा

कोटवाली नदी का गाँव जंजारीपुरा कोटवाली नदी के कारण दो हिस्सों में बँटा हुआ गाँव है, क्योंकि कोटवाली नदी गांव के बीच में से होकर गुजरती है। गाँव में प्राचीन समय का कुआँ है, जिससे सिंचाई की जाती है। गांव के दोनों हिस्सों में पच्चीस-पच्चीस परिवार निवास करते हैं। इसी गाँव के सुरेश ने बताया कि बहुत पहले नदी में पानी रहता था, इसलिए कुओं में भी खूब पानी रहता था। तब लोग नदी से सीधा पानी नहीं खींचते थे, कुएं से ही पानी लेते थे। लेकिन जब ऊपर से नदी में पानी आना बंद हो गया तो नदी के सूख जाने पर गाँव के कुएँ भी सूख गए। गाँव के एक दो लोगों ने ट्यूबवैल लगवाये, लेकिन कुछ समय बाद वे भी सूख गए। जब गाँव में जल संकट गहराया, तो गाँव से बीस परिवार खेड़िया मोड़, भरतपुर के पास बावरी, बरोदा चले

गए। वहां जाकर उन्होंने 50 बीघा जमीन खरीद ली। वहां का भू-जल स्तर बहुत अच्छा था, क्योंकि पास से ही गंभीर नदी गुजरती थी।

चित्र 8.2: जंजारीपुरा गाँव में पोखर निर्माण कार्य का नाप लेते ग्रामीण

इसी प्रकार गाँव के कुछ अन्य परिवारों ने भी इधर-उधर समय बिताया। उनमें से एक ने अपनी कहानी सुनाते हुए बताया कि, पहले गाँव में सब लोग खेती पर निर्भर थे। मेरा परिवार भी खेती पर निर्भर था; लेकिन खेती की जमीन में सिंचाई के लिए पानी नहीं होने की वजह से संकट खड़ा हो गया था। वर्षा पर आधारित केवल एक फसल ही हो पाती थी; वह भी कभी हो जाती थी और कभी सूखा ही पड़ जाता था। इसलिए खेती केवल कजऱ् का सौदा रह गया था, हाँ, पशुपालन ने थोड़ा साथ दिया। पशुओं में मैं भैंस, गाय और बकरियाँ रखता था। बरसात और सर्दी में तो गाँव में और गाँव के जंगल में, ही उनकी गुजर-बसर हो जाती थी, पर गर्मी के चार महीने पशुओं को लेकर भरतपुर के पास गुजारने पड़ते थे। वहाँ पशुओं को चराने व दूध बेचने का काम करते थे। इस तरह गर्मी-गर्मी में वहाँ दूध बेच कर काम चलाते थे।

इधर जब से हमने तरुण भारत संघ के सहयोग से गाँव में नदी के ऊपरी भाग में तालाब पोखर बनाये, तब से नदी में पानी रहने लगा है और कुएँ में भी पानी आ गया। अब हमारे खेतों में फिर से खेती होने लगी है, इसलिए अब पशुओं को भी बाहर नहीं ले जाना पड़ता, वे घर पर ही रहते हैं। खेती में अब साल-भर में लगभग 6 किं्वटल गेहूँ हो जाता है तथा पशुपालन से साल-भर में दो तीन लाख रुपए का दूध बेच लेते हैं। अब मेरे परिवार पर कोई संकट नहीं है। हँसते खेलते दिन गुजर रहे हैं। पहले जल संकट के दौर में गांव के कुएँ पर पीने के पानी को लेकर कई बार विवाद भी खड़ा हुआ है। कई बार विवाद इतना बढ़ा कि राज पंच भी हुआ। पानी के बिना

लोगों की हालत इतनी खराब हो गई थी कि फसल ही नहीं होती थी। इसलिए तालपुर व बचाना शहरों से पिसे हुए आटा के दस-बीस किलो के बैग लेकर जाता था। घर-परिवार में जब भी कोई रिश्तेदार या नातेदार आता था, तभी उनके लिए गेहूँ की रोटी बनती थी। तब हम यही आशा करते थे कि अगर वह रोटी छोड़ दें, तो बची हुई रोटी हमें भी खाने को मिल जायें। क्योंकि गेहूँ का आटा उतना ही लगाया जाता था। गेहूं का आटा अनमोल था। बरसात के मौसम में बाजरा होता था और इस बाजरे को साल में ग्यारह माह खाते थे। साल में केवल एक माह के लिए गेहूं का आटा लाया जाता था।

अब नदी में पानी रहने से कुओं का जल-स्तर ऊपर आ गया है। सभी के पास तीनों फसलें अच्छी हो रही हैं। इसीलिए कहा गया है कि पानी ही जीवन का आधार है। पानी ही समृद्धि लाने का काम करता था। जल का बचाव और संरक्षण सभी लोगों को करना चाहिए।

8.2.2: जमूरा

कोटवाली नदी का उद्गम जमूरा गाँव से है। गाँव में ग्राम पंचायत मुख्यालय है। इस गांव में बारहवीं कक्षा तक विद्यालय है, जहां आसपास के गाँवों के बच्चे पढ़ने के लिए आते हैं। इस गाँव के एक तरफ से नहरो नदी जाती है और दूसरी तरफ कोटवाली नदी का उद्गम है। यह दोनों नदियों के बीच वाला गाँव है। इस गाँव में सभी जातियों के लोग रहते हैं। इस गाँव में लोक गीतों का बड़ा प्रचलन रहा था। इस गाँव में लोक गीत बनाने वाला एक प्रसिद्ध व्यक्ति था। उसके गीतों की दूर-दूर तक के गांवों में बड़ी प्रसिद्धि थी।

आज से दस वर्ष पहले इस गाँव के दोनों तरफ की नदियां सूखी हुई थीं। गाँव में कुएं थे, लेकिन सभी कुओं में पानी कम था। ट्यूबवैल भी सूख गए थे। पानी हजारों फीट तक नहीं मिलता था। गाँव के लोग मजदूरी, खनन तथा पशुपालन से अपना गुजारा करते थे। गाँव में दो सौ परिवार हैं। तहसील मुख्यालय से इस गाँव से होकर बचाना की ओर सड़क जाती है।

तरुण भारत संघ द्वारा जन सहयोगिता से बनाई गई जल संरचनाओं के कारण आज दोनों नदियां पुनर्जीवित हो गई हैं, इसलिए भू-जल स्तर ऊपर आ गया है। जब गाँव के सभी कुओं, ट्यूबवैलों में पानी आ गया तो अब गाँव में अच्छी फसल होने लगी है। 80 वर्षीय ग्रामवासी श्री कमोड़ा से बातचीत हुई, उन्होंने अपनी कहानी सुनाते हुए बताया कि पहले मैं और मेरा परिवार बयाना जिला भरतपुर के गाँव अर्रोदा में रहते थे। जब वहां पर पानी का संकट खड़ा हुआ और गाँव में लड़ाई-झगड़े होने लगे, तो वहां रहना कठिन हो गया। आए दिन बेबाक लड़ाई झगड़े होने लगे, तब वहां से 90 वर्ष पहले मेरे पिताजी यहां आकर बस गए। मेरा जन्म यहीं का है। उस समय यहां

भी दोनों नदियां बहुत अच्छी बहती थीं। इसलिए गाँव में गन्ने की खेती होती थी। गुड़ और घी का भाव समान था। यहां कुश्ती का बड़ा शौक था, हम दूर-दूर तक कुश्ती लड़ने जाते थे। गाँव में दीपावली पर तथा होली पर एक महीने तक हाथी होली व श्याम की होली के गीत गाए जाते थे, जिनमें निम्न गीत थे।

बगुली कौन देश ते उठयो च बदरा।
अहे नहनी-नहनी बूंद पड़त गरारे यें।
याको आंगना भी जल है। बगुला तेरे देश उठाओ, आ बदला।
उठयो अ बदला क बरसोया द धुखा
बोगली ले रे डेरा उठइयो या बदला। होली खेले तो श्याम निर्भर सुइयो।

आगे बताया कि गाँव में गर्मी के मौसम में कोई काम नहीं होता। उस समय खेतों को तैयार किया जाता था। खेतों की दीवार करना, खाद डालना, उस पर चड़स बरत से नाप चलती, इसलिए रस्सी बनाने का काम बहुत किया जाता था। भूसा ढोने के लिए पासी बनाने का काम किया जाता था। आगे कहा कि वह जमाना अच्छा था, अनाज सब देशी था, खान-पान शुद्ध था, इसलिए लोग नीरोग रहते थे। बुखार आने पर बाजरा की राबड़ी लेने से ही बुखार टूट जाता था। देशी वैद्य हुआ करते थे, जो नब्ज़ (नाड़ी) के जानकार होते थे। उन दिनों बीमारी का 'निदान' होता था, जबकि आज 'उपचार' होता है। अब दवाई लेते समय तो आराम होता है, पर दवाई बंद करने पर पुनः बीमारी हो जाती है।

गाँव में गन्ने की खेती के द्वारा पानी की खपत हुई, तो पानी की माँग बढ़ती गई। इसलिए परम्परागत खेती भी खर्चीली होती गई। डाँगर (धोरों) से पानी ले जाने का काम किया जाता था, जिससे एक चौथाई पानी तो रास्ते में ही बर्बाद हो जाता था। पानी के स्रोत, पोखर, तालाब बहुत छोटे थे। उनके बनाने की तकनीक के बारे में जानकारी नहीं थी, इसलिए पहली वर्षा होने पर ही फूट कर पानी बह जाता था। अतः धरती के पेट में पानी कम गया।

पानी की सबसे अधिक बर्बादी तब हुई, जब बिजली आई और किसानों ने जहाँ तक पानी मिला, वहाँ तक खींच लिया। इसलिए जमीन में पानी बचा ही नहीं ं। मेरा कुआँ पचास फीट गहरा था, वह सूख गया था। दो ट्यूबवैल कराए थे, वे भी सूख गए। पचास वर्ष से तो बार-बार ओले पड़ते गए। अनावृष्टि के कारण पानी प्रसाद हो गया और खेती की बात तो छोड़ो, पीने के पानी का भी संकट हो गया था। पीने का पानी दूर-दूर से लाना पड़ता था। खदानों ने पानी को और कम कर दिया। खदानों में पानी आना बंद हो गया, क्योंकि पानी का बहाव समाप्त हो गया था। ब्लासिं्टग से हमारे घरों में दरारें पड़ गईं। पता नहीं, धरती का पानी कहां चला गया। बोरवैल कराते,

लेकिन वे सूखे ही निकल जाते थे। इस क्षेत्र में बाहरी लोग लूटपाट करने आते थे, इसलिए पत्थर का काम भी धीमी गति से ही हुआ। इस काम में कोई कमाई नहीं थी। कृषि के अभाव में तथा बेरोजगारी के कारण विवाह, शादी बहुत कम हो पाते थे, इसलिए शनैः शनैः इस क्षेत्र की जनसंख्या बहुत कम होती चली गई। लम्बे समय तक लोगों ने नरक जैसा जीवन जिया।

आगे कहा कि मैं तो तरुण भारत संघ के अध्यक्ष को धन्यवाद देना चाहता हूं, जिन्होंने यह जल संरक्षण की पहल चलाई। इसके माध्यम से तो गरीब अदमी भी पानी बचाने का काम कर सकता है। जब से तरुण भारत संघ ने दोनों नदियों पर काम किया है, तब से नदियाँ पुनर्जीवित हुई हैं तथा कुओं व ट्यूबवैलों में भू-जल स्तर ऊपर आ गया है। आज सभी के पास पानी है।

उन्होंने अपने गाँव की कमी बताते हुए कहा कि, हमारा गाँव तो आज भी निकम्मा गाँव है। हम आज भी दूसरों के द्वारा संग्रह किया गया पानी ही उपयोग में ले रहे हैं। मैं उनके इस अच्छे कार्य को सलाम करता हूं। उन्होंने अपने परिवार के बारे में बताया कि, मेरे तीन लड़के हैं, तीनों की शादी हो गई है। परिवार में छोटे-बड़े बीस सदस्य हैं। बीस बीघा जमीन है। जो सूखा कुआं था, उसमें पानी आ गया तथा दोनों सूखे ट्यूबवैलों में भी अच्छा पानी हो गया है। अब पूरी बीस बीघा जमीन पर खेती होती है। दस बीघा में गेहूं की फसल तथा दस बीघा में सरसों की खेती करता हूँ। जहाँ पहले माघ के महीना में पशु चराने के लिए, बचाना गांव की तरफ जाते हैं। अब अपने खेत में ही सूखा चारा खूब हो जाता है तथा गर्मी में ज्वार का हरा चारा भी हो जाता है, जिससे भैंसें अच्छा दूध देती हैं।

प्रेम सिंह ने कहा, "मेरा परिवार रहमापुरा खेड़ा से बेपानी होकर उजड़ा था। उस समय यहाँ अच्छा पानी था, जिससे खेती और पशुपालन ही आजीविका के साधन थे। लेकिन जैसे ही पानी कम हुआ तो हमने खेती छोड़ दी। केवल वर्षा काल में ही खेती होती है, इसलिए भैंस, गाय चराना कम किया। बकरी रखना ज्यादा हुआ। क्योंकि बकरियां जंगल में ही चारा चरती हैं, अपना पेट भर लेती हैं। उनको घर पर कुछ भी नहीं डालना पड़ता। इसलिए मेरे पास दो सौ बकरियां थीं। बकरियों से कभी तंगी नहीं आई। किसी के पास हाथ पसारना नहीं पड़ता।

तरुण भारत संघ द्वारा जल संरक्षण का काम होने के कारण अब नदी में पानी आ गया है। धरती के पेट में पानी आया तो फसल होने लगी। गाय, भैंस आदि दुधारू पशु रखना चालू किया। आज मेरे पास तीस गायें, बीस भैंसें तथा डेढ़ सौ बकरियां हैं। परिवार में आनंद और सुख-शांति है। मेरा एक बेटा विकलांग है, जो अब गांव के बच्चों को कोचिंग पढ़ाता है। सभी लोग अपने-अपने बच्चों को मेरे बेटे के पास कोचिंग में पढ़ने को भेजते हैं।" वह दो लाख रुपए कमा लेता है।

चित्र 8.3: ग्राम जमूरा में अब फव्वारों से सिंचाई हो रही है

पहले गांव के लोग कच्चे मकानों में रहते थे, पर आज सबके पास पक्के मकान हैं। सभी लोगों के पास घरों पर ही साग सब्जी लगी रहती है। घर के पास ही खेती, फसल, पेड़ भी हैं। कुछ भूमिहीन परिवार भी हैं, उनको गांव में ही काम मिल जाता है। काम में मिस्त्री का काम, मकान बनाने का काम तथा फसल काटने की मजदूरी मिल जाती है। इसलिए अब गांव में खूब मजे हैं। आगे बताया कि इस गांव से निजी विद्यालयों की बसें भी बच्चों को पढ़ने के लिए दूसरे गांवों में ले जाती हैं तथा वापस भी छोड़ जाती हैं। इस प्रकार लड़के-लड़कियां घर से ही सुविधापूर्वक पढ़ने चले जाते हैं। यह काम बच्चियों के लिए बहुत ही प्रभावशाली रहा, क्योंकि पहले बच्चियां केवल पाँचवीं कक्षा तक ही पढ़ कर अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ देतीं थीं। अब वे सुविधापूर्वक सुबह स्कूल जाकर शाम को वापस घर आ जाती हैं इसलिए सुरक्षित भी हैं। बच्चियां अपनी पढ़ाई अच्छे से कर रही हैं।

अब वापस वह समय आ गया है, जब दूसरी जगह के लोग भी यहां पर आने लगे हैं। दूसरी जगह के लोग यहां जमीन खरीदने आते हैं, लेकिन गांव के लोगों ने मिलकर निर्णय लिया है कि बाहरी लोगों को अब कोई भी जमीन नहीं बेचेंगे। क्योंकि गांव के गरीब परिवार जमीन बेचकर भागने की स्थिति में रहते थे। अब आसपास के गांव में

भी कोई कमी नहीं है। बच्चों की खूब विवाह शादियां हो रही हैं। पानी, फसल व दुधारू पशुओं से समृद्ध गांव है।

8.2.3: कोड़ापुरा

कोटवाली नदी क्षेत्र का कोडापुर गांव ग्राम पंचायत मुख्यालय का गांव है। इस गांव में 300 परिवार निवास करते हैं। लगभग सभी जातियों के लोग रहते हैं। गांव की जनसंख्या अधिक है, लेकिन खेती योग्य जमीन बहुत कम है। खेती की जमीन कम होने का मुख्य कारण खनन कार्य है। गांव के पास से ही कोटवाली नदी निकलती है। यहां के लोग किसी समय बाजना गांव में रहते थे, पर यहां नदी होने की वजह से बाजना से आकर यहां बस गये। उस काल में यहां खेती के लिए पर्याप्त पानी था, जिससे फसल अच्छी होती थी। लेकिन जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती गई वैसे-वैसे खेती का उपयोग बढ़ता गया तथा खेती में पानी की खपत बढ़ गई। फलस्वरूप पानी की कमी होती गई। लोगों ने जल संरक्षण का काम नहीं किया, इसलिए एक दौर ऐसा आया कि खेती और पशुपालन पर संकट खड़ा हो गया। तब खेती और पशुपालन से हट कर लोगों का ध्यान खनन की तरफ आकर्षित हुआ। खेती योग्य भूमि में से पत्थर निकाल कर उसे खदान में बदल दिया। मिट्टी और बड़ी-बड़ी चट्टानें मिक्स हो गईं, जिससे खेती करना बंद हो गया। लंबे समय तक लोगों ने खनन कार्य किया। खनन कार्य करने से लोगों के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ा। बहुत सारे युवाओं की जान भी चली गई। महिलाओं के जीवन पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा। महिलाओं के काम करने की अवधि में बढ़ोतरी हुई। उनका पूरा समय कामकाज में ही निकल जाता था। बच्चों की साफ-सफाई व पढ़ाई-लिखाई की तरफ किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। अनुसूचित जाति के लोगों का तो मुख्य व्यवसाय पत्थर फोड़ना ही रह गया था। इन पर डकैतों के आतंक भी बहुत हुए। इनमें डकैत खनन कार्य नहीं करने देते थे, इसलिए सैकड़ों परिवार यहां से उजड़कर भरतपुर के आसपास के गांवों में चले गए।

गांव के मधुबन सिंह ने बताया गया कि यह गांव करीब 500 वर्ष पुराना है। इस गाँव को कोड़ा नाम के व्यक्ति ने बसाया था। मैं उसकी 25वीं पीढ़ी में हूं। आगे कहा कि वह व्यक्ति बड़ा रईस था, इसलिए भरतपुर राजघराने के साथ उसके अच्छे सम्बन्ध थे। वह व्यक्ति जब यहां पर आकर बसा, उस जमाने में वह हाथी रखता था। हाथियों का चारा यहां के जंगल में खूब होता था। घना जंगल था, वर्षा खूब होती थी। जंगल की वजह से ही नदी में पानी था और नदी में पानी होने की वजह से जंगल में हरियाली थी। उन दिनों पर्याप्त पानी होने के करण यहां पर गन्ने की खेती खूब होती थी। लगभग 100 बीघा जमीन पर गन्ने की खेती होती थी। राजा ने उसको संरक्षण दिया था। उस समय गुर्जर कोड़ा को हाथी बंद रखैया के नाम से जाना जाने लगा था। वह प्रथा आज भी प्रचलित है। यहां से किसी भागवत या कोई बड़ी भोज कार्यक्रम होता है, तो किराए से हाथी मंगाए जाते हैं। दोनों हाथियों का शृंगार (चांदी का) आज

भी इनके पास है। दोनों हाथियों पर दोनों गांव के मुख्य लोग बैठकर जाते हैं। उस समय यहां पर बड़ी हवेलियां हुआ करती थीं।

चित्र 8.4: कोडापुर गांव में तरुण भारत संघ के कार्यकर्ता गाँव-गाँव जाकर ग्रामीणों से संवाद करते हुए

धीरे-धीरे खेती के कारण पानी कम हो गया, तो गन्ने की खेती भी कम हो गई। इसलिए हाथी रखना भी कठिन हो गया, तब हाथी बेच दिए। हाथी बेचने के बाद खान व मशीनों, ट्रैक्टर ट्रक खरीदे तथा उनसे काम करने लगे। दूर-दूर तक काम करने लगे। खान के काम से पूरा जंगल बर्बाद हो गया। मवेशी का चारा समाप्त हो गया। खेती की जमीन समाप्त हो गई तो वहां से जाकर भरतपुर के पास जमीन खरीदी, तो वहां पर बस गए। इस प्रकार कुछ लोग यहां पर रहते तो कुछ लोग वहां पर रहते। लेकिन इस नदी पर तरुण भारत संघ द्वारा बनाई जाने वाली सभी जल संरचनाओं को मैंने अपनी ही जे.सी.बी., ट्रक से बनाने का काम किया। इन जल संरचनाओं के बनने से हमें भी रोजगार मिला और नदी में बारहों महीने पानी भी रहने लगा। इसलिए अब लोग वापस खेती व पशुपालन पर आए हैं। खनन कार्य से जो चुकी बर्बाद हो गई थी, उसको वापस बनाने लगे हैं।

आगे बताया कि, अब मेरा परिवार वापस यहीं पर आ गया है क्योंकि वहां पीने का पानी भी शुद्ध नहीं मिलता है, जिससे बीमार होने लगे हैं। यहां पर जंगल वापस जीवित होने लगा है, जिससे शुद्ध हवा मिलती है। घरों पर जैविक सब्जी की खेती करते हैं। बाजार से सब्जी खरीदना बंद कर दिया है। मेरे पिताजी हार्ट के मरीज हैं।

इसलिए देसी सब्जी करता हूं। हरा धनिया, लहसुन, पालक, मेथी, मिर्ची, बैंगन, टमाटर करता हूं। उससे पिताजी की तथा पूरे परिवार की तबीअत ठीक रहती है। उन्होंने अपने स्वास्थ्य के बारे में बताया कि, वहां रहने पर मेरा ही शरीर भारी हो गया था, ऐसा लगता था, जैसे अभी हार्ट अटैक होने वाला है। इसलिए मैं यहां पर आकर रहने लगा तथा सुबह-सुबह घूमना शुरू किया। घर का अनाज, सब्जी खाने लगा। अब मेरा स्वास्थ्य सही है। सब परिवार ठीक से यहीं रहता है। अब परिवार में आनंद है।

गांव के श्रीधर पूर्व पंचायत समिति सदस्य ने कहा कि पानी के बिना धरती बंजर थी, लोगों ने बंजर भूमि में खनन कार्य करके उसे और ज्यादा खराब कर दिया। उसमें से पत्थर निकाला तथा मलबा आसपास फैला दिया। वह आज भी किसी काम की नहीं है। आगे बताया कि मैंने खनन कार्य शुरू किया और दूर-दूर तक खनन करवाया। उस समय मेरे पास 100 आदमी खनन कार्य करते थे। एक वर्ष में ही मैंने 20 बीघा जमीन जो कि बहुत अच्छी थी उसको अनुपजाऊ बना दिया। लेकिन खनन कार्य से मुझे कोई मुनाफा नहीं हुआ। उसमें से व्यापारी लोगे ही मुनाफा कमा ले गए। मेरे पास केवल 20,000 रुपये खर्चा काटकर बचे। फिर पहली बार पंचायत समिति सदस्य का जिला परिषद् सदस्यों का चुनाव हुआ और मैं पंचायत समिति सदस्य का चुनाव लड़ा तथा जीता। लेकिन पाँच वर्ष तक मैंने कोई क्षेत्र के लिए पानी का काम नहीं किया। उस समय मुझे कोई ज्ञान नहीं था, इसलिए पानी का काम नहीं करवाया और समय के अनुसार चलते रहे। जीवन बहुत कठिनाइयों का सामना किया।

उसी दौरान तरुण भारत संघ जल संरक्षण के बड़े ही सराहनीय कार्य कर रहा था। जिनसे नदी जिंदा हुई, कुएं में पानी आया, ट्यूबवेल में पानी आया तथा सभी के पास खेती होने लगी है। खेती की जमीन को खानों के माध्यम से बर्बाद किया गया, लेकिन अब पानी हो जाने के कारण उसे वापस उपजाऊ जमीन बनाने लगे हैं। अब खेती और पशुपालन बहुत अच्छा हो रहा है।

यहां के जनप्रतिनिधि समाजसेवी बालमुकुंद सवाई ने बताया कि जल का काम सबसे अच्छा काम है। जल ने ही हमारे जीवन को बचा रखा है, वरना यहां से लोग उजड़ रहे थे। इस क्षेत्र से प्रतिवर्ष 100 से अधिक लोग विस्थापित हो रहे थे, लेकिन पानी आ जाने से अब वापस आने लगे हैं तथा उजड़ना बंद हो गया है। आगे बताया कि जब पानी नहीं था, तो मैं भरतपुर चला गया था। लेकिन वहां जाकर पता लगा कि शहर का जीवन नरक-जैसा जीवन है। अब पानी आ जाने से इस गांव में खुशहाली आने लगी है, तो मैं भी यहां वापस आ गया। अब यहां खेती करवाता हूं। लोगों के साथ रामा-श्यामा होती रहती है। कविता के माध्यम से अपनी कहानी सुनाता हूं।

लोगों के मन में लालच आया। जल का उपयोग बढ़ाया-
सूखा कुआ बावड़ी, सूख गए नाले, नदियां।
लोगों ने अनुमान लगाया भूगर्भ में जल भंडार समाया।
हजार हजार फीट बोरवेल कराए, फिर भी पानी ना पाए।
खानों की हुई भरमार, जगह जगह गड्ढे की भरमार।
तरुण भारत संघ का लगा दरबार, जगह जगह करे जल का प्रचार।
तब नदी में पानी आया। फसलों से धन खूब कमाया।
खान के काम को दूर भगाया। जल भंडार को बढ़ाया।
अब हुई चारों ओर जय जयकार।
पानी बहुत बड़ा उपकार। गुरु शिव रामचंद्र।

8.2.4: बाजना

बाजना सबसे प्राचीन गाँव है। ऐसा माना जाता है कि यह गाँव 1000 ईसा के आसपास का बसा हुआ है। यह गाँव कई बार उजड़ा और हर बार फिर बसा। जब-जब संकट खड़ा हुआ, तब-तब यह गाँव उजड़ा, लेकिन कभी भी पूरी तरह से नहीं उजड़ा था। गाँव में 10-20 घर तो हमेशा रहे, जबकि कई बार 500 से 700 तक परिवार भी हुए। सभी जातियों के लोग यहाँ पर बसे इसलिए गाँव एक आदर्श और स्वावलम्बी गाँव के रूप में रहा। इस गांव पर कई बार बाहरी लोगों द्वारा आक्रमण किया गया, लेकिन इसे कोई जीत नहीं सका, इसलिए इस गांव को 'अजीत खेरा' भी कहते हैं।

चित्र 8.5: कोडापुर गांव में तरुण भारत संघ के कार्यकर्ता गाँव-गाँव जाकर ग्रामीणों से संवाद करते हुए

इस गाँव के बीचों -बीच में एक चौक है। पुरानी परम्परा के अनुसार इस चौक में कोई भी महिला जूता-चप्पल पहनकर नहीं निकलती, और यदि इस चौक में किसी महिला का गहना (आभूषण) गिर जाए, तो उसको उठाया नहीं जाता, और यदि वह महिला स्वयं उसे उठा ले जाती है, तो एक वर्ष की अवधि में उसकी मृत्यु हो जाती थी; इसलिए कोई भी महिला अपने गहने को नहीं उठाती थी। यहाँ पर देव भगवान यानी देव नारायण भगवान का मंदिर है। दूर-दूर से लोग इसके दर्शन करने के लिए आते हैं। यहाँ चैत्र वदि दूज को दंगल लगता है, जिसमें कुश्ती की प्रतियोगिता होती है, जिसको 'डगा' कहते हैं। होली के दिन यहां आसपास के सभी गाँवों के लोग 'होलिका दहन' के लिए आते हैं। होली दहन के दूसरे दिन धुलेंडी होती है। इसमें आसपास के सभी लोग परस्पर रंग लगा कर धुलेंडी (होली) खेलते हैं। इस गाँव में एक 'बाबू महाराज का मंदिर' भी है, जिसका मेला भादौ सुदि दूज को लगता है। वर्तमान में इस गाँव में 30-40 परिवार रहते हैं।

गाँव की कहानी सुनाते हुए इस गाँव के देव नारायण जी के महंत श्री दीवानगिरी जी ने बताया कि यह गाँव आसपास के अन्य सभी गाँवों का आस्था का केंद्र है। कोई भी समाज-सुधार, लड़ाई-झगड़े अथवा चोरी-डकैती की वारदात हो जाने पर न्याय-फैसला यहीं पर होता है, यदि कोई भी पक्ष बात को नहीं मानता, तो उसको समाज से बहिस्कृत कर दिया जाता है। दूर-दूर तक के चोरी-डकैती के महत्वपूर्ण न्याय-फैसले भी यहाँ पर ही सुलझाए जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि कोई व्यक्ति किसी के यहाँ चोरी कर लेता है तो उसकी पंचायत होती है। पंचायत में दो पक्ष होते हैं, एक पक्ष जो चोरी करता है, दूसरा पक्ष जिसके यहाँ चोरी होती है। यदि चोरी करने वाला पक्ष पंचायत में चोरी करना कबूल नहीं करता तथा न ही उसके पास चोरी का सामान पकड़ा जाता है तो उस स्थिति में दूसरा पक्ष जिसके चोरी होती है, उसको किसी ने सही सूचना दी हो या सूचना देने के पैसे लिये हों तो पंचों के सामने संकट बड़ा हो जाता है। एक पक्ष कहता है कि इसमें मेरी चोरी की है और दूसरा पक्ष कहता है कि मैंने ऐसी चोरी नहीं की है। दोनों ही अपनी-अपनी बात पर अड़ जाते हैं तो इस स्थिति में पंच फैसला करते हैं कि चोरी करने वाले व्यक्ति को धर्म देना होगा तथा जितनी चोरी हुई है वह किसी व्यक्ति का धर्म मांगता है।

इस बात पर दोनों पक्ष सहमत हो जाते हैं तो पहले जिस व्यक्ति का धर्म मांगा गया वह व्यक्ति चोरी भरने वाले व्यक्ति से इसी बजाने के चौक में धर्म लेता। धर्म वह होता कि धर्म देने वाला व्यक्ति उस देवता से कहता है कि मैंने इसकी भैंस चोरी की हो या किसी प्रकार का सुन भेड़ हो तो मुझे वह चोरी या मेरे साथ बुरी घटना घटित हो। इसमें 9 और 13 दिन का करार होता है। इस बीच में धर्म देने वाले व्यक्ति के साथ या धर्म लेने वाले व्यक्ति के साथ कोई घटना घटित होती है, तो जिसके साथ गलत घटना- जैसे पशु का मरना या कोई मानव जनित दुर्घटना घटित होती है, तो उसी को अपराधी मान लिया जाता है। यहाँ पर धर्म देने के लिए दूर-दूर से लोग आते

हैं और ऐसी मान्यता है कि दोनों पक्षों में से जो गलत होता है उसको यह देवता दण्डित करता है। इसलिए धर्म देने वाले को और धर्म लेने वाले लोगों को यहाँ के लोग बहुत समझाते हैं तथा 80 प्रतिशत मामले तो बिना धर्म के ही यहाँ पर सुलझ जाते हैं। गलती करने वाला व्यक्ति अपनी गलती कबूल कर लेता है तथा लोगों को न्याय मिल जाता है।

महात्मा दीवानगिरि जी ने बताया कि मैंने सैकड़ों बार ऐसे मामले सुलझाए हैं। आगे कहा कि ऐसे मामले जब नदी सूखी हुई थी तथा लोगों को रोज़गार समाप्त हो गया था, तब बहुत होते थे। जब से नदी पुनर्जीवित हुई है, तब से ऐसे बहुत कम झगड़े यहाँ पर आते हैं। अब मैं शांति से रहता हूँ तथा भजन करता हूँ। आगे बताया कि अब मुझे कोई चिंता नहीं है।

बाबा खंडपुरा ने बताया कि मेरी 20 वर्ष की उम्र यहीं पर बीती है। मैंने इस चौक का जीर्णोद्धार कराया, मंदिरों का विस्तार कराया तथा बड़ी-बड़ी पंचायतों के माध्यम से इस मंदिर को बनाने के लिए पैसा इकट्ठा किया है। सुरेश पंडित श्रीमी कुशवाहा ने बताया कि गाँव के भान सिंह पंच ने कहा कि गाँव के चौक में इस अमरा बाबा का प्रसिद्ध मंदिर है। इसकी कहानी सुनाते हुए कहा कि चौक में एक ट्यूबवेल पानी के लिए भी कराई थी।़ उसमें से कोई व्यक्ति रात के समय मोटर चोरी कर ले गए थे, जब उनके घर पहुंचे तो शेर दिखने लगा। उनको सोने नहीं दिया। तब वे लोग उस मोटर को वे वापस रात में डाल गए। तभी जाकर शांति मिली।

यहां से बहुत सारे लोग उजड़ कर चले गए। क्योंकि लोग खेती करते थे और खेती के लिए पानी नहीं था, खेती में खूब लागत लगाते थे, लेकिन पानी के अभाव में पैदावार बहुत कम होती थी। लागत अधिक लगती, इसलिए कजऱ् हो जाता था। इस कर्ज की मार से बचने के लिए अधिकांश लोग अपने-अपने खेतों को बेचकर चले गए।

अब तरुण भारत संघ के अथक प्रयासों से हमारी नदी पुनर्जीवित हो गई है। कुओं और ट्यूबवैल में पानी आ गया है। सभी के पास अच्छी खेती होती है तथा पशुपालन अच्छा होता है। पहले जब खेती तो होती ही नहीं थी, खनन कार्य से ही परिवार चलाते थे। पशु थे, जिन्हें वर्ष में आठ महीने गांव में रखते तथा चार महीने पशु चराने के लिए बाहर चले जाते थे। अब नदी में ऊपर से पानी आया तो पुनः खेती होने लगी है। अब खेती में तीनों फसलें होती हैं। सब खर्चे को काट कर मेरे पास 15 बीघा जमीन में 7-8 लाख रुपए की आमदनी हो जाती है। इसके अलावा दो से तीन लाख रुपए का दूध बेच देते हैं। अब हमारे पास किसी प्रकार की कमी नहीं है। गर्मी में हरा चारा हो जाता है। पशु बारह महीने घर पर ही रहते हैं। परिवार शांतिमय जीवन जी रहा है।

रणवीर कुशवाहा ने बताया कि पहले हमारे गांव में 40 परिवार कुशवाहा जाति के थे। हमारा जीवन खेती पर ही निर्भर रहता था। खनन के कारण जंगल बर्बाद हो गया, वर्षा कम होने लगी तो खेती पर संकट आया, और 30 परिवार यहां से बाहर चले गए। केवल हम तीन भाइयों के तीन परिवार यहां रहे। हमने कुछ समय खान पर काम किया और फिर बाहर काम किया। नदी में पानी आने से सभी कुओं का जलस्तर ऊपर आ गया है। खेती कम है लेकिन खेती में सब्जी की फसल करते हैं। तीनों फसलों में सब्जी ही करते हैं।

आगे बताया कि हमारे परिवार में 10 सदस्य हैं। सभी मिलकर खेती का काम ही करते हैं। प्रति फसल पर एक से दो लाख रुपए की सब्जी हो जाती है। अब परिवार का कोई सदस्य बाहर नहीं जाता। घर खर्च के लिए दूध वाली एक भैंस रखते हैं, जिससे परिवार के सदस्यों को घी, दूध, दही, छाछ मिल जाती है। अब पूरा परिवार सुखी व प्रसन्न है।

सुरेश शर्मा ने बताया कि, यहां सभी ब्राह्मण चले गए, केवल मेरा घर ही यहां रहा। यहां केवल परम्परागत यजमानी का काम ही था, लोगों के विवाह आदि में ही काम पड़ता था, लोग बड़ी मुश्किल से 50 या 100 रुपये दक्षिणा दे पाते थे, क्योंकि जल संकट के कारण उनके पास खेती नहीं होती थी। पैसे की कीमत बहुत थी। आज सभी के पास खेती, पशुपालन दोनों से आय बढ़ी है। अब एक-एक किसान 5000 से 10,000 तक दक्षिणा दे देता है। अब काम करने में मन लगता है। अब सभी लोग अपने आप दक्षिणा देते हैं, किसी से मांगना नहीं पड़ता। अब खुशहाली है।

8.2.5: परौगा

कोटवाली नदी 15 किलोमीटर चलने के बाद परौगा गाँव पहुँचती है। यह गाँव बहुत बड़ा है, यहां ग्राम पंचायत मुख्यालय भी है। इस गाँव से कैला देवी-आगरा हाईवे गुजरता है। गाँव में सभी जातियों के लोग निवास करते हैं, लेकिन अधिकतर गुर्जर समुदाय के लोग रहते हैं। इस गाँव में एक रियासतकालीन परौगा बांध बना है, जिसमें पानी भरने से आसपास के गाँव का भू-जल स्तर बना रहता था। इस तालाब में परौगा गाँव की जमीन डूब में आती है, इसलिए गाँव के लोग दीपावली पर इसका पानी निकाल देते थे और फिर खेती करते थे। निकाले हुए पानी को लोग नीचे के गाँव में काम में लेते थे। नदी में पानी ऊपर से आता रहता था, जिससे दोनों फसलें कमा लेते थे। लेकिन जैसे ही बरसात होती, वैसे ही पानी, वर्षा और तेज़ बहाव के कारण पानी तालाब में आता तथा केवल एक फसल ही किसान के ले पाता था। क्योंकि पानी को निकालना पड़ता एवं अन्य पानी फसल में नहीं लग पाता और फसल कमजोर रहती। गर्मी की फसल तो किसान कर ही नहीं पाता था।

चित्र 8.6: पोखर पर ही ग्रामीण पोखर के निर्माण कार्य का हिसाब-किताब करते हुए

गाँव के सुनहरी पटेल ने बताया कि हमारा बड़ा गाँव था। गाँव में आपस में आए दिन लड़ाई-झगड़े होते रहते थे। छोटी-छोटी बातों को लेकर लोग आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे। बाहर के लोगों से झगड़ा करना विशेष आदत रही। मैं भी सबसे अधिक लड़ाई-झगड़े, वारदात करने वाला व्यक्ति था। ये लड़ाई-झगड़े इसलिए होते थे कि उस समय हमारे अंदर बंध नहीं था। आगे बताया कि आज मेरी उम्र पचहत्तर वर्ष हो गई है। अब मैं उसकी तह में जाना चाहता हूँ तो लगता है, सबसे अधिक लड़ाई-झगड़े पानी के अभाव के कारण ही होते थे। क्योंकि गाँव बड़ा था, गाँव में बरसाती फसल जो कि कम लागत वाली फसल होती है, वह पानी भरने से नहीं होती थी। तालाब में से पानी निकलता तो रबी की फसल बोने में भी समय लगता, तब तक बुवाई का समय निकल जाता। इसलिए समय पर फसल की बुवाई नहीं हो पाती थी, फलस्वरूप पैदावार बहुत कम होती थी। अधिकतर गेहूं की फसल करते थे, जिसमें कि दस-बारह किं्वटल गेहूं हो जाता था।

दूसरा कारण जो रहा वह यह था कि गाँव में परिवार (घर) अधिक थे, सब के कम ही पैदावार होती थी। पानी से खेत डूबने से उनकी मेड़ दूर से साफ नहीं दिखने से विवाद खड़ा हो जाता था। इसलिए खेती पर लोगों का ध्यान कम था। गाँव में सभी लोग खान के ठेकेदार थे, जो खनन कार्य करते थे। खानों का काम बढ़ गया कि सारा जंगल लोगों ने खोदकर बर्बाद कर दिया। जिससे पशुपालन पर संकट खड़ा हो गया। खेती का तो संकट था ही, यह दूसरा संकट पशुपालन का खड़ा हो गया। तब लोग कमजोर वर्ग के लोगों को सताने लगे। उन से खानों में काम करवाते तथा

मजदूरी भी पूरी नहीं दी जाती थीं। इस तरह से लोगों के गलत व्यवहार के कारण लोग उजड़ने लगे तथा गाँव से पांच सौ के आसपास परिवार उजड़ते गये। आज से दस वर्ष पहले तक लोग पलायन करते रहे।

अब तरुण भारत संघ के सहयोग से पानी का काम हुआ, तो नदी के क्षेत्र में तालाब, पोखर बनने लगे हैं। जिसके कारण पानी धरती के गर्भ में भरता है और वह दरारों के माध्यम से नदी में निकलता है। इसलिए अब नदी में बारहों महीने पानी बहता रहता है। आगे बताया कि इस नदी के बहाव के कारण अब गाँव में दो फसलें होने लगीं हैं। पहली रबी की फसल होती है जिसमें गेहूं, सरसों, जौ व चना आदि होती है। दूसरी गर्मियों में जायद की फसल होती है। इस फसल में किसान सब्जी, मूंग तथा हरा चारा करता है। इस नदी के जिंदा होने से फसल होने लगी है तथा फसल होने से पलायन रुका है एवं लड़ाई-झगड़े कम हुए हैं। यह अनुभव मैं स्वयं कर रहा हूँ। आज मेरे पास भी खूब पैदावार हो रही है।

गाँव के भगवान सिंह ठेकेदार ने बताया- ''हमारा पूरा जीवन खानों में काम करते ही निकल गया, क्योंकि खेती में कुछ होता नहीं था। दूर-दूर से खनन मजदूरों को लाकर खानों में काम करते थे। खानों में जो बचत होती थी, उससे लाभ तो बिचौलिया, बनिया और व्यापारी ले लेते थे। हमने तो अपना ही जंगल बर्बाद किया और शरीर को बर्बाद किया। पत्थर के काम से इस क्षेत्र में कोई धनवान नहीं बना। क्योंकि पुरानी कहावत है कि खान तो पत्थर की नाव है, यदि सही तरीके से चलाया तो पार हो जाएगी, वरना डूब जाएगी। लेकिन अधिकतर ठेकेदारों ने खनन मजदूरों के साथ बेईमानी की, उसका परिणाम यह रहा कि आज कोई भी ठेकेदार पैसे वाला नहीं है। सारे पहाड़ों को बर्बाद कर दिया। जो पहाड़ प्रतिदिन हमारी आजीविका के लिए कुछ न कुछ देते रहते थे, वे ही पहाड़ आज नंगे खड़े हैं। हमने ही उनको बर्बाद कर दिया है। कहावत है कि मुर्गी जब तक सोने का अंडा देती रही, तब तक हम उससे सोने का अंडा लेते रहे। हमारे अंदर लालच का भूत सवार था। जो पहाड़ हमारी मवेशी (पशुओं) के रक्षक थे, जिनसे हमें लकड़ी व जड़ी बूटियां मिलती थी और जो पेड़ पौधे हमारे काम आते थे, उनसे हमारा जीवन सही चल रहा था। आज हम सब कुछ लुटा चुके हैं। लेकिन तरुण भारत संघ के सहयोग से किये गये कार्यों के करण नदी में ऊपर से पानी की आवक होने की वजह से अब हमारे खेतों में फसल होने लगी है, भूजल स्तर बढ़ा है, जिससे पशुपालन में वृद्धि हुई है। लोगों के पास दूध, घी होने से आय बढ़ी है। फलदार पेड़ व सब्जी करने से भी आय होने लगी है। पशुओं के गोबर से, जंगल भी पुनः वापस आबाद होने लगा है।

पूरी तरह से जंगल आबाद होने में अभी बहुत समय लगेगा; क्योंकि मिट्टी नीचे दब गई है तथा पत्थर का मलबा ऊपर आ गया है। इस समय एक खतरा आने वाली पीढ़ी को पुनः लग रहा है कि सीमेंट और कंक्रीट ने सभी जमीन पर अपने पैर पसार

दिये हैं। इसकी वजह से धरती के अंदर पानी ही नहीं जाता, इसलिए पानी का संकट पुनः खड़ा हो सकता है। इसकी वजह से बहुत सारे पेड़ सूख रहे हैं।

8.2.6: ओखरलियापुरा

कोटवाली नदी ओखरलियापुरा गाँव में भरतपुर की सीमा में पहुँच जाती है। यह गाँव पहाड़ी पर बसा है। गाँव के नीचे से नदी गुजरती है। नदी के सहारे खेती योग्य ज़मीन है। आज से दस वर्ष पहले नदी एक नाले के रूप में तब्दील हो गई थी। चूँकि नदी सूख गई थी, इसलिए जिन लोगों के खेत नदी के किनारे पर थे, उन्होंने नदी की सीमा में ही खेत बनाना शुरू कर दिया। नदी केवल नाम-भर की रह गई। अब तरुण भारत संघ के सहयोग से गांव के लोगों ने जल संरक्षण के काम किये तो नदी पुनर्जीवित हो गई है। नदी में पानी आया है तो लोगों ने नदी की सीमा में ही खेती करना शुरू कर दिया है।

चित्र 8.7: अब गांव में पशुओं के लिए पर्याप्त चारा है, जिससे पशुपालन भी बढ़ा

ग्रामीणों ने बताया कि एक समय ऐसा भी आया, जब सम्पूर्ण गाँव पूर्ण रूप से खानों के काम पर ही निर्भर रह गया था। जब खेती के लिए जमीन में पानी नहीं रहा, तो खेतों में अनाज व पशुओं के लिए चारे का संकट होने लगा। इसलिए पशुपालन भी कम हो गया। पहले जब नदी जिंदा थी, तो खेती बहुत अच्छी होती थी तब यह पूरा क्षेत्र पशुपालन की दृष्टि से समृद्ध क्षेत्र था। लेकिन नदी पर जैसे ही संकट आया, कुओं और ट्यूबवेलों का पानी सूख गया तथा फसल कम होने लगी। जब पशुपालन कम हुआ तो लोगों के खान-पान में भी कमी आ गई। यह पूरा क्षेत्र जो कि अरावली पर्वतमाला के ही अंग थे, उनको खानों में परिवर्तित कर दिया गया। पहाड़ों से अंधाधुंध पत्थर निकालने का काम शुरू हुआ। इसलिए गाँव में बाहर के तथा स्थानीय ठेकेदार भी बहुत आ गये। ठेकेदारों द्वारा बाहर के खान मालिक मजदूरों से खानों में काम करवाते, लेकिन उन्हें मजदूरी कम देते थे।

इसी गाँव के हरचंदी ने बताया कि ''मैं भी खानों में ठेकेदार बन गया था। खानों में हम खान मालिकों से साठ रुपया प्रति सौ घन फिट में ठेका लेते थे और मजदूरों को तीस रुपया प्रति सौ घन फिट देते थे। जबकि खान मालिक खरीददार ग्राहक से पांच सौ रुपया प्रति सौ घन फिट वसूलते थे। इस प्रकार से गणना की जाए तो पता चलता है कि व्यापारी (खान मालिक) जितने काम से 500 रुपये कमा लेता था, उसमें से मजदूर को केवल तीस रुपये ही देता था। पत्थर निकालने का काम हमारी खदानों में मजदूर करता था, जिसकोे हम कम मजदूरी देते थे, और व्यापारी के साथ हम जहाँ पर बेचते थे, वहां हम पहले ही तय करके आते थे और उनसे मजदूरों के लिए पैसा भी पहले ही ले आते थे। हम ठेकेदार लोग और व्यापारी इसका सौदा तालपुर महाजनों से करते थे। ये महाजन हमको पहले ही कम दर पर पैसा दे देते थे। उस पैसे को हम मजदूर, जिनको हम खनिया बोलते हैं, उनको काम करने के बाद दे देते थे। कभी-कभी ऐसा होता कि यह पैसा हम मजदूरों को पहले ही पेशगी में दे देते थे। वे खनन काय्र करते थे, उन दिनों मशीनरी नहीं होतीथी, तब खान के मलवे को साफ करने का काम मजदूर अपने वह सिर से ढो कर ही करते थे। पहले वे झराई करते थे, झराई करते-करते महीनों हो जाते थे और जब वे जमीन में पत्थर तक पहुंचते तो कभी-कभी वह खराब भी हो जाता था। ऐसे में वह श्रम निरर्थक हो जाता था। तब उनका जो पहले लिया गया पैसा था वह नहीं चुकता और, वे काम छोड़ कर भग जाते थे।

इस तरह धीरे-धीरे वे लोग अपने-अपने खेतों को छोड़कर शहरों की तरफ भाग गए। इस प्रकार इस क्षेत्र में हजारों की तादाद में गरीब लोग अपनी-अपनी जमीनों को छोड़कर भाग गए। जिन पर खान मालिकों ने कब्जा कर लिया, जो आज भी उनके पास है। खनन करने से उपजाऊ जमीन अनुपजाऊ स्थिति में तब्दील हो गई, जिससे उस पर कोई फसल नहीं हो सकती थी। पहाड़ों का स्वरूप भी पूरा बदल गया। जंगल भी पूरा बर्बाद हो गया तथा लोग उजड़ने की स्थिति में हो गए।'' हरचन्दी ने आगे बताया कि जब तरुण भारत संघ ने इस नदी क्षेत्र में काम किया तो नदी में पानी आ गया, तब लोग वापस अपनी-अपनी खेती की ओर आने लगे और जो जमीन खराब हो गई थी, उसे पुनः उपजाऊ बनाने में लग गए। इस नदी के जीवन से हजारों जंगल बचे, हमारी पहाड़ियां वापस पुनर्जीवित होने लगीं, उनका संरक्षण होने लगा और अब लोग अच्छे से अपना जीवन चलाने लगे हैं।

आज हम सोचते हैं कि जब हम खानों के ठेकेदार थे, उस समय अपना मकान भी नहीं बना पाए। पर आज हमें फसल व पशुपालन से बहुत अच्छा पैसा मिल रहा है। जिससे हम मकान बना रहे हैं, महिलाओं के लिए गहने बनवा रहे हैं, अच्छा खान-पान है। अब स्वास्थ्य भी अच्छा है तथा कुछ लोग जो परेशान होकर यहां से शहरों की तरफ चले गए थे, वे वापस गांव की तरफ लौटने लगे हैं। अब यह गांव एक बहुत

ही समृद्ध और शांतिमय गांव की श्रेणी में आ गया है। अब सब लोग संगठित हैं। ये सब जल संरक्षण कार्यों के कारण ही हुआ है।

8.2.7: खेरटपुरा

गाँव खेरटपुरा, ग्राम पंचायत जम्मूरा, तहसील मासलपुर, जिला करौली (राजस्थान) का एक छोटा-सा गाँव है। यह तहसील मुख्यालय मासलपुर से लगभग 13 किलोमीटर उत्तर दिशा में स्थित है। गाँव में लगभग 200 परिवार निवास करते हैं, जिनमें 125 परिवार गुर्जर समुदाय तथा 75 परिवार बरगी समुदाय के हैं।

चित्र 8.8: अब गांव में मनरेगा द्वारा पोखर निर्माण कार्य तेज़ी से प्रगति पर

लगभग आठ वर्ष पहले इस गाँव में पानी की गंभीर समस्या थी। लोगों का मुख्य व्यवसाय खनन, पशुपालन तथा वर्षा आधारित खेती था। पशुपालन में गाय, भैंस, बकरी और भेड़ प्रमुख थीं। खेती पूरी तरह वर्षा पर निर्भर थी। बरसात में बाजरा और तिल की फसल होती थी, जबकि सर्दियों में सरसों, चना, जौ और गेहूँ बोए जाते थे। गर्मी के मौसम में पानी के अभाव में कोई फसल नहीं होती थी। लोगों को वर्षभर कठिन परिश्रम करने के बाद भी मात्र 30 से 40 हजार रुपये की आय हो पाती थी। गाँव के अधिकांश लोग खनन कार्य में लगे रहते थे, जहाँ मकानों की छतों के लिए पत्थर की पट्टियाँ निकाली जाती थीं। इसी कारण लोगों के पास सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए समय नहीं बचता था।

खेरटपुरा को कोटवाली नदी का उद्गम स्थल भी माना जाता है। गाँव में दो प्रमुख देवस्थल हैं। पहला देवला भारस देव का मंदिर है, जिन्हें गुर्जर समुदाय अपना प्रमुख देवता मानता है। ऐसी मान्यता है कि यदि किसी व्यक्ति को सर्प काट ले तो भारस देव उसकी विष-बाधा दूर करते हैं। दूसरा देवस्थान पशुओं की उन्नति और प्रजनन से जुड़ा है। जब किसी पशु का गर्भधारण नहीं होता था, तब लोग यहाँ पूजा-अर्चना

और जात चढ़ाकर मनौती करते थे तथा विश्वास करते थे कि इससे पशुओं की संख्या और उत्पादन में वृद्धि होती है।

गाँव के किसान अमीर देवीराम बताते हैं कि उनके पास 20 बीघा भूमि थी। खेत में कुआँ तो था, लेकिन उसमें केवल पीने योग्य पानी था, सिंचाई के लिए पर्याप्त पानी नहीं होने के कारण पूरी भूमि बंजर पड़ी रहती थी। परिवार में लगातार झगड़े और आर्थिक तंगी बनी रहती थी। बाद में उनके पुत्र जितेंद्र सरपंच बने। इसी दौरान तरुण भारत संघ द्वारा गाँव में जल संरक्षण का कार्य प्रारम्भ हुआ। इसके परिणाम देखकर उन्होंने भी अपनी ओर से बहरे की पोखर का निर्माण कराया, जिसमें उन्होंने स्वयं लगभग एक लाख रुपये का योगदान दिया।

पोखर बनने के बाद पहली बार उनकी पूरी 20 बीघा भूमि पर दो फसलें होने लगीं। खरीफ में बाजरे की फसल से लगभग 80 क्विंटल उत्पादन हुआ, जिसकी कीमत लगभग 1.60 लाख रुपये थी। रबी में 10 बीघा में सरसों और 10 बीघा में गेहूँ की खेती की गई। इससे लगभग 50 क्विंटल सरसों और 100 क्विंटल गेहूँ का उत्पादन हुआ, जिनकी बिक्री से लगभग चार लाख रुपये प्राप्त हुए।

अमीर देवीराम के पास 20 भैंसें हैं। पहले उन्हें चार महीने तक पशुओं को चराने के लिए पलायन करना पड़ता था, लेकिन अब इसकी आवश्यकता नहीं रही। उनकी आठ भैंसें दूध देती हैं, जिनसे प्रतिवर्ष लगभग पाँच लाख रुपये की आय होती है। इस प्रकार खेती और पशुपालन से उनकी वार्षिक आय लगभग 10.60 लाख रुपये तक पहुँच गई। उनका कहना है कि पोखर निर्माण में लगाया गया एक लाख रुपये का निवेश उन्हें पहले ही वर्ष कई गुना लाभ देकर लौट आया। अब कुएँ में भरपूर पानी रहता है, इंजन दिन-रात चलता है, परिवार के बच्चे पढ़ाई कर रहे हैं, मकान बन चुका है और उनकी पत्नी पंचायत समिति की सदस्य भी बन गई हैं।

इसके बाद शेरावाली पोखर का निर्माण किया गया, जिसमें पाँच परिवार साझेदार हैं। इस पोखर में लगभग दो करोड़ लीटर पानी संग्रहित होता है। जब इस पोखर का निर्माण प्रारम्भ हुआ था, तब इन परिवारों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति अत्यंत खराब थी। परिवार आपसी विवादों में उलझे रहते थे, लोग उनसे दूरी बनाए रखते थे और युवाओं की पहचान भी नकारात्मक थी। उस समय जजापुर के महाराज सिंह और शीशराम सहित तरुण भारत संघ के कार्यकर्ताओं ने उन्हें समझाया और जल संरक्षण के लिए प्रेरित किया। धीरे-धीरे इन परिवारों का जीवन बदलने लगा।

इस पोखर के लाभार्थी साहब सिंह गुर्जर बताते हैं कि पहले पानी के अभाव में खेती संभव नहीं थी। खनन कार्य में भी डकैतों का भय बना रहता था और पशुओं को बाहर चराने ले जाने पर दूसरे किसानों से रोज विवाद हो जाते थे क्योंकि पशु उनकी

फसलें खराब कर देते थे। परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि कई बार हाथ में लाठी उठानी पड़ती थी। पोखर बनने के बाद उनकी छह बीघा भूमि पर नियमित खेती होने लगी। चार बीघा में गेहूँ और दो बीघा में सरसों की खेती होती है। उनके पास दस भैंसें हैं, जिनसे प्रतिवर्ष लगभग तीन लाख रुपये के दूध की बिक्री होती है। वे बताते हैं कि अब उन्होंने सभी गलत कार्य छोड़ दिए हैं और खेती तथा पशुपालन से सम्मानपूर्वक जीवनयापन कर रहे हैं। परिवार में शांति है और सभी सदस्य रोजगार से जुड़े हुए हैं। तीसरी घोड़े की पोखर बरगी समुदाय की ढाणी में बनाई गई। बरगी समुदाय के लगभग 70 परिवारों के पास पानी का कोई स्थायी स्रोत नहीं था। उन्हें दूसरे समुदाय के लोग अपने जलस्रोतों से स्वयं और पशुओं के लिए पानी लेने नहीं देते थे। पानी की कमी के कारण उनका जीवन अत्यंत कठिन था। वे पशुपालन, जंगलों से जड़ी-बूटियाँ एकत्र करने तथा अन्य क्षेत्रों में खेती की रखवाली कर मजदूरी करके परिवार चलाते थे।

तरुण भारत संघ ने इस स्थिति को समझते हुए घोड़े की पोखर का निर्माण कराया। आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण ये लोग अपनी हिस्सेदारी की राशि नहीं दे सके, इसलिए उन्होंने स्वयं श्रमदान किया। मशीनों के बजाय हाथ से मिट्टी खोदकर पोखर बनाई गई। श्रमदान के साथ उन्हें मजदूरी भी दी गई, जिससे विशेषकर कोरोना महामारी के समय उन्हें रोजगार मिला। पोखर बनने के बाद खेती और पशुपालन दोनों के लिए पानी उपलब्ध हुआ तथा उनके जीवन में स्थायी परिवर्तन आया। आज ये परिवार सम्मानपूर्वक और संतोष के साथ अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यह पूरी कहानी गाँव के निवासी विजेंद्र बरगी द्वारा सुनाई गई, जो जल संरक्षण के माध्यम से आए सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय परिवर्तन की सशक्त मिसाल प्रस्तुत करती है।

8.2.8: खड़ैयापुरा

खड़ैयापुरा गाँव का नाम इसके संस्थापक खड़ैया वंश के लोगों के नाम पर पड़ा। यह गाँव बाजना से आए आमर खड़ैया परिवारों द्वारा बसाया गया था। वर्तमान में यहाँ लगभग 35 परिवार निवास करते हैं। एक समय यह गाँव समृद्ध और संपन्न माना जाता था। गाँव में जगन खड़ैया, श्यामा खड़ैया और चरण खड़ैया जैसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों का बड़ा नाम था। विशेष रूप से जगन खड़ैया लंबे समय तक बयाना पंचायत समिति के प्रधान रहे और उन्होंने गाँव का नाम रोशन किया। हालांकि, उनके सरपंच और प्रधान रहते हुए भी जल संरक्षण पर कोई विशेष कार्य नहीं हुआ। परिणामस्वरूप कोटवाली नदी सूख गई, गाँव के कुओं और जलस्रोतों का जलस्तर गिर गया तथा पानी का गंभीर संकट उत्पन्न हो गया। धीरे-धीरे आधे से अधिक परिवार गाँव छोड़कर अन्य स्थानों पर बस गए और गाँव लगभग उजड़ गया।

बाद के वर्षों में जब कोटवाली नदी पर जल संरक्षण कार्य हुए और नदी में फिर से पानी बहने लगा, तब कुओं और ट्यूबवेलों का जलस्तर बढ़ा। पानी की उपलब्धता के साथ ही गाँव से पलायन कर चुके अधिकांश परिवार वापस लौट आए और खड़ैयापुरा फिर से बसने लगा।

ग्रामीण श्यामलाल अपनी कहानी सुनाते हुए बताते हैं कि जब गाँव में जल संकट बढ़ा तो परिवारों के बीच बँटवारे और जमीन को लेकर विवाद शुरू हो गए। उनके पिता श्याम सिंह दूरदर्शी और भविष्य का आकलन करने वाले व्यक्ति माने जाते थे। वे विवाह-मुहूर्त निकालने के साथ-साथ लोगों के भविष्य के बारे में भी सलाह देते थे। एक दिन उन्होंने अपने तीनों बेटों को बुलाकर कहा कि भविष्य में इस गाँव में रहना कठिन हो जाएगा क्योंकि पानी का संकट बढ़ेगा और आपसी झगड़े होंगे। उन्होंने सलाह दी कि समय रहते कहीं और भी जमीन खरीद ली जाए। पिता की सलाह पर परिवार ने सिगनपुर में लगभग 20 बीघा भूमि खरीद ली।

चित्र 8.9: जल संरक्षण में सामुदायिक सहभागिता का ग्रामीणों को प्रशिक्षण देते मनरेगा के कार्यकर्ता

कुछ वर्षों बाद लगातार सूखे और अकाल की स्थिति बनने लगी। खेती और पशुपालन दोनों प्रभावित हुए तथा पीने के पानी का संकट गहरा गया। पानी की कमी के कारण गाँव में आपसी विवाद बढ़ते गए। परिणामस्वरूप कई परिवार गाँव छोड़कर भरतपुर जिले के उच्चौन तथा कुछ परिवार सिगनपुर चले गए। उच्चौन में भी जमीन को लेकर विवाद हुआ, जिसमें एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई। इसके बाद कई परिवार रिश्तेदारों के यहाँ शरण लेने को विवश हो गए।

श्यामलाल आगे बताते हैं कि सिगनपुर में रहने के दौरान भी ग्राम पंचायत से जुड़े विवाद, अधिक संतान तथा कथित फर्जी कार्यों को लेकर झगड़े होते रहे और कई बार मारपीट की नौबत आई। इसी दौरान तरुण भारत संघ द्वारा कोटवाली नदी पर छोटी-छोटी जल संरचनाओं का निर्माण कराया गया। इन प्रयासों से नदी पुनर्जीवित हुई और जलस्तर बढ़ने लगा। जैसे ही नदी में पानी आया, गाँव छोड़ चुके परिवार धीरे-धीरे वापस लौट आए। आज गाँव में पानी की कोई कमी नहीं है। सभी किसान नियमित खेती कर रहे हैं और पशुपालन भी बढ़ा है।

श्यामलाल के पास लगभग 10 बीघा भूमि है। वर्षा ऋतु में वे बाजरे की खेती करते हैं, जिससे प्रतिवर्ष लगभग 40 से 50 क्विंटल उत्पादन होता है तथा पशुओं के लिए पर्याप्त चारा भी मिल जाता है। रबी के मौसम में वे गेहूँ, सरसों, चना और हरा चारा उगाते हैं। लगभग पाँच बीघा में गेहूँ से 60 से 65 क्विंटल उत्पादन होता है, चार बीघा में सरसों से लगभग 25 क्विंटल उपज मिलती है तथा एक बीघा में हरा चारा बोया जाता है। उनके पास 15 भैंसें, 30 गायें और 50 बकरियाँ हैं, जिनसे प्रतिवर्ष लगभग पाँच लाख रुपये की आय होती है। वे बताते हैं कि आज परिवार में शांति है, सभी बच्चों का विवाह हो चुका है, बहुएँ और पोते-पोतियाँ परिवार में हैं तथा सभी सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

ग्रामीण हंसा अपनी कहानी सुनाते हुए बताते हैं कि पानी की कमी के कारण गाँव में कई बार झगड़े हुए और उन्हें गाँव छोड़कर उच्चौन तथा बाद में धौलपुर में लगभग बीस वर्ष तक रहना पड़ा। जब कोटवाली नदी में पुनः पानी आया और भूजल स्तर बढ़ा, तब वे अपने गाँव लौट आए। अब खेती और पशुपालन दोनों बढ़ गए हैं। परिवारों में शादियाँ हो रही हैं, सभी लोग अपने-अपने कामों में व्यस्त हैं और किसी के पास बेकार बैठने का समय नहीं है। दूध का व्यवसाय भी अच्छी तरह चल रहा है क्योंकि सभी लोग डेयरियों को दूध बेचते हैं और उचित मूल्य प्राप्त करते हैं। वे याद करते हैं कि पहले क्षेत्र में डकैतों का आतंक था। लूटपाट, चोरी और मारपीट आम बात थी, जिससे पूरा इलाका बदनाम था। लेकिन अब पानी और रोजगार मिलने से लोगों ने हथियार छोड़कर खेती और पशुपालन को अपनाया है। उनके अनुसार यह परिवर्तन जल संरक्षण के कारण संभव हुआ है।

ग्रामीण अजब सिंह बताते हैं कि पानी की कमी के कारण उनका परिवार भी सिगनपुर चला गया। वहाँ कुछ जमीन खरीदी, लेकिन आर्थिक तंगी के कारण चारागाह पर अतिक्रमण करना पड़ा। इससे आसपास के गाँवों के लोगों से विवाद बढ़े और कई बार लाठी-डंडे चले। मुकदमों में समय और धन दोनों खर्च होने लगे। इन्हीं परिस्थितियों में उन्होंने सरकारी योजनाओं और सूचना के अधिकार के बारे में जानकारी प्राप्त की। उन्होंने पंचायत और सरकारी कार्यों से संबंधित सूचनाएँ

निकालनी शुरू कीं तथा जनहित याचिकाएँ दायर कीं। इसी क्रम में उन्होंने जम्मूरा ग्राम पंचायत के तत्कालीन सरपंच के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही भी की, जिससे दोनों पक्षों में विवाद बढ़ा और मारपीट तक की स्थिति बनी। बाद में जब कोटवाली नदी में जल संरक्षण कार्य हुए और नदी पुनर्जीवित हुई, तब वे सिगनपुर छोड़कर अपने गाँव लौट आए। अब वे खेती कर रहे हैं और शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

ग्रामीण घोटाले का कहना है कि ष्पानी ऐसी पवित्र शक्ति है, जो उजड़े हुए जीवन में भी नई हलचल और आशा पैदा कर देती है। वे बताते हैं कि पानी की कमी के कारण पहले उन्हें गाँव छोड़कर सिगनपुर जाना पड़ा। वहाँ भी पानी की कमी के कारण जमीन को लेकर विवाद हुए और अंततः वह स्थान भी छोड़ना पड़ा। उनका अधिकांश जीवन संघर्ष और विवादों में बीता। बाद में वे गाँव के वार्ड पंच और फिर उपसरपंच बने। पानी के संकट को उन्होंने स्वयं झेला था, इसलिए उन्होंने तरुण भारत संघ के जल संरक्षण कार्यों से प्रेरणा लेकर ग्राम पंचायत की बैठकों में लगातार जल संरक्षण पर जोर दिया। उनके प्रयासों से गाँव में दो नए तालाब बनाए गएकृएक नया पड़ा में और दूसरा खेड़ पड़ा में। इन संरचनाओं के बनने से नदी में पानी बढ़ा, भूजल स्तर ऊपर आया, सूखे कुओं में फिर से पानी भरने लगा और खेती-पशुपालन दोनों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। लोगों की आय बढ़ी, बच्चों की शिक्षा में सुधार हुआ और गाँव में पक्के मकान बनने लगे। वे कहते हैं कि वर्षों तक भटकने के बाद अब उन्होंने अपना स्थायी घर बना लिया है, खेती अच्छी हो रही है और जीवन में शांति, सम्मान तथा आत्मसंतोष का अनुभव हो रहा है।

खड़ैयापुरा की यह कहानी बताती है कि जल संरक्षण केवल पानी उपलब्ध कराने का माध्यम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक सौहार्द, आर्थिक समृद्धि, पलायन की वापसी, रोजगार, शिक्षा और ग्रामीण जीवन में स्थायी शांति का आधार भी बन सकता है।

8.2.9: झाझरपुरा

झाझरपुरा गाँव कोटवाली नदी की जलधारा के उद्गम क्षेत्र में बसा हुआ है। गाँव में मुख्य रूप से झझर गोत्र के गुर्जर समुदाय के लोग निवास करते हैं। इसी गोत्र के नाम पर इस गाँव का नाम झाझरपुरा पड़ा। गाँव में लगभग 40 परिवार रहते हैं, जिनकी कुल जनसंख्या लगभग 250 है। गाँव के चारों ओर कृषि भूमि फैली हुई है तथा इसके निकट से कोटवाली नदी बहती है।

वर्ष 2015 से पहले यह नदी केवल बरसाती नदी बनकर रह गई थी। लंबे समय तक जल संरक्षण की उपेक्षा और लोगों द्वारा नदी के दोनों किनारों पर अतिक्रमण कर खेती एवं निर्माण कार्य करने के कारण नदी ने अपना प्राकृतिक अस्तित्व लगभग खो दिया था। गाँव के अधिकांश परिवारों की आजीविका पशुपालन पर आधारित थी। गाँव के पूर्व और पश्चिम में पहाड़ियाँ होने के कारण वर्षा और सर्दी के लगभग आठ

महीने पशु उन्हीं पहाड़ियों के जंगलों में रहते थे। ग्रामीण वहाँ अस्थायी खिरमारी (पशु पड़ाव) बनाते थे। पशु दिनभर जंगल में चरते और सुबह-शाम खिरमारी पर आकर दूध दिए जाने के बाद पुनः जंगल में चले जाते। गर्मियों के चार महीनों में पशुओं को लेकर ग्रामीण यमुना किनारे मथुरा और आगरा क्षेत्र में चले जाते थे, जहाँ दूध बेचकर अपनी आजीविका चलाते थे। इस प्रकार कई दशकों तक लोगों ने कठिन परिस्थितियों में जीवन बिताया।

चित्र 8.10: गांव में पोखर निर्माण कार्य प्रगति पर

गाँव के पूर्व की पहाड़ी पर कारस देव का प्रसिद्ध देवस्थान है। ग्रामीणों की मान्यता है कि कारस देव पशुओं के स्वास्थ्य और प्रजनन की रक्षा करते हैं। यदि किसी पशु को बीमारी हो जाए या भैंस गर्भधारण न करे, तो कारस देव के स्थान पर पूजा-अर्चना तथा ग्वाल-गोड़िया द्वारा भभूति लगाने से पशु स्वस्थ हो जाता है और गर्भधारण करता है। आज भी गाँव के लोग कारस देव, हीरायन तथा पसेला जैसे लोकदेवताओं के मंदिरों की पैदल यात्रा करते हैं और अपनी आस्था बनाए हुए हैं। कुछ वर्ष पहले तक गाँव में पानी की स्थिति अत्यंत खराब थी। पूरे गाँव में केवल एक ट्यूबवेल था, जिससे लोगों और पशुओं के लिए पीने का पानी उपलब्ध होता था। कई बार पशुओं को टैंकरों से पानी पिलाना पड़ता था। कुछ परिवार पत्थर खनन के कार्य से भी जुड़े हुए थे। इसी दौरान तरुण भारत संघ द्वारा कोटवाली नदी के उद्गम क्षेत्र के गढ़मंडोरा, भोजपुर और आलमपुर सहित आसपास के गाँवों में जल संरक्षण कार्य प्रारम्भ किए गए। संस्था द्वारा आयोजित किसान सम्मेलनों और अध्ययन भ्रमणों में झाझरपुरा के ग्रामीणों, विशेषकर शीशराम और महाराज सिंह ने भाग लिया। इन कार्यक्रमों ने उनके भीतर जल संरक्षण के प्रति नई सोच विकसित की।

ग्रामीण शीशराम बताते हैं कि उनके पास लगभग 200 भैंसें थीं। सबसे बड़ी समस्या उनके लिए पशुओं के चारे और पानी की थी। जंगल में चारा तो पर्याप्त था, लेकिन

पानी केवल एक स्थान पर, भैरवनाथ क्षेत्र में, लगभग सात किलोमीटर दूर मिलता था। इसलिए पशुओं को दिन में केवल एक बार ही पानी पिलाया जा सकता था। गर्मियों में मथुरा क्षेत्र से धान का फूस लाकर पशुओं का पालन करना पड़ता था।

शीशराम बताते हैं कि किसान सम्मेलनों और शैक्षणिक भ्रमणों से उन्हें जल संरक्षण का महत्व समझ में आया। इसके बाद उन्होंने अपनी "तेजा वाली पोखर" का निर्माण कराया। उनके पास लगभग 20 बीघा भूमि थी, जिसमें केवल 10 बीघा पर वर्षा आधारित खेती होती थी। पहले उन्होंने नदी किनारे एक कुआँ खुदवाया था, जिसमें नदी के बहने तक पानी रहता था, लेकिन नदी सूखने के साथ ही लगभग 50 फीट गहरा कुआँ भी सूख गया। इसके बाद उन्होंने 500 फीट गहरा बोरवेल कराया, लेकिन पानी नहीं मिला। फिर 600 फीट गहरा दूसरा ट्यूबवेल और उसके बाद तीसरा ट्यूबवेल भी खुदवाया, लेकिन तीनों असफल रहे। इन प्रयासों में उनके लगभग पाँच लाख रुपये खर्च हो गए।

बाद में जब तरुण भारत संघ के प्रयासों से कोटवाली नदी पुनर्जीवित हुई और ऊपरी क्षेत्र में जल संरचनाएँ बनीं, तब नदी में फिर से पानी बहने लगा। इसके साथ ही उनका पुराना कुआँ और सूखे ट्यूबवेल भी पुनः पानी से भर गए। अब उनकी पूरी 20 बीघा भूमि पर खेती होती है और वे वर्ष में तीन फसलें लेते हैं। वर्षा ऋतु में बाजरा और सब्जियों की खेती करते हैं, जिससे प्रतिवर्ष लगभग 100 क्विंटल बाजरे का उत्पादन होता है। रबी में गेहूँ, सरसों, हरा चारा और विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ उगाई जाती हैं। लगभग डेढ़ बीघा में मूली, पालक, गाजर, बैंगन, मेथी और टमाटर जैसी सब्जियाँ होती हैं तथा साढ़े आठ बीघा में सरसों की खेती की जाती है। उनके अनुसार लगभग 400 मन गेहूँ और 125 मन सरसों का उत्पादन होता है। वे पूरी तरह गोबर की खाद का उपयोग करते हैं और रासायनिक उर्वरकों, विशेषकर यूरिया, का प्रयोग नहीं करते। उनके पास लगभग 250 भैंसें और 20 देशी गायें हैं, जिनसे प्रतिदिन लगभग 200 लीटर दूध का उत्पादन होता है। अब पशुओं का पलायन बहुत कम हो गया है, दुग्ध उत्पादन बढ़ा है और परिवार सुख-शांति से जीवन व्यतीत कर रहा है।

ग्रामीण महाराज सिंह बताते हैं कि उन्हें वर्ष 2025 में तरुण भारत संघ द्वारा "विश्व शांति जनदूत सम्मान" से सम्मानित किया गया। वे कहते हैं कि पहले उनका जीवन दिशाहीन था। वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि उनका जीवन ष्न खुद जीना, न दूसरों को जीने देना, जैसी सोच में बीत रहा था। विवाह भी नहीं हुआ था और भविष्य के प्रति कोई सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं था। लेकिन तरुण भारत संघ के साथ जुड़ने के बाद उनके विचारों में परिवर्तन आया और उन्होंने समाज तथा प्रकृति के लिए कार्य करने का संकल्प लिया।

उन्होंने गाँव से दूर जंगल में, जहाँ पानी का कोई स्रोत नहीं था, एक पोखर का निर्माण कराया। पोखर में पानी भरने के बाद उन्होंने एक कुआँ खुदवाया। बाद में कुएँ में पानी कम होने पर उन्होंने ट्यूबवेल भी लगाया। पाँच बीघा भूमि पर खेती शुरू की और अतिरिक्त पानी पड़ोसी किसानों को उपलब्ध कराया, जिससे उन्हें लगभग एक लाख रुपये की आय हुई। उन्होंने सोचा कि यह धन भी पानी के कार्य में ही लगाया जाना चाहिए। उन्होंने अपनी ओर से एक लाख रुपये का योगदान दिया तथा तरुण भारत संघ ने दो लाख रुपये की सहायता देकर कुंडा वाली पोखर का निर्माण कराया।

आज उस पोखर और नदी पुनर्जीवन के कारण उनके कुएँ में वर्षभर पानी उपलब्ध रहता है। वे 24 घंटे मोटर चलाकर सिंचाई करते हैं, फिर भी जलस्तर कम नहीं होता। उनकी लगभग 12 बीघा भूमि पर बाजरा, गेहूँ और हरे चारे की खेती होती है। पशुपालन भी निरंतर बढ़ा है। वे प्रतिवर्ष लगभग पाँच लाख रुपये का दूध बेचते हैं तथा खेती से तीन से चार लाख रुपये की अतिरिक्त आय अर्जित करते हैं।

महाराज सिंह बताते हैं कि कोटवाली नदी के पुनर्जीवन से केवल उनका ही नहीं, बल्कि पूरे गाँव का भूजल स्तर ऊपर आ गया है। सूखे कुएँ और ट्यूबवेल फिर से पानी से भर गए हैं। आज गाँव में खेती, पशुपालन और आजीविका के नए अवसर विकसित हुए हैं। लोगों के जीवन में आर्थिक समृद्धि के साथ सामाजिक शांति भी आई है। झाझरपुरा की यह कहानी बताती है कि जल संरक्षण केवल प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण नहीं, बल्कि पूरे ग्रामीण समाज के पुनर्निर्माण और जीवन में सकारात्मक परिवर्तन का आधार बन सकता है।

8.2.10: नयापुरा

नयापुरा गाँव के पश्चिम दिशा में सटेरा से निकलकर कोटवाली नदी बहती है। गाँव में लगभग 70 परिवार निवास करते हैं। इस गाँव का इतिहास संघर्ष, जल संकट और पुनर्जीवन की एक प्रेरणादायक कहानी है।

लगभग सौ वर्ष पहले बाजना गाँव में भीषण जल संकट उत्पन्न हो गया था। पानी की कमी के कारण खेती और पशुपालन दोनों संकट में आ गए। उस समय बाजना एक बड़ा और समृद्ध गाँव था, जहाँ के लोग अनाज के व्यापार के लिए दूर-दूर तक जाते थे। उसी दौर में पास के बागथर गाँव के शेडू नायक अपने गधों पर अनाज लादकर उत्तर प्रदेश की ओर व्यापार के लिए जा रहे थे। रास्ते में खेरागढ़ क्षेत्र के लोगों ने पानी और संसाधनों की कमी के कारण उन गधों को लूट लिया। बाद में बागथर के शेडू नायक ने उन गधों का अनाज अपने गाँव में सुरक्षित उतरवा लिया। यह घटना धीरे-धीरे बड़े विवाद का कारण बन गई।

चित्र 8.11: गांव के पोखरों में जब लबालब पानी भरा तो नदी की एक जलधारा निकली

कहा जाता है कि उस समय इस समुदाय के लगभग 1400 गाँव एकजुट थे। इस घटना के बाद दोनों पक्षों के बीच कई दिनों तक संघर्ष चला। उस कठिन समय में इस क्षेत्र के लोकदेवता मोहना का लोगों को आध्यात्मिक सहारा मिला। अंततः इस क्षेत्र के लोगों की विजय हुई, लेकिन युद्ध में जन-धन की भारी हानि हुई। इन्हीं परिस्थितियों के बाद बाजना से कुछ परिवार यहाँ आकर बस गए। उन्होंने अलग बस्ती बसाई, जिसे आगे चलकर "नयापुरा या नयापड़ा" कहा जाने लगा। उस समय कोटवाली नदी वर्षभर बहती थी। नदी, कुओं और घने जंगलों के कारण पानी की कोई कमी नहीं थी। खेती और पशुपालन दोनों समृद्ध थे। अच्छी वर्षा, उपजाऊ भूमि और पर्याप्त जल उपलब्ध होने से लोगों का जीवन सुखी और संपन्न था। धीरे-धीरे खेती का रकबा बढ़ा, पशुधन में वृद्धि हुई और गाँव विकास की ओर बढ़ने लगा।

समय के साथ परिस्थितियाँ बदलने लगीं। जंगलों की अंधाधुंध कटाई हुई, नदी से अत्यधिक पानी निकाला जाने लगा तथा जल संरक्षण की परंपराओं की अनदेखी की गई। लगातार सूखे के कारण नदी कमजोर पड़ने लगी। लोगों ने नदी के किनारों और जलधारा पर अतिक्रमण कर खेत और मकान बना लिए। परिणामस्वरूप नदी का प्राकृतिक स्वरूप नष्ट होने लगा और भूजल स्तर लगातार गिरता गया। पानी की कमी के कारण खेती और पशुपालन प्रभावित हुए, लोगों का पलायन शुरू हुआ और अनेक परिवार रोजगार की तलाश में दूसरे स्थानों पर चले गए।

गाँव की यह पूरी कहानी ग्रामीण शिक्षक सियाराम ने विस्तार से सुनाई। वे बताते हैं कि पानी की समस्या केवल प्राकृतिक नहीं थी, बल्कि जल संरक्षण के प्रति समाज और शासन दोनों की उपेक्षा भी इसका बड़ा कारण थी। लंबे समय तक सरकारों का ध्यान इस ओर नहीं गया। बाद में तरुण भारत संघ ने कोटवाली नदी के उद्गम क्षेत्र में

जल संरक्षण और नदी पुनर्जीवन का कार्य प्रारम्भ किया। इसके परिणामस्वरूप नदी में फिर से पानी आने लगा और भूजल स्तर में उल्लेखनीय सुधार हुआ।

नदी के पुनर्जीवित होने के बाद गाँव में खेती और पशुपालन दोनों तेजी से विकसित हुए। किसानों ने आधुनिक कृषि यंत्र, ट्रैक्टर और अन्य संसाधन अपनाने शुरू किए, जिससे उत्पादन और आय दोनों बढ़े। सियाराम का कहना है कि आज गाँव आत्मनिर्भर बनने की दिशा में आगे बढ़ रहा है। इस परिवर्तन में तरुण भारत संघ की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। संस्था ने केवल जल संरक्षण ही नहीं, बल्कि नदी पुनर्जीवन, पशुपालन, कृषि चक्र, प्राकृतिक खेती और ग्रामीण स्वावलंबन का ज्ञान भी लोगों तक पहुँचाया। इसी कारण गाँव का उजड़ना रुक गया और लोग फिर से अपने गाँव में सम्मानपूर्वक जीवनयापन करने लगे।

ग्रामीण साहब सिंह बताते हैं कि तरुण भारत संघ ने गरीब परिवारों की आजीविका बढ़ाने के लिए बकरी किट उपलब्ध कराई। वे अनुसूइया नामक महिला का उदाहरण देते हैं। अनुसूइया का परिवार अत्यंत गरीब था। आर्थिक संकट के कारण उसके पति योगेश ने अपनी एक बीघा जमीन कर्ज के बदले गिरवी रख दी थी और रोजगार की तलाश में परिवार सहित गाँव छोड़ना पड़ा। लगभग दस वर्ष तक वे बाहर रहे। जब गाँव में जल संरक्षण कार्यों से खेती फिर से शुरू हुई, तब भी उनके पास खेती के लिए जमीन नहीं थी। ऐसी स्थिति में तरुण भारत संघ ने अनुसूइया को एक बकरी किट उपलब्ध कराई। धीरे-धीरे बकरियों की संख्या बढ़ती गई। बकरी पालन से हुई आय से सबसे पहले उन्होंने अपना मकान बनाया, फिर बच्चों की पढ़ाई पर खर्च किया। आज अनुसूइया स्वयं बकरी पालन करती हैं, उनके पति योगेश गाँव में ही मजदूरी करते हैं और परिवार सम्मानपूर्वक अपना जीवनयापन कर रहा है। अब उन्हें रोजगार के लिए बाहर पलायन नहीं करना पड़ता।

ग्रामीण पप्पू बताते हैं कि एक समय ऐसा था जब गाँव में खाने तक के लाले पड़ गए थे। अनाज बाहर से लाना पड़ता था और अधिकांश परिवार केवल पशुपालन के सहारे जीवन चलाते थे। लेकिन जब नदी में पानी आया और गाँव के जलस्रोत पुनर्जीवित हुए, तब उन्होंने पारंपरिक खेती के साथ सब्जी उत्पादन भी शुरू किया। वे लगभग आधा बीघा क्षेत्र में मिर्च की खेती करते हैं, जिससे प्रतिवर्ष लगभग दो से तीन लाख रुपये की आय होती है। इसके अलावा गेहूँ और सरसों की खेती से परिवार की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं तथा अतिरिक्त उपज बाजार में बेचकर अच्छी आय प्राप्त होती है।

आज पूरे गाँव की लगभग 500 बीघा भूमि पर नियमित खेती होती है। गाँव में प्रतिवर्ष लगभग 1,000 क्विंटल बाजरा, 3,000 क्विंटल गेहूँ तथा 8,000 क्विंटल सरसों

का उत्पादन होता है। आर्थिक समृद्धि के साथ सामाजिक परिवर्तन भी दिखाई देने लगे हैं। पहले जहाँ विवाह संबंध बनाने में कठिनाई होती थी, वहीं अब दूर-दूर से रिश्ते आने लगे हैं। लोग अपने खेतों में आम, आँवला, नींबू और अमरूद जैसे फलदार वृक्ष लगा रहे हैं। जो लोग पहले खनन कार्य पर निर्भर थे, वे अब खेती और पशुपालन को अपना मुख्य व्यवसाय बना चुके हैं।

पशुपालन बढ़ने से गोबर की उपलब्धता भी बढ़ी है, जिससे जैविक खाद का उपयोग अधिक होने लगा है। किसान रासायनिक उर्वरकों का सीमित उपयोग करते हैं और प्राकृतिक खेती की ओर बढ़ रहे हैं। इससे मिट्टी की उर्वरता, उत्पादन और पर्यावरण तीनों में सुधार हुआ है।

नयापुरा की यह कहानी स्पष्ट करती है कि जल संरक्षण केवल नदी या कुएँ में पानी लाने का प्रयास नहीं है, बल्कि यह पूरे गाँव के सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय पुनर्निर्माण का आधार बन सकता है। पानी लौटने से खेती, पशुपालन, रोजगार, शिक्षा, सामाजिक सम्मान और आत्मनिर्भरता सभी क्षेत्रों में नया जीवन आया है।

8.2.11: वेदपुरा

वेदपुरा गाँव कोटवाली नदी के किनारे बसा हुआ है। गाँव में लगभग 40 परिवार निवास करते हैं। गाँव के पास लगभग 300 बीघा कृषि भूमि है तथा इसके किनारे से कैलादेवी-आगरा मार्ग गुजरता है। गाँव के दोनों ओर पहाड़ियाँ हैं और बीच में उपजाऊ भूमि स्थित है। गाँव में प्राचीन समय के कई कुएँ आज भी मौजूद हैं, जो यहाँ की पुरानी जल संस्कृति की पहचान हैं।

ग्रामीणों के अनुसार, बहुत पहले जब बाजना गाँव की आबादी बढ़ी और पानी की कमी होने लगी, तब जमीन के बँटवारे को लेकर आपसी विवाद उत्पन्न हो गए। इसी कारण कुछ परिवार वहाँ से आकर इस स्थान पर बस गए। इन लोगों ने नई बस्ती बसाई, जो आगे चलकर ''वेदपुरा'' के नाम से प्रसिद्ध हुई। प्रारंभ में गाँव में एक ही वंश के लोग रहते थे और समय के साथ उन्हीं परिवारों का विस्तार होकर आज के परिवार बने।

शुरुआती समय में गाँव में पानी की कोई कमी नहीं थी। कोटवाली नदी वर्षभर बहती थी, जंगल घने थे और खेती तथा पशुपालन समृद्ध थे। लेकिन जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ी, खेती और पशुपालन का विस्तार हुआ तथा जल स्रोतों पर दबाव बढ़ा। धीरे-धीरे नदी का प्रवाह कम होता गया। संवत 1962 (महा अकाल) के समय भीषण सूखा पड़ा, जिससे गाँव में अनाज और पानी दोनों का संकट गहरा गया। अनेक परिवारों ने सेनी नदी के किनारे बृहटा नामक गाँव बसाया और वहीं खेती तथा

पशुपालन कर स्थायी रूप से रहने लगे। आज वहाँ लगभग 100 परिवार निवास करते हैं।

ग्रामीण बृजेंद्र बताते हैं कि उनके पूर्वज इस स्थान पर नदी और घने जंगल को देखकर बसे थे। लेकिन जब नदी सूखने लगी तो यहाँ जीवन कठिन हो गया। कई परिवार गाँव छोड़कर चले गए और फिर कभी वापस नहीं लौटे। उनका अपना परिवार भी कुछ समय के लिए काठेर में जाकर रहा, लेकिन बाद में वापस वेदपुरा लौट आया। वर्ष 2018 तक उनका जीवन अत्यंत कठिन परिस्थितियों में बीता। वर्षा और सर्दी के मौसम में वे गाँव में रहते थे, जबकि पशु पहाड़ियों के जंगलों में चरते थे। दूध बेचकर किसी प्रकार आजीविका चलती थी।

चित्र 8.12: गांव के किसानों को जल उपयोग दक्षता हेतु पाइप एवं फव्वारों का वितरण किया जा रहा है

वे बताते हैं कि आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर थी कि दूध बेचने के लिए उन्हें व्यापारियों से बार-बार अग्रिम राशि लेनी पड़ती थी। पाँच लाख से लेकर एक लाख रुपये तक का कर्ज लेकर वे काम चलाते थे, लेकिन ब्याज बढ़ता जाता था और कर्ज कभी समाप्त नहीं होता था। कई बार कर्ज चुकाने के लिए पशु तक बेचने पड़ते थे। बृजेंद्र आगे बताते हैं कि जब तरुण भारत संघ ने कोटवाली नदी के ऊपरी क्षेत्र में जल संरक्षण कार्य किए और गाँव में "खितोर की पोखर" का निर्माण हुआ, तब परिस्थितियाँ बदलने लगीं। अब नदी में वर्षभर पानी रहता है, कुओं में पानी उपलब्ध रहता है और खेती फिर से शुरू हो गई है। उनके पास पाँच बीघा भूमि है, जिस पर वे बाजरा, गेहूँ और सरसों की खेती करते हैं। उनके पास दस भैंसें और पाँच गायें हैं। परिवार में छह सदस्य हैं। प्रतिवर्ष लगभग 20 क्विंटल बाजरा, 40 क्विंटल गेहूँ और 10 क्विंटल सरसों का उत्पादन होता है। दूध बेचकर लगभग दो लाख रुपये की आय

होती है। अब उन्हें रोजगार के लिए बाहर नहीं जाना पड़ता और परिवार सम्मानपूर्वक जीवनयापन कर रहा है।

सत्तर वर्षीय ग्रामीण टीकम सिंह बताते हैं कि एक समय ऐसा था जब गाँव के सभी कुएँ सूख गए थे। खेती पूरी तरह बंद हो गई थी और पशुपालन भी लगातार घट रहा था। मजबूरी में अधिकांश लोग पत्थर खनन का कार्य करने लगे। उस समय क्षेत्र में डकैतों का आतंक था। खनन का कार्य करने के लिए उन्हें डकैतों को चंदा देना पड़ता था। धौलपुर क्षेत्र के डकैत भैंसों की चोरी भी करते थे। भय और असुरक्षा के कारण अनेक परिवार भरतपुर क्षेत्र में जाकर बस गए और वहीं जमीन खरीद ली। टीकम सिंह बताते हैं कि बाद में कायने गाँव के निवासी सुरेश, तरुण भारत संघ के कार्यकर्ता रणवीर सिंह को वेदपुरा लेकर आए। गाँव में बैठक हुई और सामूहिक निर्णय से ''खितारे की पोखर'' का निर्माण किया गया। इस पोखर के निर्माण पर लगभग तीन लाख रुपये खर्च हुए, जिसमें एक लाख रुपये ग्रामीणों ने स्वयं जुटाए और दो लाख रुपये तरुण भारत संघ ने लगाए। पोखर में लगभग 15 करोड़ लीटर पानी संग्रहित होने लगा। इससे गाँव का भूजल स्तर बढ़ा, सूखे कुओं में पानी लौट आया और कोटवाली नदी की एक जलधारा पुनर्जीवित हो गई। अब गाँव में वर्षभर नदी में पानी रहता है तथा खेती और पशुपालन दोनों समृद्ध हो चुके हैं।

टीकम सिंह के पास छह बीघा भूमि है। वे गेहूँ, सरसों, बाजरा और हरे चारे की खेती करते हैं। उनके पास लगभग 20 भैंसें हैं, जिनसे प्रतिवर्ष लगभग तीन लाख रुपये का दूध बेचते हैं। वे बताते हैं कि अब परिवार का कोई सदस्य खनन का कार्य नहीं करता और न ही पशुओं को लेकर बाहर पलायन करना पड़ता है। वर्षभर दूध उत्पादन होता है और परिवार सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहा है।

ग्रामीण रामदेव राम बताते हैं कि पानी के अभाव में लगभग बीस वर्षों तक उनका परिवार अत्यंत कठिन परिस्थितियों से गुजरा। उस समय वर्षा कम होती थी और पानी रोकने का कोई साधन नहीं था। गाँव में न तालाब थे, न पोखर और न ही अन्य जल संरचनाएँ। मजबूरी में उन्हें अपने पशुओं के साथ रिश्तेदारों के यहाँ रहना पड़ता था। लंबे समय तक यह स्थिति रहने से रिश्तेदार भी परेशान हो जाते थे।

जब कोटवाली नदी में पुनः पानी आने लगा और गाँव में ''सितारे की पोखर'' बनी, तब परिस्थितियाँ पूरी तरह बदल गईं। पोखर से जल रिसाव होने के कारण नीचे स्थित कुओं में भी पानी भरने लगा और कई परिवारों को सिंचाई की सुविधा मिलने लगी। रामदेव राम की दस बीघा बंजर भूमि अब पूरी तरह उपजाऊ हो चुकी है। वे वर्ष में तीन फसलें लेते हैं। प्रतिवर्ष लगभग 30 क्विंटल बाजरा, 60 क्विंटल गेहूँ और 20 क्विंटल सरसों का उत्पादन होता है। पशुओं की संख्या भी बढ़कर 15 भैंस और 10 गाय हो गई है। वर्ष में लगभग पाँच हजार लीटर दूध का उत्पादन होता है, जिससे

लगभग दो लाख रुपये की आय होती है। परिवार के सभी सदस्य दूध, दही और घी का उपयोग करते हैं तथा अतिथियों का भी सम्मानपूर्वक सत्कार कर पाते हैं।

चित्र 8.13: पोखर से जैव विविधता बढ़ रही है, किसान सिंचाई भी कर पा रहे हैं

ग्रामीण ओमप्रकाश सिंह बताते हैं कि एक समय गाँव में इतनी गरीबी थी कि वे लोगों के बाल काटने का काम करते थे और बदले में अनाज प्राप्त करते थे। बाद में उन्होंने पत्थर खनन का कार्य शुरू किया, लेकिन डकैतों की रंगदारी के कारण वह काम भी नहीं चल पाया। जितनी कमाई होती, उससे अधिक पैसा डकैतों को देना पड़ता था। इसके बाद उन्होंने मजदूरी की, लेकिन खनन कार्य में पत्थर खराब निकलने पर कई बार पूरे महीने की मेहनत व्यर्थ चली जाती थी। ऐसी परिस्थितियों में कई परिवारों को अपनी जमीन तक बेचनी पड़ी। बच्चों को मजदूरी के लिए बाहर भेजना पड़ा और उनकी पढ़ाई भी छूट गई। वे बताते हैं कि तरुण भारत संघ द्वारा किए गए जल संरक्षण कार्यों के बाद कोटवाली नदी पुनर्जीवित हुई और गाँव में खेती फिर से शुरू हो गई। अब उन्हें गाँव में ही पर्याप्त रोजगार मिल जाता है। वे अपनी खेती से प्रतिवर्ष लगभग 40 क्विंटल गेहूँ और 20 क्विंटल बाजरा पैदा करते हैं। साथ ही गाँव में नाई का पारंपरिक कार्य भी करते हैं, जिसके बदले प्रत्येक परिवार से अनाज प्राप्त होता है। चालीस परिवारों वाले इस गाँव में अब उनकी अच्छी आय हो जाती है और वे संतोष तथा सम्मान के साथ जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

अंत में, वेदपुरा की यह कहानी बताती है कि जल संरक्षण केवल पानी उपलब्ध कराने का माध्यम नहीं है, बल्कि यह पलायन रोकने, खेती और पशुपालन को पुनर्जीवित करने, रोजगार बढ़ाने, सामाजिक स्थिरता लाने और पूरे गाँव को आत्मनिर्भर बनाने का आधार भी है। कोटवाली नदी के पुनर्जीवन ने वेदपुरा के लोगों को केवल पानी ही नहीं, बल्कि सम्मान, आजीविका और एक नया जीवन भी दिया।

9.
भारतीय जल संस्कृति का भविष्य

9.1 भविष्य की जल नीति

भारतीय जल संस्कृति का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि भारत अपनी प्राचीन जल परम्पराओं, वैदिक ज्ञान, लोक-अनुभव तथा आधुनिक विज्ञान के मध्य किस प्रकार संतुलित समन्वय स्थापित करता है। भारतीय सभ्यता का विकास नदियों के किनारे हुआ और जल को केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि जीवन, धर्म, संस्कृति तथा लोककल्याण का आधार माना गया। यही कारण है कि वेदों में जल को अमृत, औषधि, शुद्धि तथा समस्त प्राणियों के जीवन का मूल स्रोत कहा गया है। ऋग्वेद में कहा गया है— **"आपो हि ष्ठा मयोभुवः"** अर्थात् जल आनंद एवं कल्याण प्रदान करने वाला है (ऋग्वेद 10.9.1)। इसी सूक्त में जल को पवित्र, जीवनदायी तथा समस्त प्राणियों के पोषण का आधार स्वीकार किया गया है। अथर्ववेद में जल को रोगनाशक तथा स्वास्थ्य का संरक्षक बताते हुए कहा गया है कि **"आपः विश्वस्य भेषजीः"**, अर्थात् जल सम्पूर्ण विश्व के लिए औषधि है। इन वैदिक विचारों से स्पष्ट होता है कि भारतीय जल-दर्शन में जल का संरक्षण केवल आर्थिक आवश्यकता नहीं, बल्कि नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्तरदायित्व भी है।

वर्तमान समय में भारत तीव्र जनसंख्या वृद्धि, अनियंत्रित नगरीकरण, औद्योगिक विस्तार, भूजल के अत्यधिक दोहन, नदियों के प्रदूषण तथा जलवायु परिवर्तन जैसी गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा है। अनेक क्षेत्रों में भूजल स्तर निरंतर नीचे जा रहा है, पारंपरिक जल स्रोत समाप्त होते जा रहे हैं तथा अनेक नदियाँ वर्ष के अधिकांश समय सूखी रहने लगी हैं। इन परिस्थितियों में भविष्य की जल नीति केवल जल वितरण अथवा सिंचाई विस्तार तक सीमित नहीं रह सकती। उसे जल संरक्षण, जल पुनर्भरण, नदी पुनर्जीवन, पारिस्थितिक संतुलन, सामुदायिक सहभागिता तथा सांस्कृतिक पुनर्जागरण पर समान रूप से आधारित होना होगा। भारत की भावी जल नीति तभी सफल होगी जब वह जल को संविधान की दृष्टि से सार्वजनिक धरोहर तथा सांस्कृतिक दृष्टि से राष्ट्रीय विरासत मानकर उसके उपयोग और संरक्षण के मध्य संतुलन स्थापित करेगी।

भारतीय जल संस्कृति का मूल सिद्धान्त यह है कि जल प्रकृति का उपहार है, इसलिए उसका उपयोग मर्यादित और न्यायपूर्ण होना चाहिए। यजुर्वेद तथा अन्य वैदिक ग्रंथों में प्रकृति के साथ संतुलित जीवन जीने की शिक्षा दी गई है। जल, वन,

भूमि तथा वायु को एक-दूसरे का पूरक माना गया है। आधुनिक जल विज्ञान भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि करता है कि नदी, भूजल, वर्षा, वनस्पति तथा मिट्टी एक ही जलचक्र के विभिन्न अंग हैं। यदि इनमें से किसी एक का संतुलन बिगड़ता है तो सम्पूर्ण जल व्यवस्था प्रभावित होती है। इसलिए भविष्य की जल नीति को नदी घाटी आधारित समग्र जल प्रबंधन (River Basin Management) तथा जलागम क्षेत्र संरक्षण को प्राथमिकता देनी होगी।

इस संदर्भ में भारत के प्रसिद्ध जल संरक्षण विशेषज्ञ डॉ. राजेन्द्र सिंह ने यह सिद्ध किया कि जल संकट का समाधान केवल बड़े बाँधों अथवा महँगी परियोजनाओं में नहीं, बल्कि समाज की सहभागिता, वर्षाजल संचयन तथा पारंपरिक जल संरचनाओं के पुनर्जीवन में निहित है। राजस्थान में हजारों जोहड़ों के निर्माण तथा अनेक सूखी नदियों के पुनर्जीवन के बाद उन्होंने विभिन्न राज्यों में भी समुदाय आधारित जल संरक्षण अभियानों को नई दिशा प्रदान की। मध्य भारत में बमाया तथा कोटवाली नदियों के पुनर्जीवन में उनका मार्गदर्शन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन नदी पुनर्जीवन अभियानों में स्थानीय ग्रामसभाओं, किसानों, महिलाओं और युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की गई। वर्षाजल संचयन, जलागम उपचार, परंपरागत जल संरचनाओं के निर्माण तथा भूजल पुनर्भरण के परिणामस्वरूप वर्षों से सूख चुकी नदी धाराओं में पुनः जल प्रवाहित होने लगा। इससे कृषि उत्पादन बढ़ा, पेयजल संकट कम हुआ, भूजल स्तर में सुधार आया तथा स्थानीय जैव विविधता का पुनर्विकास हुआ।

डॉ. राजेन्द्र सिंह का यह कार्य भारतीय जल संस्कृति की उसी परम्परा का आधुनिक स्वरूप है जिसका उल्लेख वैदिक साहित्य और प्राचीन भारतीय ग्रंथों में मिलता है। प्राचीन भारत में तालाब, बावड़ियाँ, कुण्ड, सरोवर तथा जोहड़ केवल जल संग्रहण की तकनीक नहीं थे, बल्कि समाज की सामूहिक उत्तरदायित्व प्रणाली का हिस्सा थे। जल स्रोतों का निर्माण और संरक्षण लोककल्याण का कार्य माना जाता था। डॉ. राजेन्द्र सिंह ने इसी परम्परा को आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ पुनर्जीवित किया। उन्होंने बार-बार यह प्रतिपादित किया कि यदि समाज स्वयं जल संरक्षण का दायित्व स्वीकार करे तो सूखी नदियाँ पुनः जीवित हो सकती हैं और जल संकट का स्थायी समाधान प्राप्त किया जा सकता है।

भविष्य की भारतीय जल नीति को ऐसे ही सफल उदाहरणों से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। प्रत्येक ग्राम और नगर के लिए वर्षाजल संचयन अनिवार्य बनाया जाए, स्थानीय जल निकायों का संरक्षण कानूनी दायित्व हो, भूजल दोहन वैज्ञानिक सीमा के भीतर नियंत्रित किया जाए तथा नदी तटों और जलागम क्षेत्रों में व्यापक वृक्षारोपण को राष्ट्रीय कार्यक्रम का स्वरूप दिया जाए। जल उपयोग की दक्षता बढ़ाने के लिए

सूक्ष्म सिंचाई, अपशिष्ट जल के पुनर्चक्रण तथा जल लेखांकन जैसी आधुनिक तकनीकों का व्यापक उपयोग किया जाना चाहिए। साथ ही जल प्रबंधन के प्रत्येक स्तर पर स्थानीय समुदायों की सहभागिता सुनिश्चित की जानी चाहिए, क्योंकि भारतीय जल संस्कृति का मूल आधार राज्य और समाज के संयुक्त उत्तरदायित्व में निहित है।

भारतीय ज्ञान परम्परा यह मानती है कि जल केवल वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकता नहीं, बल्कि भविष्य की पीढ़ियों की साझा धरोहर है। इसलिए जल संरक्षण को केवल विकास योजनाओं का विषय नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पुनर्जागरण का अभियान बनाना होगा। डॉ. राजेन्द्र सिंह द्वारा बमाया और कोटवाली नदियों के पुनर्जीवन से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि जब वैदिक जल-दर्शन, स्थानीय समाज की सहभागिता तथा आधुनिक वैज्ञानिक जल प्रबंधन एक साथ कार्य करते हैं, तब असंभव प्रतीत होने वाले कार्य भी संभव हो जाते हैं। यही भविष्य की भारतीय जल नीति का मूल आधार होना चाहिए, क्योंकि भारत की जल सुरक्षा केवल तकनीकी समाधानों से नहीं, बल्कि अपनी प्राचीन जल संस्कृति के पुनर्जीवन और उसके वैज्ञानिक पुनर्पाठ से सुनिश्चित होगी।

9.2 नदी पुनर्जीवन की राष्ट्रीय रणनीति

भारतीय सभ्यता का इतिहास नदियों के इतिहास से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। सिंधु, सरस्वती, गंगा, यमुना, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी तथा ब्रह्मपुत्र जैसी नदियों ने केवल भारत की भौगोलिक संरचना का निर्माण नहीं किया, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक जीवन को भी आकार प्रदान किया। भारत के प्राचीन नगरों, कृषि व्यवस्था, व्यापारिक मार्गों, तीर्थस्थलों और ज्ञान-परम्पराओं का विकास नदी तटों पर ही हुआ। इसीलिए भारतीय संस्कृति में नदी को केवल जलधारा न मानकर जीवनदायिनी माता तथा लोकमंगल की अधिष्ठात्री शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। ऋग्वेद के प्रसिद्ध **नदी सूक्त (ऋग्वेद 10.75)** में अनेक नदियों का स्तवन करते हुए उन्हें राष्ट्र की समृद्धि, उर्वरता और सांस्कृतिक एकता का आधार माना गया है। वैदिक ऋषियों ने नदियों को सम्मान देकर यह संदेश दिया कि उनका संरक्षण मानव समाज के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। यही दृष्टिकोण आज की राष्ट्रीय नदी पुनर्जीवन रणनीति का भी मूल आधार होना चाहिए।
भारतीय जल संस्कृति में नदी का अर्थ केवल बहता हुआ जल नहीं, बल्कि सम्पूर्ण नदी तंत्र है, जिसमें उद्गम क्षेत्र, जलागम, वन, पर्वत, भूजल, आर्द्रभूमियाँ, जैव विविधता, तटीय क्षेत्र तथा स्थानीय समाज सभी सम्मिलित हैं। यदि नदी के उद्गम क्षेत्र में वनों का विनाश होगा, जलागम क्षेत्र में मिट्टी का अपरदन बढ़ेगा, प्राकृतिक जलधाराओं को अवरुद्ध किया जाएगा अथवा नदी के बाढ़ क्षेत्र पर अतिक्रमण होगा, तो नदी का प्राकृतिक जीवन चक्र बाधित हो जाएगा। इसलिए नदी पुनर्जीवन का अर्थ

केवल नदी की सफाई या गाद निकालना नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण नदी पारिस्थितिकी का पुनर्स्थापन है। यही समग्र दृष्टिकोण भारतीय परम्परा और आधुनिक पर्यावरण विज्ञान दोनों में समान रूप से स्वीकार किया गया है।

वर्तमान समय में भारत की अधिकांश नदियाँ अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना कर रही हैं। तीव्र नगरीकरण, औद्योगिक अपशिष्ट, घरेलू सीवेज, रासायनिक कृषि, बालू का अवैध खनन, नदी तटों पर अतिक्रमण तथा भूजल के अनियंत्रित दोहन के कारण नदियों का प्राकृतिक प्रवाह निरन्तर कम होता जा रहा है। अनेक छोटी नदियाँ मौसमी जलधाराओं में परिवर्तित हो चुकी हैं, जबकि कई नदियों का जल मानव उपयोग के योग्य भी नहीं रह गया है। जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा के स्वरूप में आए परिवर्तन ने इस संकट को और अधिक गंभीर बना दिया है। ऐसी परिस्थितियों में नदी पुनर्जीवन केवल पर्यावरण संरक्षण का विषय नहीं, बल्कि राष्ट्रीय जल सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा और सतत विकास का आधार बन गया है।

भारतीय वैदिक साहित्य नदी की अविरलता और पवित्रता पर विशेष बल देता है। ऋग्वेद में नदियों को निरन्तर प्रवाहित रहने वाली जीवनदायिनी शक्तियों के रूप में चित्रित किया गया है। अथर्ववेद में जल को रोगनाशक, शुद्धिकारक तथा समस्त जीवों के जीवन का आधार कहा गया है। इन वैदिक विचारों का आधुनिक वैज्ञानिक अर्थ यह है कि नदी का प्राकृतिक प्रवाह बना रहना चाहिए, क्योंकि प्रवाह ही नदी की आत्मशुद्धि क्षमता, जैव विविधता तथा भूजल पुनर्भरण का आधार होता है। अतः राष्ट्रीय नदी पुनर्जीवन रणनीति का प्रथम उद्देश्य प्रत्येक नदी के लिए न्यूनतम पर्यावरणीय प्रवाह (Environmental Flow) सुनिश्चित करना होना चाहिए। नदी से जल का उपयोग आवश्यक है, किन्तु इतना नहीं कि उसका प्राकृतिक अस्तित्व ही समाप्त हो जाए।

नदी पुनर्जीवन की इस समग्र अवधारणा को व्यवहार में सफलतापूर्वक स्थापित करने वाले व्यक्तित्वों में डॉ. राजेन्द्र सिंह, का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि नदी को पुनर्जीवित करने के लिए केवल सरकारी योजनाएँ पर्याप्त नहीं होतीं, बल्कि स्थानीय समाज की सक्रिय भागीदारी, पारम्परिक जल ज्ञान और वैज्ञानिक जल प्रबंधन का समन्वय आवश्यक है। राजस्थान में अरवरी सहित अनेक नदियों के पुनर्जीवन के अतिरिक्त उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में सामुदायिक जल संरक्षण अभियानों को दिशा प्रदान की। बमाया और कोटवाली नदियों के पुनर्जीवन में उनका मार्गदर्शन इस बात का उत्कृष्ट उदाहरण है कि यदि जलागम क्षेत्र का उपचार किया जाए, वर्षाजल को स्थानीय स्तर पर रोका जाए, छोटे-छोटे जोहड़ों और जल संरचनाओं का निर्माण किया जाए तथा भूजल पुनर्भरण को बढ़ावा दिया जाए, तो वर्षों से सूखी नदी भी पुनः प्रवाहित हो सकती है।

बमाया और कोटवाली नदी पुनर्जीवन के दौरान अपनाई गई कार्यपद्धति भारतीय जल संस्कृति के मूल सिद्धान्तों से प्रेरित थी। नदी के उद्गम क्षेत्र और जलागम में वर्षाजल संचयन, पारम्परिक जल संरचनाओं का निर्माण, मिट्टी और नमी संरक्षण, वृक्षारोपण तथा स्थानीय समुदाय की सक्रिय भागीदारी को प्राथमिकता दी गई। इन प्रयासों से वर्षाजल का अधिकाधिक भाग भूमि में समाहित हुआ, भूजल स्तर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई और धीरे-धीरे नदी की सूखी धाराओं में पुनः जल प्रवाहित होने लगा। परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई, पेयजल संकट कम हुआ, पशुपालन को नई ऊर्जा मिली तथा स्थानीय जैव विविधता का पुनर्विकास हुआ। यह अनुभव स्पष्ट करता है कि नदी का पुनर्जीवन नदी में बाहर से जल पहुँचाने से नहीं, बल्कि उसके प्राकृतिक जलचक्र को पुनर्स्थापित करने से संभव होता है।

भारतीय परम्परा में जल संरक्षण का आधार सदैव समाज रहा है। प्राचीन भारत में तालाब, कुण्ड, बावड़ियाँ, आहर-पाइन, जोहड़ और अन्य जल संरचनाएँ स्थानीय समुदाय द्वारा निर्मित एवं संरक्षित की जाती थीं। कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में जलाशयों के निर्माण, संरक्षण तथा क्षति पहुँचाने वालों के लिए दण्ड का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था में भी जल संरक्षण को सर्वोच्च प्राथमिकता प्राप्त थी। डॉ. राजेन्द्र सिंह ने इसी परम्परा को आधुनिक संदर्भों में पुनर्जीवित करते हुए यह स्थापित किया कि नदी का वास्तविक स्वामी स्थानीय समाज है और उसके संरक्षण की सबसे बड़ी शक्ति भी वही है।

राष्ट्रीय नदी पुनर्जीवन रणनीति का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष नदी और संस्कृति के संबंध को पुनर्स्थापित करना है। भारतीय समाज में नदियाँ केवल जल स्रोत नहीं, बल्कि आस्था, लोकजीवन, पर्व-त्योहार और सांस्कृतिक पहचान का केन्द्र रही हैं। जब समाज नदी के साथ भावनात्मक रूप से जुड़ा रहता है, तब उसका संरक्षण स्वतः सुनिश्चित होता है। इसलिए विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, धार्मिक संस्थाओं, स्वयंसेवी संगठनों तथा ग्राम सभाओं को नदी संरक्षण कार्यक्रमों से जोड़ना आवश्यक है। जनजागरण, नदी उत्सव, नदी पदयात्राएँ तथा स्थानीय जल परम्पराओं का पुनर्जीवन राष्ट्रीय रणनीति का अभिन्न भाग होना चाहिए। डॉ. राजेन्द्र सिंह द्वारा संचालित अनेक अभियानों में यही सामाजिक चेतना उनकी सबसे बड़ी शक्ति रही है।

आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी भी नदी पुनर्जीवन को अधिक प्रभावी बना सकते हैं। उपग्रह चित्रण, भू-स्थानिक सूचना प्रणाली (GIS), ड्रोन सर्वेक्षण, जल गुणवत्ता की वास्तविक समय निगरानी तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित जल विश्लेषण के माध्यम से नदी घाटियों का वैज्ञानिक प्रबंधन किया जा सकता है। किन्तु भारतीय अनुभव यह बताता है कि केवल तकनीक पर्याप्त नहीं है। जब तक स्थानीय समुदाय, पारम्परिक ज्ञान और सांस्कृतिक चेतना इन तकनीकों के साथ नहीं जुड़ते, तब तक नदी

पुनर्जीवन स्थायी नहीं हो सकता। बमाया और कोटवाली नदियों का पुनर्जीवन इसी समन्वित दृष्टिकोण की सफलता का प्रमाण है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि भारत की राष्ट्रीय नदी पुनर्जीवन रणनीति को वैदिक जल-दर्शन, भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं, आधुनिक पर्यावरण विज्ञान तथा डॉ. राजेन्द्र सिंह जैसे जल योद्धाओं के व्यावहारिक अनुभवों के समन्वय पर आधारित होना चाहिए। ऋग्वेद के नदी सूक्त से लेकर बमाया और कोटवाली नदियों के पुनर्जीवन तक एक ही संदेश निरन्तर प्रवाहित होता है कि नदी का जीवन ही मानव जीवन का आधार है। यदि भारत अपनी नदियों की अविरलता, निर्मलता और पारिस्थितिक संतुलन की रक्षा कर सके, तो वह न केवल जल संकट का समाधान प्राप्त करेगा, बल्कि विश्व के समक्ष नदी संरक्षण का एक ऐसा मॉडल प्रस्तुत करेगा जिसमें प्राचीन ज्ञान और आधुनिक विज्ञान का अद्वितीय समन्वय दिखाई देता है।

9.3 जनभागीदारी एवं जल प्रबंधन

भारतीय जल संस्कृति का सबसे सुदृढ़ आधार जनभागीदारी रही है। भारत के प्राचीन समाज में जल संरक्षण किसी एक व्यक्ति, समुदाय अथवा राज्य का कार्य नहीं था, बल्कि सम्पूर्ण समाज का साझा दायित्व माना जाता था। ग्रामों में तालाब, कुएँ, बावड़ियाँ, जोहड़, नाड़ियाँ, आहर-पाइन, कुंड तथा अन्य पारम्परिक जल संरचनाओं का निर्माण और संरक्षण सामूहिक श्रम तथा सामाजिक सहयोग से किया जाता था। जल के प्रति यह उत्तरदायित्व केवल आर्थिक आवश्यकता नहीं था, बल्कि धार्मिक आस्था, सांस्कृतिक परम्परा और लोकधर्म का अभिन्न अंग था। यही कारण है कि भारत में हजारों वर्षों तक सीमित प्राकृतिक संसाधनों के बावजूद जल प्रबंधन की ऐसी सुदृढ़ व्यवस्था बनी रही, जिसने समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ पर्यावरणीय संतुलन को भी बनाए रखा। वर्तमान समय में जब जल संकट राष्ट्रीय और वैश्विक चुनौती का रूप ले चुका है, तब भारतीय जल संस्कृति का यह सामुदायिक दृष्टिकोण पुनः अत्यंत प्रासंगिक हो गया है।

वेदों में जल को सम्पूर्ण सृष्टि का आधार माना गया है। ऋग्वेद में वर्णित **"आपो हि ष्ठा मयोभुवः"** का संदेश यह स्पष्ट करता है कि जल समस्त जीवों के सुख और समृद्धि का स्रोत है। अथर्ववेद में पृथ्वी और प्रकृति के साथ मनुष्य के आत्मीय संबंध को व्यक्त करते हुए कहा गया है—**"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"** अर्थात् पृथ्वी हमारी माता है और हम उसके पुत्र हैं। यह उद्घोष केवल दार्शनिक विचार नहीं, बल्कि प्रकृति और जल के प्रति उत्तरदायित्व की सांस्कृतिक घोषणा है। यदि पृथ्वी माता है, तो उसके जल स्रोतों की रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है।

भारतीय जल संस्कृति की यही भावना जनभागीदारी का आधार बनती है, जिसमें जल संरक्षण शासन की नहीं, सम्पूर्ण समाज की साझा जिम्मेदारी माना जाता है।

प्राचीन भारत में जलाशयों का निर्माण लोककल्याण का महान कार्य माना जाता था। पुराणों तथा स्मृति ग्रंथों में तालाब, कुएँ और सरोवर बनाने वाले व्यक्ति को महान पुण्य का अधिकारी कहा गया है। *महाभारत* के अनुशासन पर्व में जलाशयों के निर्माण को धर्म, लोकसेवा और भविष्य की पीढ़ियों के प्रति उत्तरदायित्व से जोड़ा गया है। *कौटिल्य के अर्थशास्त्र* में भी जलाशयों के निर्माण, रख-रखाव तथा सिंचाई व्यवस्था के लिए स्पष्ट प्रशासनिक प्रावधान मिलते हैं। इन सभी ग्रंथों का मूल संदेश यही है कि जल का संरक्षण तभी संभव है जब समाज स्वयं उसे अपना उत्तरदायित्व माने। यही सिद्धांत आधुनिक जल प्रबंधन की आधारशिला भी होना चाहिए।

डॉ. राजेन्द्र सिंह, ने अत्यंत प्रभावशाली ढंग से किया है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि जल संकट का समाधान केवल बड़ी सरकारी परियोजनाओं में नहीं, बल्कि समाज की सामूहिक शक्ति में निहित है। उनका मानना है कि जल का स्वामित्व सरकार का नहीं, बल्कि समाज का है और इसलिए उसके संरक्षण की सबसे बड़ी जिम्मेदारी भी समाज की ही है। उन्होंने राजस्थान सहित अनेक राज्यों में ग्रामसभाओं, किसानों, महिलाओं और युवाओं को संगठित कर पारम्परिक जल संरचनाओं के पुनर्निर्माण का अभियान चलाया, जिसके परिणामस्वरूप अनेक सूखी नदियाँ पुनः प्रवाहित होने लगीं।

डॉ. राजेन्द्र सिंह ने किसी बाहरी तकनीकी समाधान की अपेक्षा स्थानीय समुदाय की भागीदारी को प्राथमिकता दी। ग्राम सभाओं के माध्यम से लोगों को जलागम क्षेत्र के संरक्षण, वर्षाजल संचयन, जोहड़ों के निर्माण, मिट्टी एवं नमी संरक्षण तथा वृक्षारोपण के लिए प्रेरित किया गया। स्थानीय लोगों ने श्रमदान के माध्यम से जल संरचनाओं का निर्माण किया और उनके रख-रखाव की जिम्मेदारी भी स्वयं संभाली। परिणामस्वरूप वर्षाजल भूमि में अधिक मात्रा में समाहित होने लगा, भूजल स्तर बढ़ा और धीरे-धीरे बमाया तथा कोटवाली नदियों में पुनः प्राकृतिक प्रवाह स्थापित हो गया। इस प्रक्रिया ने यह सिद्ध कर दिया कि जब समाज स्वयं जल संरक्षण का नेतृत्व करता है, तब सीमित आर्थिक संसाधनों के बावजूद असाधारण परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

जनभागीदारी का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि वह जल संरक्षण को स्थायी बनाती है। केवल सरकारी योजनाओं पर आधारित परियोजनाएँ प्रायः योजना अवधि तक ही प्रभावी रहती हैं, जबकि समाज द्वारा संचालित जल संरक्षण पीढ़ियों तक चलता है। भारतीय जल संस्कृति में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को जल का संरक्षक मानता था। इसी कारण गाँवों में जल स्रोतों की सफाई, मरम्मत और संरक्षण नियमित सामाजिक

कार्य का भाग थे। आधुनिक भारत में इस सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना अत्यंत आवश्यक है। जल संरक्षण तब तक स्थायी नहीं हो सकता जब तक समाज स्वयं उसके प्रति उत्तरदायी न बने।

महिलाओं की भूमिका भारतीय जल संस्कृति में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण रही है। परिवार की जल आवश्यकताओं की पूर्ति, जल के मितव्ययी उपयोग तथा स्वच्छता की परम्परा को बनाए रखने में महिलाओं का योगदान सदैव अग्रणी रहा है। डॉ. राजेन्द्र सिंह ने भी अपने जल संरक्षण अभियानों में महिलाओं की सहभागिता को विशेष महत्त्व दिया। बमाया और कोटवाली नदी पुनर्जीवन अभियानों में महिला समूहों ने वृक्षारोपण, जल संरचनाओं की देखरेख, जल बचत के प्रति जनजागरण तथा सामुदायिक निर्णयों में सक्रिय भूमिका निभाई। इससे यह स्पष्ट हुआ कि जल प्रबंधन में महिलाओं की भागीदारी केवल सामाजिक समानता का प्रश्न नहीं, बल्कि प्रभावी जल संरक्षण की अनिवार्य शर्त है।

युवाओं की भूमिका भी भविष्य के जल प्रबंधन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भारतीय संस्कृति में नई पीढ़ी को प्रकृति संरक्षण का उत्तरदायित्व सौंपने की परम्परा रही है। वर्तमान समय में विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के माध्यम से जल संरक्षण, वर्षाजल संचयन, नदी स्वच्छता तथा पारम्परिक जल ज्ञान को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए। डॉ. राजेन्द्र सिंह का अनुभव बताता है कि जब युवा समाज जल संरक्षण के अभियान से जुड़ता है, तब वह केवल श्रम ही नहीं देता, बल्कि नई तकनीकों, नवाचारों और जनजागरण के माध्यम से व्यापक परिवर्तन का वाहक बन जाता है।

आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी और पारम्परिक ज्ञान का समन्वय भी जनभागीदारी को सशक्त बना सकता है। भू-स्थानिक सूचना प्रणाली, मोबाइल आधारित जल निगरानी, वर्षा के आँकड़ों का स्थानीय विश्लेषण तथा सामुदायिक जल लेखांकन जैसी आधुनिक तकनीकों का उपयोग स्थानीय समुदायों के अनुभवों के साथ किया जाए तो जल प्रबंधन अधिक प्रभावी और पारदर्शी बन सकता है। किंतु इन सभी तकनीकों की सफलता समाज की सक्रिय सहभागिता पर ही निर्भर करती है। यही कारण है कि भारतीय जल संस्कृति सदैव ज्ञान और समाज, विज्ञान और परम्परा तथा शासन और जनसहभागिता के समन्वय पर बल देती है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि भारतीय जल संस्कृति का भविष्य जनभागीदारी के बिना सुरक्षित नहीं हो सकता। वेदों में प्रतिपादित प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व, प्राचीन भारत की सामुदायिक जल परम्पराएँ तथा डॉ. राजेन्द्र सिंह द्वारा बमाया और कोटवाली नदियों के पुनर्जीवन का अनुभव एक ही सत्य की पुष्टि करते हैं कि जल

संरक्षण का सबसे प्रभावी माध्यम समाज की सामूहिक चेतना है। जब प्रत्येक नागरिक स्वयं को जल का संरक्षक मानेगा, प्रत्येक ग्राम अपने जल स्रोतों का संरक्षण करेगा और प्रत्येक पीढ़ी जल को साझा सांस्कृतिक धरोहर के रूप में स्वीकार करेगी, तभी भारतीय जल संस्कृति अपने वास्तविक स्वरूप में पुनः स्थापित होगी और भारत भविष्य में जल-सुरक्षित, पर्यावरण-संतुलित तथा सतत विकास के आदर्श राष्ट्र के रूप में विश्व के समक्ष उदाहरण प्रस्तुत कर सकेगा।

9.4 जल, पर्यावरण एवं सतत विकास

भारतीय ज्ञान परम्परा में जल, पर्यावरण और विकास को कभी एक-दूसरे से पृथक नहीं माना गया। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति को समस्त जीवन का आधार स्वीकार करते हुए जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि और आकाश को पंचमहाभूतों के रूप में प्रतिष्ठित किया। इन पंचमहाभूतों में जल को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया, क्योंकि समस्त जैविक प्रक्रियाएँ जल पर ही आधारित हैं। ऋग्वेद में जल की स्तुति करते हुए कहा गया है—**"आपो हि ष्ठा मयोभुवः"** (ऋग्वेद 10.9.1), अर्थात् जल समस्त प्राणियों के लिए सुख, समृद्धि और कल्याण का स्रोत है। अथर्ववेद में जल को औषधि तथा जीवनदाता कहा गया है—**"आपः विश्वस्य भेषजीः"**, अर्थात् जल सम्पूर्ण विश्व के लिए औषधि के समान है। इन वैदिक मंत्रों का तात्पर्य केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि गहन पर्यावरणीय है। यदि जल सुरक्षित रहेगा तो पर्यावरण सुरक्षित रहेगा और यदि पर्यावरण सुरक्षित रहेगा तभी मानव समाज का विकास स्थायी एवं संतुलित होगा।

भारतीय संस्कृति में प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व का सिद्धान्त सदैव सर्वोपरि रहा है। नदियों को माता, पृथ्वी को जननी, वनों को जीवनदाता तथा पर्वतों को देवस्वरूप मानने की परम्परा ने मनुष्य को प्रकृति के प्रति उत्तरदायी बनाया। **अथर्ववेद** का प्रसिद्ध वाक्य—**"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"**—यह स्पष्ट करता है कि पृथ्वी और प्रकृति के साथ मनुष्य का सम्बन्ध स्वामित्व का नहीं, बल्कि परिवार का है। इस दृष्टिकोण में जल का दोहन नहीं, बल्कि संरक्षण और संवर्धन ही मानव का धर्म माना गया है। आधुनिक पर्यावरण विज्ञान भी यही स्वीकार करता है कि जल, वन, मिट्टी, जैव विविधता तथा जलवायु एक-दूसरे पर निर्भर हैं। इनमें से किसी एक का असंतुलन सम्पूर्ण पारिस्थितिकी को प्रभावित करता है। इसलिए सतत विकास की अवधारणा का मूल आधार जल संरक्षण ही है।

वर्तमान समय में भारत सहित सम्पूर्ण विश्व जलवायु परिवर्तन के गंभीर प्रभावों का सामना कर रहा है। अनियमित वर्षा, अल्पवृष्टि, अतिवृष्टि, हिमनदों का तीव्र पिघलना, भूजल स्तर में निरन्तर गिरावट तथा नदियों का प्रदूषण जल सुरक्षा के लिए गंभीर संकट उत्पन्न कर रहे हैं। बढ़ते औद्योगिकीकरण, शहरीकरण तथा प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन ने पर्यावरणीय संतुलन को भी प्रभावित किया है।

परिणामस्वरूप अनेक क्षेत्रों में सूखा और बाढ़ दोनों की घटनाएँ बढ़ रही हैं। यह स्थिति स्पष्ट करती है कि केवल आर्थिक विकास को प्रगति का मापदण्ड मानना पर्याप्त नहीं है। विकास तभी सार्थक होगा जब वह पर्यावरण संरक्षण और जल सुरक्षा के साथ संतुलित हो। यही भारतीय जल संस्कृति का मूल संदेश भी है।

सतत विकास का तात्पर्य ऐसी विकास प्रक्रिया से है जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के अधिकारों को भी सुरक्षित रखे। जल के संदर्भ में इसका अर्थ यह है कि हम जल संसाधनों का उपयोग संयम, न्याय और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ करें, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी समान रूप से इन संसाधनों का लाभ उठा सकें। भारतीय जल संस्कृति सदैव मितव्ययिता, पुनर्भरण और पुनर्चक्रण की भावना पर आधारित रही है। प्राचीन भारत में वर्षाजल संचयन, तालाबों का निर्माण, बावड़ियों का संरक्षण, नदी तटों की मर्यादा तथा जलागम क्षेत्रों की रक्षा के माध्यम से जल का ऐसा प्रबंधन किया जाता था जिससे प्राकृतिक संतुलन बना रहे। यही सिद्धान्त आज आधुनिक सतत विकास के मूल आधार बन चुके हैं।

इन सिद्धान्तों को व्यवहार में स्थापित करने वाले **डॉ. राजेन्द्र सिंह**, ने अपने जीवन के कार्यों से यह सिद्ध किया कि जल संरक्षण केवल जल उपलब्ध कराने का कार्यक्रम नहीं, बल्कि पर्यावरण पुनर्जीवन का व्यापक अभियान है। राजस्थान सहित देश के अनेक भागों में उनके नेतृत्व में किए गए कार्यों से सूखी नदियों में पुनः जल प्रवाहित हुआ, भूजल स्तर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, वनस्पति का विकास हुआ तथा स्थानीय जैव विविधता पुनर्जीवित हुई। यह अनुभव स्पष्ट करता है कि जल संरक्षण का प्रत्यक्ष प्रभाव सम्पूर्ण पर्यावरण पर पड़ता है।

वर्षाजल संचयन, जोहड़ों का निर्माण, मिट्टी एवं नमी संरक्षण, भूजल पुनर्भरण तथा व्यापक वृक्षारोपण के माध्यम से प्राकृतिक जल चक्र को पुनर्स्थापित किया गया। इसके परिणामस्वरूप न केवल नदी में पुनः प्रवाह स्थापित हुआ, बल्कि आसपास के क्षेत्रों में भूजल स्तर बढ़ा, सूखे कुएँ और बावड़ियाँ पुनर्जीवित हुईं, कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई, पशुधन के लिए जल उपलब्ध हुआ तथा स्थानीय वनस्पतियों और वन्यजीवों की संख्या में भी वृद्धि हुई। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया इस बात का प्रमाण है कि नदी पुनर्जीवन वास्तव में पर्यावरण पुनर्जीवन की प्रक्रिया है।

डॉ. राजेन्द्र सिंह का दृष्टिकोण भारतीय वैदिक परम्परा के अत्यंत निकट है। उनका मानना है कि जल का संरक्षण तभी संभव है जब मनुष्य स्वयं को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका संरक्षक माने। यही विचार वेदों, उपनिषदों तथा भारतीय दर्शन में

निरन्तर व्यक्त हुआ है। उन्होंने अनेक अवसरों पर यह स्पष्ट किया कि यदि वर्षाजल को स्थानीय स्तर पर रोका जाए, भूजल को पुनर्भरित किया जाए और समाज स्वयं जल संरक्षण का उत्तरदायित्व स्वीकार करे, तो जल संकट और पर्यावरणीय संकट दोनों का समाधान संभव है। बमाया और कोटवाली नदियों के पुनर्जीवन ने इस विचार को व्यवहार में सिद्ध कर दिया।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित **सतत विकास लक्ष्य (SDGs)** में स्वच्छ जल, स्वच्छता, जलवायु कार्रवाई, स्थलीय पारिस्थितिकी के संरक्षण तथा सतत समुदायों के निर्माण को विशेष महत्त्व दिया गया है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति भारत के लिए तभी संभव होगी जब जल प्रबंधन को विकास की प्रत्येक योजना का अभिन्न अंग बनाया जाए। प्रत्येक विकास परियोजना का मूल्यांकन केवल आर्थिक लाभ के आधार पर नहीं, बल्कि इस आधार पर भी किया जाना चाहिए कि उसका जल संसाधनों, नदियों, भूजल, जैव विविधता और स्थानीय पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ेगा। भारतीय जल संस्कृति का मूल दर्शन भी यही है कि विकास प्रकृति के साथ संघर्ष नहीं, बल्कि उसके साथ समन्वय का माध्यम होना चाहिए।

आज आवश्यकता इस बात की है कि जल संरक्षण को केवल तकनीकी कार्यक्रम न मानकर सांस्कृतिक पुनर्जागरण के रूप में देखा जाए। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, अनुसंधान संस्थानों, धार्मिक संगठनों, ग्राम सभाओं तथा नागरिक समाज को जल और पर्यावरण संरक्षण के अभियान से जोड़ना होगा। वर्षाजल संचयन, पारम्परिक जल संरचनाओं का संरक्षण, वृक्षारोपण, नदी तटों का पुनर्वास तथा भूजल पुनर्भरण को जनआन्दोलन का स्वरूप देना समय की आवश्यकता है। यही वह मार्ग है जिस पर चलते हुए भारत पर्यावरणीय संकटों का सामना कर सकता है और सतत विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि जल, पर्यावरण और सतत विकास तीन पृथक अवधारणाएँ नहीं, बल्कि एक ही जीवन-दर्शन के परस्पर पूरक आयाम हैं। वेदों में प्रतिपादित जल की पवित्रता, भारतीय संस्कृति का प्रकृति के प्रति सम्मान तथा डॉ. राजेन्द्र सिंह द्वारा बमाया और कोटवाली नदियों के पुनर्जीवन का व्यावहारिक अनुभव इस तथ्य की पुष्टि करता है कि जल संरक्षण ही पर्यावरण संरक्षण का आधार है और पर्यावरण संरक्षण ही सतत विकास की अनिवार्य शर्त। यदि भारत अपनी प्राचीन जल परम्पराओं को आधुनिक विज्ञान, सामुदायिक सहभागिता और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व के साथ पुनः स्थापित कर सके, तो वह न केवल अपनी जल सुरक्षा सुनिश्चित करेगा, बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिए सतत विकास का एक अनुकरणीय मॉडल भी प्रस्तुत करेगा।

9.5 निष्कर्ष

भारतीय जल संस्कृति का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारत में जल को कभी केवल प्राकृतिक संसाधन अथवा आर्थिक संपदा के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि जीवन, संस्कृति, धर्म, पर्यावरण और लोककल्याण के आधारभूत तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। भारतीय ज्ञान परम्परा में जल सृष्टि के संचालन का मूलाधार है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद में जल की महत्ता का बार-बार प्रतिपादन मिलता है। ऋग्वेद के *आपः सूक्त* में जल को सुख, समृद्धि तथा जीवन का आधार कहा गया है—**"आपो हि ष्ठा मयोभुवः"**। अथर्ववेद में जल को **"विश्वस्य भेषजीः"** अर्थात सम्पूर्ण विश्व की औषधि कहा गया है। इन वैदिक उद्घोषों का मूल संदेश यह है कि जल का संरक्षण केवल संसाधन प्रबंधन का विषय नहीं, बल्कि मानव सभ्यता की निरन्तरता तथा प्रकृति के संतुलन की अनिवार्य शर्त है।

प्राचीन भारत की जल परम्पराएँ इस वैदिक दृष्टिकोण का व्यवहारिक स्वरूप थीं। देश के विभिन्न भागों में भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप तालाब, सरोवर, बावड़ियाँ, कुण्ड, जोहड़, आहर-पाइन, एरी तथा अन्य जल संरचनाओं का विकास किया गया। इनका निर्माण केवल जल संग्रहण के उद्देश्य से नहीं, बल्कि वर्षाजल संचयन, भूजल पुनर्भरण, कृषि, पशुपालन तथा सामाजिक जीवन की स्थिरता को बनाए रखने के लिए किया जाता था। जल स्रोतों का संरक्षण समाज का सामूहिक उत्तरदायित्व था और यही कारण था कि भारतीय समाज ने सीमित प्राकृतिक संसाधनों के बावजूद हजारों वर्षों तक जल सुरक्षा को बनाए रखा। यह अनुभव स्पष्ट करता है कि जल का संरक्षण तकनीकी उपायों से अधिक सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक अनुशासन पर आधारित होता है।

समकालीन भारत में बढ़ती जनसंख्या, तीव्र नगरीकरण, औद्योगिकीकरण, भूजल के अत्यधिक दोहन, जल प्रदूषण तथा जलवायु परिवर्तन ने जल संकट को अत्यंत गंभीर बना दिया है। अनेक नदियाँ अपने प्राकृतिक प्रवाह से वंचित हो चुकी हैं, पारंपरिक जल स्रोत उपेक्षित हो गए हैं और भूजल स्तर निरंतर नीचे जा रहा है। ऐसी स्थिति में केवल आधुनिक तकनीकी परियोजनाएँ इस संकट का स्थायी समाधान प्रस्तुत नहीं कर सकतीं। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय जल संस्कृति के मूल सिद्धान्तों—प्रकृति के प्रति सम्मान, वर्षाजल संचयन, सामुदायिक उत्तरदायित्व, नदी संरक्षण तथा जल के मितव्ययी उपयोग—को आधुनिक विज्ञान और समकालीन जल प्रबंधन प्रणाली के साथ समन्वित किया जाए। यही भारतीय जल संस्कृति के भविष्य की सबसे महत्त्वपूर्ण दिशा है।

भारतीय जल संस्कृति के आधुनिक पुनर्जागरण के संदर्भ में डॉ. राजेन्द्र सिंह, का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने कार्यों के माध्यम से यह सिद्ध किया कि भारत की पारंपरिक जल ज्ञान प्रणाली आज भी वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यंत प्रभावी है। उनका संपूर्ण कार्य भारतीय जल संस्कृति के उन सिद्धान्तों पर आधारित है जिनका उल्लेख वैदिक साहित्य तथा प्राचीन भारतीय परम्पराओं में मिलता है। उन्होंने जल को केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि समाज, संस्कृति और पर्यावरण के मध्य संतुलन स्थापित करने वाले जीवन तत्त्व के रूप में देखा। उनका विश्वास रहा कि यदि वर्षाजल को स्थानीय स्तर पर संरक्षित किया जाए, भूजल पुनर्भरण को बढ़ावा दिया जाए और समाज स्वयं जल संरक्षण का उत्तरदायित्व स्वीकार करे, तो जल संकट का स्थायी समाधान संभव है।

इसी विचारधारा का सशक्त उदाहरण **बमाया तथा कोटवाली नदियों का पुनर्जीवन** है। इन नदियों के संरक्षण एवं पुनर्जीवन में स्थानीय समुदायों की सक्रिय सहभागिता, वर्षाजल संचयन, जलागम क्षेत्र विकास, जोहड़ों तथा पारंपरिक जल संरचनाओं के निर्माण, भूजल पुनर्भरण तथा वृक्षारोपण जैसे उपायों को अपनाया गया। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप वर्षों से जलविहीन हो चुकी नदी धाराओं में पुनः प्राकृतिक प्रवाह स्थापित हुआ, भूजल स्तर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, कृषि उत्पादन में सुधार आया, जैव विविधता का पुनर्विकास हुआ तथा स्थानीय समुदायों की आजीविका सुदृढ़ हुई। यह उपलब्धि इस तथ्य की पुष्टि करती है कि नदी का वास्तविक पुनर्जीवन तभी संभव है जब सम्पूर्ण जलागम क्षेत्र, प्राकृतिक पारिस्थितिकी तथा स्थानीय समाज को एक समेकित इकाई के रूप में देखा जाए।

डॉ. राजेन्द्र सिंह द्वारा अपनाया गया मॉडल वस्तुतः भारतीय वैदिक जल-दर्शन की आधुनिक व्याख्या है। ऋग्वेद में नदियों को जीवनदायिनी तथा लोककल्याणकारी शक्ति माना गया है, जबकि अथर्ववेद पृथ्वी और प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व का संदेश देता है। इन वैदिक सिद्धान्तों का व्यवहारिक रूप डॉ. राजेन्द्र सिंह के कार्यों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जहाँ जल संरक्षण को केवल इंजीनियरिंग परियोजना न मानकर सामाजिक चेतना, पर्यावरणीय संतुलन और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का माध्यम बनाया गया। बमाया और कोटवाली नदियों का पुनर्जीवन इस बात का प्रमाण है कि भारतीय ज्ञान परम्परा आज भी समकालीन जल संकट के समाधान में मार्गदर्शक सिद्ध हो सकती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय जल संस्कृति का भविष्य न तो केवल अतीत की परम्पराओं में निहित है और न ही केवल आधुनिक तकनीक में। इसका वास्तविक आधार प्राचीन भारतीय ज्ञान, वैदिक जल-दर्शन, वैज्ञानिक अनुसंधान, पर्यावरणीय उत्तरदायित्व तथा जनभागीदारी के समन्वय में है। यदि भारत अपनी पारंपरिक जल विरासत को आधुनिक जल विज्ञान के साथ समन्वित करते हुए जल

संरक्षण को राष्ट्रीय जनआन्दोलन का स्वरूप प्रदान करे, तो वह न केवल अपने जल संकट का स्थायी समाधान प्राप्त कर सकेगा, बल्कि सम्पूर्ण विश्व के समक्ष जल प्रबंधन का एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत करेगा जिसमें संस्कृति, विज्ञान, समाज और प्रकृति का संतुलित समन्वय विद्यमान होगा। यही भारतीय जल संस्कृति का वास्तविक संदेश है और यही उसके उज्ज्वल, समृद्ध तथा सतत भविष्य की सबसे बड़ी आशा भी है।

भारतीय जल संस्कृति का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारत में जल को कभी केवल भौतिक संसाधन या आर्थिक पूँजी के रूप में नहीं देखा गया। भारतीय ज्ञान परम्परा में जल जीवन, संस्कृति, धर्म, पर्यावरण और लोककल्याण का मूलाधार है। वैदिक ऋषियों ने जल को अमृत, औषधि और समस्त प्राणियों के पोषण का स्रोत माना। ऋग्वेद में जल की स्तुति करते हुए कहा गया है—"आपो हि ष्ठा मयोभुवः" अर्थात् जल सुख, समृद्धि और जीवन का आधार है, जबकि अथर्ववेद में जल को "विश्वस्य भेषजीः" अर्थात् सम्पूर्ण संसार के लिए औषधि कहा गया है। इन वैदिक अवधारणाओं से स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति में जल संरक्षण केवल संसाधन प्रबंधन का विषय नहीं, बल्कि नैतिक उत्तरदायित्व, सामाजिक अनुशासन और आध्यात्मिक चेतना का अभिन्न अंग रहा है। यही कारण है कि प्राचीन भारत में नदियों, तालाबों, सरोवरों, कुओँ, बावड़ियों और अन्य जल संरचनाओं का निर्माण तथा संरक्षण लोकजीवन की स्वाभाविक प्रक्रिया थी।

वर्तमान समय में तीव्र औद्योगिकीकरण, अनियोजित नगरीकरण, बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन, भूजल के अत्यधिक दोहन तथा नदियों के प्रदूषण ने भारत की जल सुरक्षा के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ उपस्थित कर दी हैं। अनेक नदियाँ अपने प्राकृतिक प्रवाह को खो चुकी हैं, भूजल स्तर निरंतर गिर रहा है और पारंपरिक जल स्रोत उपेक्षित हो गए हैं। ऐसी स्थिति में केवल आधुनिक तकनीकी उपाय पर्याप्त सिद्ध नहीं हो सकते। जल संकट का स्थायी समाधान तभी संभव है जब वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ भारतीय जल संस्कृति के मूल सिद्धान्तों को पुनः अपनाया जाए। जल को उपभोग की वस्तु के स्थान पर साझा प्राकृतिक धरोहर मानना, जल संरक्षण को सामाजिक दायित्व के रूप में स्वीकार करना तथा प्रकृति के साथ संतुलित विकास की नीति अपनाना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

इस संदर्भ में डॉ. राजेन्द्र सिंह, जिन्हें विश्वभर में "वाटरमैन ऑफ इंडिया" के नाम से सम्मानित किया जाता है, का योगदान भारतीय जल संस्कृति के आधुनिक पुनर्जागरण का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। उन्होंने अपने कार्यों के माध्यम से यह सिद्ध किया कि जल संकट का समाधान केवल विशाल बाँधों अथवा महँगी परियोजनाओं में नहीं, बल्कि स्थानीय समाज की सहभागिता, पारंपरिक जल ज्ञान

तथा वर्षाजल संचयन की भारतीय पद्धतियों में निहित है। उनके नेतृत्व एवं मार्गदर्शन में अनेक सूखी नदियाँ पुनर्जीवित हुईं और हजारों ग्रामों में जल आत्मनिर्भरता स्थापित हुई। विशेष रूप से बमाया और कोटवाली नदियों के पुनर्जीवन ने यह प्रमाणित किया कि यदि जलागम क्षेत्रों का संरक्षण किया जाए, वर्षाजल को स्थानीय स्तर पर रोका जाए, जोहड़ों एवं पारंपरिक जल संरचनाओं का निर्माण किया जाए तथा समाज स्वयं जल संरक्षण का दायित्व स्वीकार करे, तो सूखी नदी भी पुनः जीवन प्राप्त कर सकती है। इन प्रयासों से केवल नदी का प्रवाह ही पुनर्स्थापित नहीं हुआ, बल्कि भूजल स्तर में वृद्धि, कृषि उत्पादन में सुधार, जैव विविधता का संरक्षण, ग्रामीण अर्थव्यवस्था का सुदृढ़ीकरण तथा सामाजिक एकता का भी विकास हुआ।

डॉ. राजेन्द्र सिंह का कार्य वस्तुतः वैदिक जल-दर्शन की आधुनिक व्याख्या है। जिस प्रकार वैदिक ऋषियों ने जल को प्रकृति और मानव जीवन के मध्य सेतु माना था, उसी प्रकार उन्होंने जल संरक्षण को सामाजिक सहयोग, पर्यावरणीय संतुलन और मानवीय उत्तरदायित्व से जोड़ा। उनके कार्यों ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय जल संस्कृति केवल इतिहास का विषय नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की व्यवहारिक आवश्यकता है। बमाया और कोटवाली नदियों का पुनर्जीवन यह सिद्ध करता है कि जब पारंपरिक ज्ञान, आधुनिक विज्ञान और सामुदायिक सहभागिता एक साथ कार्य करते हैं, तब जल संकट का स्थायी समाधान संभव हो जाता है। यह मॉडल न केवल भारत के लिए, बल्कि विश्व के उन सभी देशों के लिए प्रेरणादायी है जो जलवायु परिवर्तन और जल संकट की समस्याओं से जूझ रहे हैं।

भविष्य की भारतीय जल नीति को इस समन्वित दृष्टिकोण को अपनाना होगा। प्रत्येक नदी को जीवंत पारिस्थितिक तंत्र के रूप में मान्यता देना, जलागम क्षेत्रों का वैज्ञानिक संरक्षण, भूजल पुनर्भरण, वर्षाजल संचयन, पारंपरिक जल स्रोतों का पुनर्जीवन, जल उपयोग की दक्षता में वृद्धि तथा स्थानीय समुदायों को जल शासन में सहभागी बनाना समय की अनिवार्य आवश्यकता है। साथ ही विद्यालयों, विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों में भारतीय जल संस्कृति, वैदिक जल-दर्शन तथा पारंपरिक जल प्रबंधन प्रणालियों पर गंभीर अध्ययन और शोध को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। नई पीढ़ी को यह समझाना आवश्यक है कि जल संरक्षण केवल पर्यावरणीय कार्यक्रम नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक समृद्धि, सांस्कृतिक संरक्षण और मानव अस्तित्व से जुड़ा हुआ प्रश्न है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि भारतीय जल संस्कृति का भविष्य तभी सुरक्षित होगा जब विकास और प्रकृति के बीच संतुलन स्थापित किया जाएगा। वेदों का जल-दर्शन, प्राचीन भारतीय समाज की सामुदायिक जल परम्पराएँ तथा डॉ. राजेन्द्र सिंह द्वारा बमाया और कोटवाली नदियों के पुनर्जीवन का व्यावहारिक अनुभव इस तथ्य की पुष्टि करता है कि जल का सम्मान, संरक्षण और न्यायपूर्ण उपयोग ही सतत

विकास का वास्तविक आधार है। यदि भारत अपनी प्राचीन जल विरासत को आधुनिक विज्ञान, जनभागीदारी और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व के साथ पुनः स्थापित कर सके, तो वह न केवल अपने जल संकट का प्रभावी समाधान खोज सकेगा, बल्कि विश्व समुदाय के समक्ष जल प्रबंधन का एक ऐसा आदर्श मॉडल प्रस्तुत करेगा जिसमें वैदिक ज्ञान, सांस्कृतिक परम्परा, वैज्ञानिक दृष्टि और सामाजिक चेतना का अद्वितीय समन्वय विद्यमान होगा। यही भारतीय जल संस्कृति का वास्तविक संदेश है और यही उसके उज्ज्वल, समृद्ध तथा सतत भविष्य की सबसे बड़ी आशा भी है।

परिशिष्ट-I
जल संचयन के पारम्परिक संसाधन
चित्र-5.5:(अ)

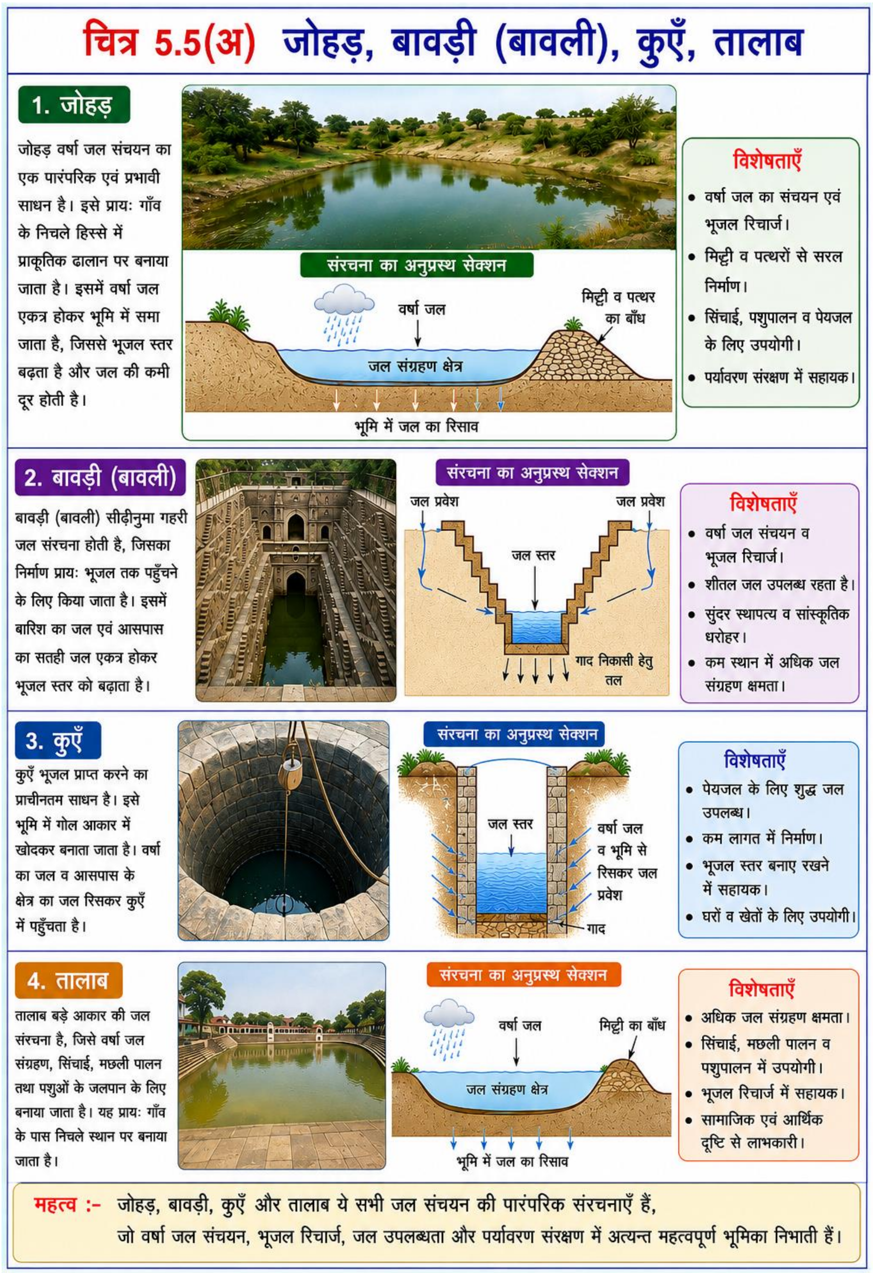

जल संचयन के पारम्परिक संसाधन
चित्र-5.5(ब)

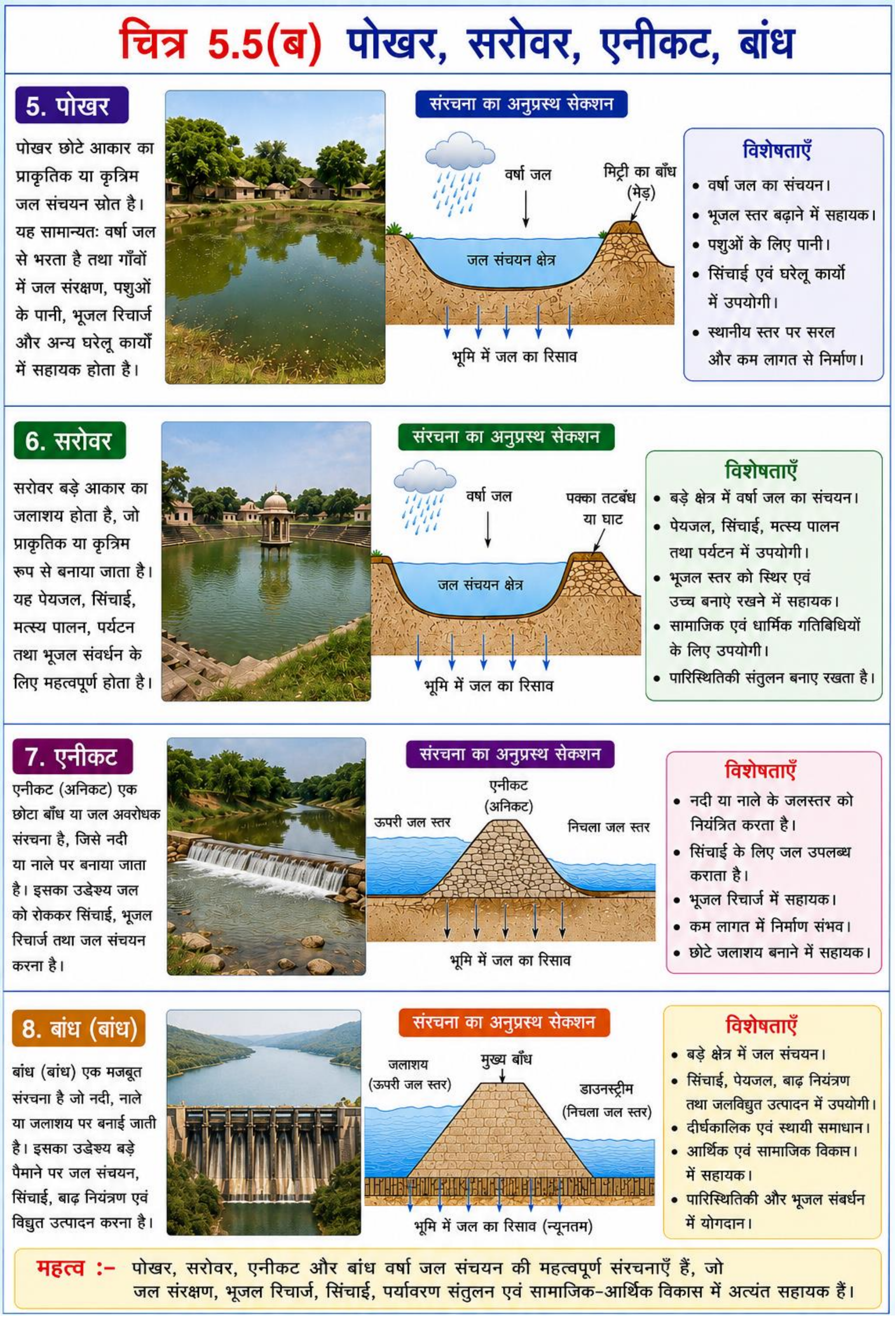

जल संचयन के पारम्परिक संसाधन
चित्र-5.5(स)

चित्र 5.5(स) आहर–पाइन प्रणाली, कुंड व टांके

9. आहर–पाइन प्रणाली

आहर–पाइन बिहार के मैदानी क्षेत्रों की एक प्राचीन एवं सफल जल संचयन प्रणाली है। इसमें वर्षा जल को आहर नामक जलाशय में एकत्र किया जाता है। आहर से अतिरिक्त जल पाइन नामक नालियों द्वारा खेतों तक पहुँचाया जाता है। यह प्रणाली भूजल स्तर को बढ़ाने, सिंचाई में सहायता करने तथा बाढ़ नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

आहर–पाइन प्रणाली का चित्रात्मक स्वरूप

विशेषताएँ

- वर्षा जल का संचयन आहर में होता है।
- आहर से पाइन नालियों द्वारा जल खेतों तक पहुँचता है।
- भूजल स्तर में वृद्धि होती है।
- सिंचाई की सुविधा मिलती है।
- बाढ़ नियंत्रण एवं सूखे की स्थिति में लाभकारी।

10. कुंड व टांके

(क) कुंड

कुंड वर्षा जल संचयन की एक पारंपरिक संरचना है, जिसमें वर्षा जल को एक नियत गहरी चौकोर या आयताकार संरचना में एकत्र किया जाता है। इसका उपयोग पीने, सिंचाई तथा अन्य घरेलू आवश्यकताओं के लिए किया जाता है।

कुंड का उदाहरण

कुंड का संरचनात्मक चित्र

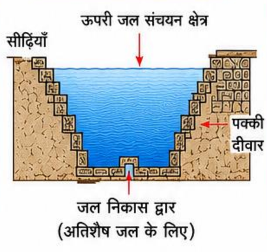

विशेषताएँ

- वर्षा जल को सुरक्षित रूप से एकत्र करता है।
- गहरी संरचना होने से जल लंबे समय तक सुरक्षित रहता है।
- पीने, सिंचाई एवं पशुपालन में उपयोगी।
- जल की गुणवत्ता अपेक्षाकृत अच्छी रहती है।

(ख) टांके

टांके प्राय: घरों, हवेलियों या सामुदायिक भवनों की छतों से वर्षा जल को पाइप द्वारा एक बंद भूमिगत टंकी में पहुँचाकर संग्रहित करने की प्रणाली है। यह विशेषकर शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में अत्यंत उपयोगी है।

टांका का उदाहरण

टांके का संरचनात्मक चित्र

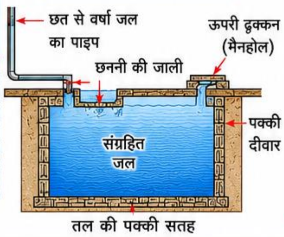

विशेषताएँ

- वर्षा जल को पाइप द्वारा टांके में संग्रहित किया जाता है।
- वाष्पीकरण की हानि न्यूनतम।
- जल प्रदूषण की संभावना कम।
- पीने के जल के लिए अत्यंत उपयोगी।
- कम रखरखाव एवं दीर्घकालीन समाधान।

महत्व :– आहर–पाइन प्रणाली, कुंड और टांके वर्षा जल संचयन की पारंपरिक एवं वैज्ञानिक प्रणालियाँ हैं, जो जल संरक्षण, भूजल संवर्धन, सिंचाई, पेयजल उपलब्धता तथा पर्यावरण संतुलन में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

परिशिष्ट-II
आयतन व लागत निकालने कि विधि
चित्र-5.7:(अ)

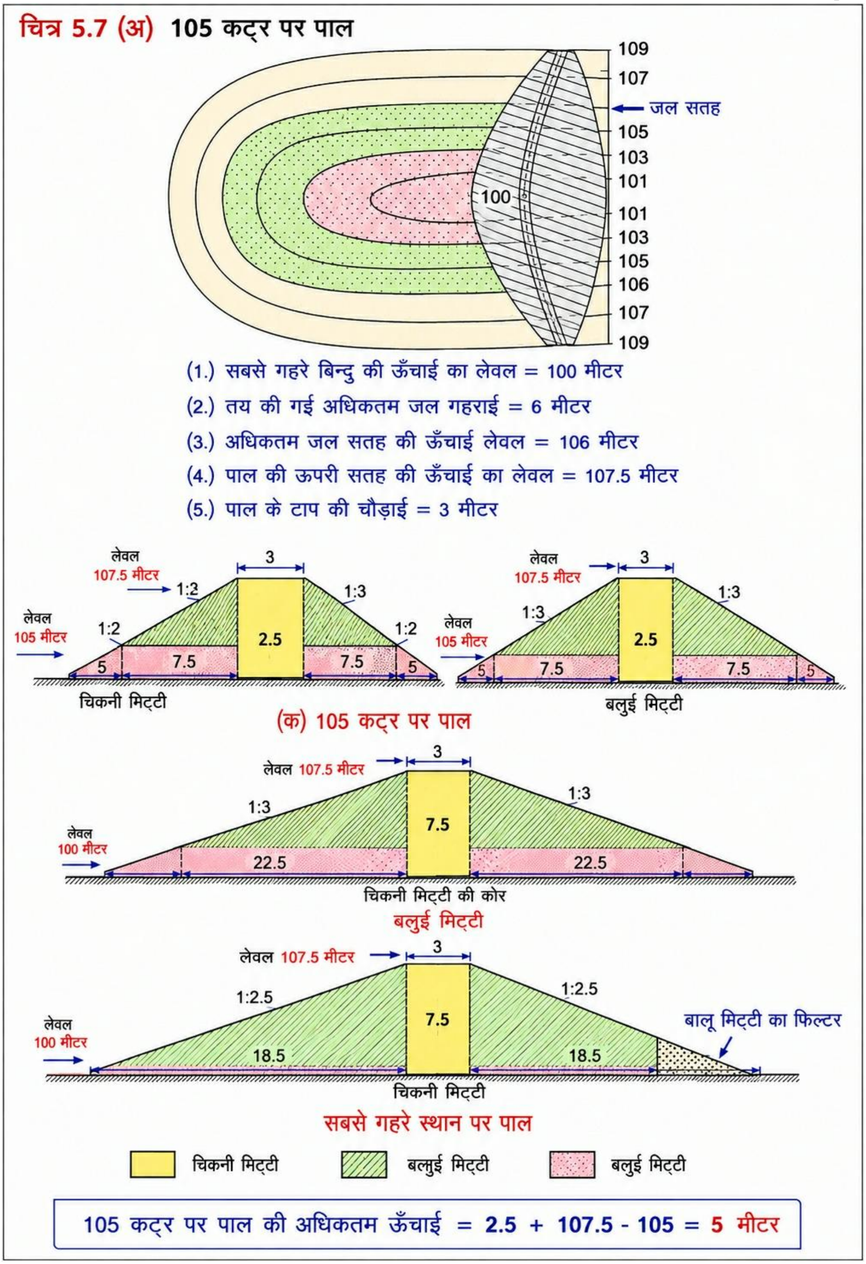

चित्र-5.7: (ब)

चित्र 5.7 (ब) पक्के कार्य का आयतन व लागत निकालना

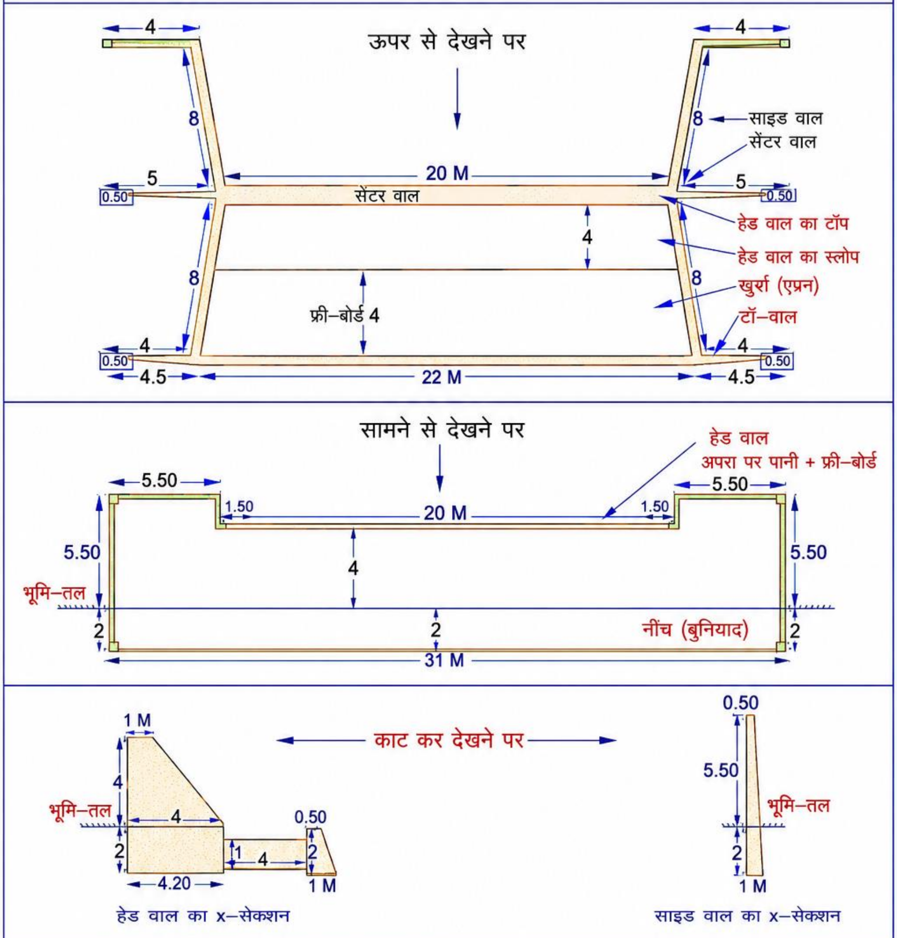

प्रति घन मीटर पक्की चिनाई में कुल लागत (एक उदाहरण)

यदि, 1 घन मी. चिनाई में पत्थर ट्रोंली — 0.50 x 500(रु.) = 250 रुपये
1 " " बजरी ट्रोंली — 0.20 x 1000(रु.) = 200 "
1 " " सीमेंन्ट बैग — 2 x 300(रु.) = 600 "
1 " " मिस्त्री (कारीगर) — 0.50 x 600(रु.) = 300 "
1 " " श्रमिक (मजदूर) — 1.50 x 300(रु.) = 450 "
1 " " मिस्त्री (पानी हेतु) — 0.20 x 300(रु.) = 60 "
1 " " अन्य खर्च (उपल लागत का 10 प्रतिशत) = 186 "

तो, कुल लागत = 2046 रुपये प्रति घनमीटर

पक्के कार्य का बजट

हेड वाल की नीच का आयतन = 20 x 4.20 x 2 =168 मी.^{3}
हेड वाल का आयतन = 20 x 4 $\pm$ 1 x 4 =200 मी.^{3}
दोनों साइड वालों का आयतन = $2 \times (24 \times \frac{1+0.50}{2} \times 7.50 \pm 3)$ =189 मी.^{3}
दोनों सेंटर वालों का आयतन = $2 \times (5 \times \frac{1+0.50}{2} \times 7.50)$ = 56.25 मी.^{3}
खेली (खुर्रा) का आयतन = 22 x 4 x 1 = 88 मी.^{3}
टॉ–वाल का आयतन = $22 \times \frac{1+0.50}{2} \times 2$ = 33 मी.^{3}

कुल आयतन = **734.25** घन मीटर

एन्निकट की कुल लागत = **734.25 x 2046 = 15,02,275** रुपये

(पन्द्रह लाख दो हजार दो सौ पचहत्तर रुपये मात्र)

चित्र 5.7 (स) पक्के कार्य में अपरा की लम्बाई निर्धारित करना

डिकेन्स सूत्र से

जल प्रवाह $Q = CA^{\frac{3}{4}}$ (जहाँ Q = जल प्रवाह घन मीटर/प्रति सेकण्ड में)

C = एक स्थिरांक है, जो ढाल के साथ-साथ परिवर्तित हो जाता है। यह 6 से 11.5 तक हो सकता है। राजस्थान के पूर्वोत्तर भाग में यह 8 लेना सुरक्षित पाया गया है।

A = जलागम क्षेत्र वर्ग किलोमीटर में है।

अतः C का मान 8 लेने पर जल प्रवाह $Q = 8A^{\frac{3}{4}}$

वीयर सूत्र से

जल प्रवाह $Q = 1.7Lh^{\frac{3}{2}}$ (जहाँ Q, घन मीटर/प्रति सेकण्ड में जल प्रवाह है

1.7 = एक स्थिरांक (जल प्रवाह गुणांक) है,

L = अपरा की लम्बाई मीटर में तथा

h = अपरा पर बहने वाले पानी की अधिकतम ऊँचाई है।)

अपरा की लम्बाई हेतु उदाहरण :-

एक प्रस्तावित बाँध का जलागम क्षेत्र (कैचमेंट एरिया) 11 वर्ग कि.मी. है और अपरा पर से अधिकतम पानी 0.60 मी. चलाना है। इसे अधिकतम वर्षा में सुरक्षित रखने के लिए कम से कम कितनी लम्बाई की अपरा बनानी होगी ?

सूत्र से

जल प्रवाह $Q = 8A^{\frac{3}{4}} = 1.7Lh^{\frac{3}{2}}$

या $Q = 8^{\frac{3}{4}} \times 11 = 48.32$ (प्रश्नानुसार)

अतः अपरा की लम्बाई $L = \frac{Q}{1.7h^{\frac{3}{2}}} = \frac{48.32}{1.7 \times (0.60)^{\frac{3}{2}}} = \frac{48.32}{1.7 \times 0.465} = \frac{48.32}{0.79} = 61$ मीटर

अर्थात् सुरक्षित अपरा की लम्बाई = 61 मीटर

आधार व टॉप की चौड़ाई के लिए

हेड वाल की ऊपर की चौड़ाई $a = h - (0.8 \times h)$ (जहाँ h = भरे हुए पानी की अधिकतम ऊँचाई है। टॉप की चौड़ाई 0.50 मी. से कम नहीं होनी चाहिए।)

हेड वाल की नीचे की चौड़ाई $b = a + 0.8\,H$ (जहाँ H = भरे हुए पानी की अधिकतम ऊँचाई। अपरा पर से बहने वाले पानी की अधिकतम ऊँचाई है।)

स्थिरता हेतु आधार की चौड़ाई $b = \frac{H}{\sqrt{p - 1}}$ जहाँ H = (उच्चतम बहाव का तल) – (जमीन का तल)

p = सीमेंट मसाले में पत्थर की चिनाई का घनत्व है, जिसका मान 2.2 टन/घन मीटर होता है।

परिशिष्ट –III
संदर्भ / पुस्तकें

वैदिक एवं उपनिषद् साहित्य

1. ऋग्वेद, सम्पा. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी।
2. यजुर्वेद (वाजसनेयी संहिता), स्वाध्याय मण्डल, पारडी।
3. सामवेद, स्वाध्याय मण्डल, पारडी।
4. अथर्ववेद, स्वाध्याय मण्डल, पारडी।
5. तैत्तिरीय संहिता, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
6. शतपथ ब्राह्मण, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
7. ऐतरेय ब्राह्मण, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
8. ईशावास्य उपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर।
9. छान्दोग्य उपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर।
10. बृहदारण्यक उपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर।
11. कठोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर।
12. मुण्डकोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर।

स्मृति, महाकाव्य एवं पुराण

13. वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
14. महाभारत, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पुणे।
15. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर।
16. श्रीमद्भागवत महापुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
17. विष्णु पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
18. मत्स्य पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
19. वराह पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
20. स्कन्द पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
21. पद्म पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
22. अग्नि पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
23. वायु पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर।

ज्योतिष, पंचांग एवं प्राचीन विज्ञान

24. वराहमिहिर. **बृहत्संहिता**. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
25. वराहमिहिर. **पंचसिद्धान्तिका**. चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
26. सूर्य सिद्धान्त, निर्णय सागर प्रेस।
27. आर्यभटीय, आर्यभट्ट।

28. सिद्धान्त शिरोमणि, भास्कराचार्य।

जल, पर्यावरण एवं भारतीय ज्ञान परंपरा

29. राजेन्द्र सिंह. **जल ही जीवन है**. तरुण भारत संघ, अलवर।
30. राजेन्द्र सिंह. **भारत में जल संरक्षण के लोक उपाय**. तरुण भारत संघ।
31. अनुपम मिश्र. **आज भी खरे हैं तालाब**. गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली।
32. अनुपम मिश्र. **राजस्थान की रजत बूँदें**. गांधी शांति प्रतिष्ठान।
33. माधव गाडगिल एवं रामचन्द्र गुहा. **यह धरती हमारी** (अनुवादित संस्करण)।
34. एम. एस. स्वामीनाथन. **कृषि एवं पर्यावरण**.
35. राष्ट्रीय जल नीति, भारत सरकार।
36. केन्द्रीय भूजल बोर्ड (CGWB) की विभिन्न रिपोर्टें।
37. भारतीय मौसम विज्ञान विभाग (IMD) की प्रकाशन सामग्री।

इतिहास एवं संस्कृति

38. ए. एल. बाशम. **द वण्डर दैट वाज़ इंडिया** (हिन्दी अनुवाद)।
39. राधाकुमुद मुखर्जी. **भारतीय संस्कृति**.
40. वासुदेव शरण अग्रवाल. **भारतीय कला एवं संस्कृति**.
41. डी. डी. कौशाम्बी. **प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता**.

चंबल एवं क्षेत्रीय अध्ययन

42. राजस्थान सरकार, जल संसाधन विभाग की रिपोर्टें।
43. मध्यप्रदेश जल संसाधन विभाग की प्रकाशन सामग्री।
44. राष्ट्रीय जल विकास अभिकरण (NWDA) की रिपोर्टें।
45. तरुण भारत संघ, अलवर. वार्षिक प्रतिवेदन एवं परियोजना दस्तावेज।
46. चंबल नदी बेसिन अध्ययन रिपोर्ट।
47. धौलपुर एवं करौली जिले के राजस्व एवं जल संसाधन अभिलेख।

लोकज्ञान एवं कृषि

48. घाघ एवं भड्डरी. **घाघ-भड्डरी की कहावतें**.
49. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) के प्रकाशन।
50. राष्ट्रीय वर्षा आधारित क्षेत्र प्राधिकरण (NRAA) की रिपोर्टें।

परिशिष्ट -IV
शब्द-कोष

अ

People's Peace and Water Summit-121
अंतरराज्यीय नदी-62
अंतरराज्यीय समन्वय-148
अंतरराष्ट्रीय नदी-62
अग्नि-22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 32
अग्नि और पृथ्वी-27, 28, 29, 30, 31, 32
अग्नि और पृथ्वी निर्माण-71, 72
अघमर्षण सूक्त-8, 9
अत्यधिक वर्षा-48, 49
अथर्ववेद-222
अनाब्रांच-134
अपशिष्ट प्रबंधन-147
अरावली पर्वतमाला-52, 61, 153, 155
अवशोषण (Infiltration)-87
अवैध खनन-147
अस्थिर नदियाँ-63
अहिंसा-140, 141, 149, 150
अहिंसा और जल संरक्षण-67, 69, 70

आ

आंगई बाँध-151, 155
आकाश-7, 8, 21
आग्नेय चट्टानें-52, 53, 54, 55, 56
आधार प्रवाह-92, 93
आधुनिक जल प्रबंधन-230, 231
आधुनिक तकनीक-111
आधुनिक मौसम पूर्वानुमान-47, 48, 49, 50
आधुनिक विज्ञान-221, 222, 223, 225, 226, 228, 229, 230, 231, 232
आधुनिक समय में भारतीय परंपरा की प्रासंगिकता-107
आप-132
आपः विश्वस्य भेषजीः-222
आपो हि ष्ठा मयोभुवः-221, 222
आर्थिक समृद्धि-191, 195, 198, 201, 206, 208, 210, 212, 214, 216, 217, 218
आहर-पाइन-41, 42, 226, 227

ई

ईश्वर एवं आत्मा-7, 8, 9, 10

उ

उतंगन नदी-155
उत्तरदायित्व-113, 114
उदक-132
उपनदी-57

ऊ

ऊदबिलाव-145
ऊर्जा-29, 30, 31, 32

ऋ
ऋग्वेद-8, 9, 10, 11, 12, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 32, 71, 72, 221, 222, 229, 232
ऋग्वेद में अग्नि-वर्णन-23, 24, 25, 26, 27, 28, 29
ऋतुओं का अध्ययन-39, 40

ए
एंटीसिडेंट नदी-63
एनीकट-204, 208, 210, 214, 218
एरी-41, 42

ओ
ओखलियापुरा-204, 205
ओढ़ी नरी की पोखर-163

औ
औद्योगिक अपशिष्ट-143, 147

क
कंटूर ट्रेंचिंग-146
कटावपूर्ण व्यवहार-64
कार्य संचालन-113, 114, 115, 116
कार्यप्रणाली-118, 120
कुंड-41, 42, 43, 226, 227
कुंभ मेला-11, 12
कुएँ-189, 190, 191, 193, 195, 200, 204, 206, 208, 210, 212, 226, 227
कुण्ड की पोखर-163, 164
कुमारी नदियाँ-64
कृषि-1, 2, 3, 5, 20, 21, 29, 30, 31, 32, 39, 40, 43, 44-48, 190-193, 195, 198, 200, 201, 204, 206, 208, 210, 212, 214, 216-218, 220
कृषि उत्पादन-159, 160, 162-164, 168, 170, 177, 179, 181, 183, 185, 225, 227, 228, 230
कृषि एवं ग्रामीण पर्यावरण-129
कोट गाँव-189
कोटवाली नदी-98-99, 187-220
कोटवाली नदी का इतिहास-187, 188
कोटवाली नदी का उद्गम-187, 191
कोटवाली नदी का नदी तंत्र-187, 189, 190
कोटवाली नदी का भूगोल-189
कोटवाली नदी पुनर्जीवन-3- 6, 225- 229
कोटा बैराज-66, 70, 136
कोड़ापुरा-195-197
क्रेटर-22

ख
खगोलीय अवलोकन-47, 48, 49
खनन-154, 161, 163, 166, 171, 175, 180, 195, 198, 201, 204, 206, 208, 210, 212, 214
खनिज संपदा-54

खनिज सम्पदा-23, 26, 27, 29
खेत तालाब-146
खैरटपुरा-206, 207, 208

ग

गंगा-11, 12
गंगा डॉल्फिन-145
गंगा मैया-141
गंभीर नदी-155, 187
गांधी सागर बाँध-66, 136
गुढ़ा-178, 179, 180
गोंडवानालैंड-51, 53
गोण्डे की पोखर-159, 160
ग्राम की भूमिका-228, 229
ग्राम पंचायत-151, 156, 167, 170, 175, 178, 181, 187, 191, 195, 201, 206, 208, 210, 212, 214, 216
ग्राम विस्थापन-154, 158, 159, 161
ग्रामीण अर्थव्यवस्था-2, 3, 77-79, 191, 195, 198, 201, 206, 208, 210, 212, 214, 216-218
ग्रामीण आजीविका-154, 159, 160, 162-164, 168, 170, 177, 179, 181, 183, 185
ग्रामीण रोजगार-130

घ

घड़ियाल-131, 145

च

चट्टानी नदियाँ-64
चम्बल का उद्गम-135, 136
चम्बल का ऐतिहासिक महत्त्व-135, 136, 137
चम्बल का जलप्रवाह-65, 66
चम्बल का जैव-विविधता तंत्र-131, 136, 137, 145, 146
चम्बल का प्राचीन नाम-135
चम्बल की सहायक नदियाँ-65, 66
चम्बल की स्वच्छता-136, 145, 147
चम्बल के बीहड़-65-68, 131, 138-140
चम्बल क्षेत्र की शांति-138-140, 149, 150
चम्बल घाटी-136-140
चम्बल घाटी परियोजना-136
चम्बल जलविद्युत परियोजनाएँ-65, 66
चम्बल नदी-65-70, 131-150
चम्बल नदी बेसिन-117-118, 120-122
चम्बल नदी: पृथ्वी का एक श्रृंगार-131
चम्बल नदी–पुनर्जीवन का राष्ट्रीय मॉडल-131
चम्बल बेसिन-65, 66, 67
चम्बल संरक्षण के समाधान-145
चरागाह संरक्षण-146
चर्मण्वती-135
चीता-153
चेकडैम-94, 95, 96

छ

छोटी नदियाँ-61, 102-104
छोटी नदियों का पुनर्जीवन-102-104

ज

जंजारीपुरा-189, 190, 191
जन-जागरूकता-3, 4, 6
जनभागीदारी-107, 108, 112, 113, 193, 195, 198, 200, 204, 206, 208, 210, 212, 214, 216, 218, 220
जनभागीदारी आधारित कार्यप्रणाली-113-116
जनभागीदारी एवं जल प्रबंधन-226-229
जनसहभागिता-3-6
जनसहभागिता आधारित संरक्षण मॉडल-147
जनापाव पर्वत-135
जमूरा-187, 191, 192, 193
जल (अप्)-10-17
जल उपयोग का संतुलन-143
जल एवं जीवन-10-12, 21
जल एवं शांति लोक सम्मेलन-149, 150
जल और अर्थव्यवस्था-127
जल और आजीविका-127
जल और जीवन-127
जल और धर्म-232
जल और पर्यावरण-229- 232
जल और लोककल्याण-232
जल और शांति-164, 167, 172, 181
जल और संस्कृति-232
जल और सामाजिक समरसता-140, 141
जल और सामाजिक समानता-11
जल का जीवन में महत्व-232
जल का दार्शनिक स्वरूप-10, 11, 12
जल का निम्नगतिक स्वभाव-11
जल का न्यायपूर्ण उपयोग-39, 40
जल का वैज्ञानिक स्वरूप-10-15
जल का सांस्कृतिक महत्व-221, 222, 225, 226, 228-230, 232
जल की कमी-138, 139
जल चक्र-39-43, 83, 84
जल चिकित्सा-10, 11
जल प्रदूषण-1
तरुण भारत संघ का जल संरक्षण मॉडल-124-127
तापमान वृद्धि-48, 49
तालाब-41- 45, 190, 193, 195, 200, 201, 204, 206, 208, 210, 212, 214, 216, 226-229

थ

थाने का पुरा-156-158

द

दक्षिण भारत के आग्नेय क्षेत्र-54
दक्षिणी प्रायद्वीप-51, 61
दस्यु क्षेत्र का सामाजिक परिवर्तन-67- 69

दीर्घकालीन जल योजना-230, 231
देवनारायण मंदिर-168, 175
द्रौपदी-135

ध
धुंधी की पोखर-159
धौंध-172-175

न
नदियाँ और तीर्थ-11, 12
नदियों का पोषण-39, 40
नदियों की विविधरूपी प्रकृति-57
नदी एवं जल स्रोतों का पुनर्जीवन-128
नदी और कृषि-70, 71, 223-225
नदी और ज्ञान परम्परा-223-225
नदी और तीर्थ-223, 224
नदी और पर्यावरण-73, 74
नदी और प्रकृति-73-75
नदी और भारतीय संस्कृति-141, 142
नदी और भारतीय सभ्यता-1, 2
नदी और मानव सभ्यता-73-75
नदी और व्यापार-223, 224
नदी और संस्कृति-73-75
नदी और सभ्यता-70, 73, 132, 133, 135, 136, 141, 142
नदी का उद्गम-59
नदी का पर्यावरणीय प्रवाह-143
नदी का प्रवाह-132, 133
नदी का संगम-58, 59
नदी की अविरलता-224, 226
नदी की निर्मलता-224, 226
नदी की परिभाषा-132, 133
नदी की लंबाई-58-60, 189
नदी की शाखा-133, 134
नदी के स्रोत-58, 59
नदी जीवनधारा-2
नदी तट संस्कृति-142
नदी तीर्थ-142
नदी पारिस्थितिकी-224-226
नदी पुनर्जीवन-74-80
नदी पुनर्जीवन आंदोलन-4- 6
नदी पुनर्जीवन की राष्ट्रीय रणनीति-223-226
नदी बेसिन-57- 60
नदी मार्ग-58, 60
नदी वर्गीकरण-61-64
नदी संरक्षण मॉडल-224, 226, 229
नलकूप-154, 161
नागरिक की भूमिका0228, 229
नाड़ियाँ-226, 227
नीति-निर्माण-4, 6
नीर-8, 21

प
पंचमहाभूत-7, 8, 18-22, 71, 229, 230
पक्षी-153, 166, 169, 177, 180
परुआ बाँध-187, 200, 201
परौगा-201- 203

पर्यावरण संतुलन-229- 232
पर्यावरणीय प्रभाव एवं मूल्यांकन रिपोर्ट-117-122
पलायन-154, 159, 161, 162, 167, 170, 175, 178, 181, 190, 195, 198, 201, 204, 206, 208, 210, 212, 214, 216
पशुपालन-2, 130, 159, 160, 162-164, 168, 170, 177, 179, 181, 183, 185, 190, 193, 195, 200, 201, 204, 206, 208, 210, 212, 214, 216-218, 220
पारंपरिक जल संरचनाएँ-94, 95, 105-108, 189, 200, 201, 204, 206, 208, 210, 212, 214, 216, 225-229
पारंपरिक प्राकृतिक संकेत-47, 48, 49, 50
पार्वती नदी-151, 155
पावेश्वर-170, 171, 172
पृथ्वी-7, 9, 10, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 32
पृथ्वी को उपजाऊ बनाने में अग्नि-30, 31, 32
पृथ्वी दिवस-21, 22
पृथ्वी निर्माण-21, 22, 71, 72
पेयजल-136, 145
पेयजल संकट-225, 227, 228
पोखर-189, 191, 193, 195, 198, 200, 204, 206, 208, 210, 212, 214, 216, 218
प्रकृति और जीवन-229, 230
प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व-20-22, 31, 32
प्रायद्वीपीय नदियाँ-61, 62

ब

बजट-113-116
बटीकरा-181-186
बड़े बाँध-124, 125
बमाया एवं कोटवाली नदी पुनर्जीवन-49, 50
बमाया नदी-98, 99, 151-160, 161-170, 171-180, 181-186
बमाया नदी का इतिहास-151-154
बमाया नदी का जलागम क्षेत्र-151, 155, 156
बमाया नदी का नदी तंत्र-155, 156
बमाया नदी का भूगोल-155, 156
बमाया नदी की जलधाराएँ-152, 155
बमाया नदी पुनर्जीवन-3-6, 225-229
बागी जीवन-138-140
बाघ-131, 153
बाजना-198- 200
बाढ़124-126
बाढ़ और सूखा-193, 195, 198, 200, 204
बावड़ियाँ-226, 227

बावड़ी-41-43
बिदरपुर-164-167
बिरजा-167-169
बेसाल्टिक क्षेत्र-52-56
ब्रह्मांड-7, 9, 10, 21, 22

भ

भविष्य की जल नीति-221- 223
भविष्य की जल सुरक्षा-230- 232
भविष्य की पीढ़ियाँ-5, 6
भारत का जल-सुरक्षित भविष्य-229-232
भारतीय जल परंपरा-82, 83, 105-108
भारतीय जल परम्परा-39- 50
भारतीय जल परम्पराएँ-221-226, 228-232
भारतीय जल प्रबंधन-39- 48
भारतीय जल विद्या एवं वर्षा विज्ञान-39-50
भारतीय जल संस्कृति-1, 2, 4-6, 107, 108
भारतीय जल संस्कृति का भविष्य-221-232
भारतीय ज्ञान परम्परा-1, 2, 4-6, 230-232
भारतीय दृष्टिकोण-7, 8, 20-22
भारतीय भू-विद्या-51, 52
भारतीय मौसम विज्ञान-43- 49
भारतीय सभ्यता और नदियाँ-223- 226
भू-जल-1-3, 5, 6, 39-48
भू-जल पुनर्भरण द्वारा नदी पुनर्जीवन-81, 82, 84, 86, 88, 91, 92, 94, 96, 98-100
भू-विज्ञान-51, 52, 55
भूजल-81- 84, 86-92, 94, 96, 98-100
भूजल पुनर्भरण-81, 84, 86-88, 90-92, 94, 96, 98, 99, 225, 227- 229
भूजल स्तर-190, 191, 193, 195, 200, 204, 206, 208, 210, 212, 214, 216, 218
भूमिगत जल-154, 161

म

मत्स्य पुराण-54, 55
मथारा-160-164
मानसून-43- 47, 70, 71
मिट्टी एवं नमी संरक्षण-225, 228
मुख्य नदी-57, 58
मृत्तिका / मिट्टी-20, 21
मौसम विज्ञान-43-50

र

राजस्थान जल संरक्षण-96, 97
राणा प्रताप सागर बाँध-66, 136
राष्ट्रीय जल नीति-221, 223, 230, 231
रोजगार-191, 195, 198, 201, 206, 208, 210, 212, 214, 216-218

ल

लघु जल संरचनाएँ-3, 5
लावा-22-24, 52-55
लोक-अनुभव-221-223, 225, 226, 228, 229
लोकज्ञान-42- 45

व

वन संरक्षण-3, 5
वनकरण-137, 146
वनस्पति एवं जैव-विविधता-2, 3
वन्यजीव एवं जैव विविधता-153, 154, 166, 169, 177, 180
वर्षा जल-1, 2, 3, 5, 6, 39, 40, 41-47
वर्षा जल संचयन-146, 189, 191, 193, 198, 200, 204, 206, 208, 210, 212, 214, 216, 225, 227, 228
वर्षा विज्ञान-39- 48
वर्षा से भूजल पुनर्भरण-84, 85
वर्षा-पोषित नदियाँ-62, 63
वायु-7, 8, 21, 22, 26
वायु पुराण-54, 55, 56
वृक्षारोपण-225, 228
वेंट-53, 55
वेदपुरा-219, 220
वैज्ञानिक एवं पारंपरिक ज्ञान का समन्वय-47-50
वैज्ञानिक सत्यापन-96, 97
वैदिक काल-39- 42
वैदिक ज्ञान-221-223, 225, 228-232
वैश्विक मॉडल-226, 229, 231, 232

श

शहरी सीवेज-143, 147
शांति और समृद्धि-167, 172, 181
शिक्षा-191, 198, 201, 206, 208, 210, 212, 214, 216, 218
शिवालय एवं ज्योतिर्लिंग-55, 56
शुष्क अंतराल-48, 49
शोध एवं अकादमिक अध्ययन-4, 6

स

सतत जल प्रबंधन-223, 225, 226, 228, 230, 231
सतत विकास-3, 5, 6, 49, 50, 78, 79, 80, 130, 137, 149, 229-232
समुदाय आधारित जल संरक्षण-149, 150
समुद्र एवं महासागर-29, 30
समुद्र के भीतर अग्नि-29, 30
समुद्री ज्वालामुखी-29, 30
सहायक नदी-57, 58, 60
सामाजिक परिवर्तन-154, 158, 160, 162, 164, 167, 170, 177, 179, 181, 183, 185, 191, 195, 198, 201, 206, 208, 210, 212, 214, 216-218, 220
सामाजिक सहयोग-226, 227, 228

सामाजिक सौहार्द-206, 208, 210, 212, 214, 216, 218
सामुदायिक भागीदारी-40- 48
सामुदायिक श्रम-226-228
सामुदायिक संगठन-165, 167
सामुदायिक सहभागिता-76-78, 112, 113
सिंचाई-70, 71, 136, 143
सिंधु-गंगा बेसिन-51, 52, 57
सिल्स-23, 53
सीरे प्रथम की पोखर-163, 164
सूखा-124, 125, 126
सृष्टि की उत्पत्ति-7, 8, 9, 10
सोनी-175-177
स्थानीय नेतृत्व-3, 4
स्थानीय समुदाय-137, 147, 148, 225-229
स्थायी जल प्रवाह-75, 76
स्वावलंबी गाँव-167-169, 173, 178, 183, 198, 200, 206, 208, 210, 212, 214, 216, 218

ह

हिमालय-51- 53, 56
हिमालयी नदियाँ-61-63

क्ष

क्षेत्रीय आर्थिक विकास-136
क्षेत्रीय दौरा-117, 118, 120

बमाया एवं कोटवाली नदी पुनर्जीवन:

भारतीय वैदिक ज्ञान, जल विज्ञान, पर्यावरण,एवं नदी पुनर्स्थापन

ISBN: 978-93-6581-244-2

पुस्तक मूल्य: भारत **₹499;** USD **$5.25**

NATALS **Natals Publication.**
UDYAM-DL-02-0037614
Chhatarpur, SouthWest Delhi-110074,India
E-mail:natalspublications@gmail.com

Copyright © 2026 natals.in